UNIVERSAL LIBRARY
OU_182496
UNIVERSAL LIBRARY

OUP—24—4-4-69—5,000

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H81.08 R16G Accession No. P.G. H3830

Author रामगोपाल 'परदेसी' संपा

Title गीत और सरगम 1963.

This book should be returned on or before the date last marked

गीत और सरगम

गीत और सरगम

१०१ आधुनिक हिन्दी
कवि और कवयित्रियो के
चित्र परिचय सहित
श्रेष्ठ गीतों
का
संकलन

गीत और सरगम

सम्पादक

रामगोपाल परदेसी

प्रगति प्रकाशन
३५८ मण्डी सईदखां, आगरा

प्रगति पुस्तक माला—११

प्रथम संस्करण

१९६३

मूल्य
६·००

❊

प्रकाशक
प्रगति प्रकाशन
मण्डी सईदखाँ आगरा,

❊ ❊ ❊

चिन्तक, अन्वेषी, मनीषी एवं भ्रमणशील सृजक

महापंडित राहुल सांकृत्यायन

प्रखर आलोचक और चोटी के निबन्धकार

डॉ० गुलाबराय

सशक्त साहित्यिकार

आचार्य शिवपूजन सहाय

कवि, आलोचक, उपन्यासकार

डॉ० रांगेय राघव

और

यस्वी कवि तथा उपन्यासकार

सियारामशरण गुप्त

को

विदा बेला

...

डॉ० रांगेय राघव, १२ सितम्बर ६२
आचार्य शिवपूजन सहाय, २१ जनवरी ६३
सियारामशरण गुप्त मार्च ६३
डॉ० गुलाबराय, १२ अप्रैल ६३
महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, १४ अप्रैल ६३

...

नव गति, नव लय, ताल छन्द नव,

नवल कंठ, नव जलद–मन्द्र–रव,

नव नभ के नव विहग वृन्द को,

नव पर, नव स्वर दे !

वरदे वीणावादिनी वरदे !

—निराला

सुनिए

१ गीत इन्द धनुषी बादल की रंगीनी शबनम की कोमलता और चांदनी में नहाए मधु स्वप्नों की तरोताजा स्मृति है। गीत का कलेवर नवनीत से भी अधिक कोमल है। गीत की बराबरी स्वर्ग की परियों की नूपुर की रुनझुन, नये भोर की नई किरन और माधवी कुन्ज मे मधु पाइयों का गुन्जन, इन तीनों का सम्मिलित सौन्दर्य भी गीत की बराबरी नहीं कर सकता, क्योंकि कोमलता के क्रोड़ में उसका सृजन, लाल पालन सभी कुछ होता है। गीत का ताना बाना हृदय के धागों से ही बुना जाता है। गीत की बंशी के स्वर जैसे मोहन की तरह प्राण की धारा को पुकारते ही रहते हैं। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि जो अनकहा है, जिसे कविता की नन्ही-नन्ही अनुभूतियाँ नहीं छू पाई हैं वही गीत है। कालिदास का (अनाघ्रांत पुष्पं) जो फूल अभी सूंघा नहीं गया है तथा भार विका (न रम्य माहर्य मपेक्षते गुणम्) स्वभाव सुन्दर को बनाबट की जरूरत नहीं, या—

> "तकल्लुफ से बरी है हुस्ने जाती,
> कबाए-गुल में गुलबूटा कहाँ है।"

सच में गीत की यही सच्ची परिभाषा है। यही गीत का रूप स्वरूप है। बिना गीत के जैसे सरगम उत्पन्न नहीं हो सकता वैसे ही बिना सरगम के गीत नहीं बन सकता। अतः स्वेच्छा से इस संकलन का नामकरण 'गीत और सरगम' किया गया है।

प्रत्येक दशाब्दी गीत का नवीनोद्रम है। लोक प्रवृति शैली सभी मे अन्तर आ जाता है, परन्तु मानवीय मूल स्वभाव ज्यों के त्यों बने रहते हैं। उनमें प्रायः सार्वत्रिक एकात्मकता पाई जाती है। हमारे मनीषी कलाकार ऋषियों ने इसे पूर्णतःहृदयंगम करके ही उद्घोषित किया था। 'यत्रविश्व भवत्येक नीड्म। जहाँ समस्त संसार एक घोंसला है, हम सभी गोरे काले पीले रंग के उसी घोंसले में निवास करने वाले पक्षी हैं। भारत के बाल्मीक, कालिदास, तुलसी, रवीन्द्र, प्रसाद योरोप के शेक्सपियर वर्नर्ड, इटली के वेनडेरो क्रोसे, आयर्लेण्ड के डबल्यू बी० यीट्स, अमेरिका के ह्विटमैन सभी पक्षियों की मधुर-ध्वनियों का संकेत एक है।

नई जमीन तैयार होती ही रहेगी। पुराना जो कुछ सोचा जा चुका है उससे आगे सोचा ही जायेगा। शूल को गीत की झंकार से भरना ही होगा। कवि और गीतकार का कार्य सावन के मेघों की तरह सरिता सिन्धु से जल ले कर सहस्त्र गुण अधिक करके देना है।

४८. मालती जोशी २०४
४९. मुकुटबिहारी सरोज २०८
५०. मुरलीधर श्रीवास्तव 'निर्झर' २१२
५१. योगेन्द्र त्यागी 'हिमकर' २१६
५२. रमेश 'करुण' २२०
५३. रमेश गुप्त २२४
५४. रमेशचन्द्र गुप्त 'चन्द्रेश' २२८
५५. रमेशभार्गव 'उदगम' २३२
५६. राजकुमारी तिवारी रश्मि २३६
५७. राजेन्द्र प्रसाद सिंह २४०
५८. राजेन्द्र मिलन २४४
५९. रामगोपाल परदेसी २४८
६०. रामसेवक शर्मा २५२
६१. लक्ष्मीनारायण गोयल २५६
६२. लाखनसिंह भदौरिया २६०
६३. 'लाल' २६४
६४. लीलाधर पाण्डेय २६८
६५. वर्मा उमाशंकर २७२
६६. विमलेन्द्र कुमार 'शलभ' २७६
६७. विश्वदेव शर्मा २८०
६८. विष्णु त्रिपाठी 'राकेश' २८४
६९. वेदनन्दन २८८
७०. शकुन्तला सिरोठिया २९२
७१. शचीन्द्र भटनागर २९६
७२. शरद ३००
७३. शरदेन्दु शर्मा ३०४
७४. शान्ति स्वरूप 'कुसुम' ३०८
७५. शिवदत्त शर्मा ३१२
७६. शिवहरी 'अनजान' ३१६
७७. शैवाल सत्यार्थी ३२०
७८. श्यामनारायण वर्मा ३२४
७९. श्यामबिहारीसिंह 'आलोक' ३२८
८०. श्रवणकुमार अग्रवाल ३३२
८१. श्रीप्रकाश मिश्र ३३६
८२. सतीशचन्द्र 'सन्तोषी' ३४०
८३. समर चौहान ३४४
८४. सरजूप्रसाद सैनी ३४८
८५. सरोजिनी कुलश्रेष्ठ ३५२
८६. सुदर्शन बाहरी ३५६
८७. सुधारानी शर्मा ३६०
८८. सुन्दरलाल चतुर्वेदी 'अरुणेश' ३६४
८९. सुरेश दुबे 'सरस' ३६८
९०. सुश्री कुमुद ३७२
९१. सुश्री विनोदिनी ३७६
९२. सूर्य सक्सेना ३८०
९३. सोमदत्त गर्ग ३८४
९४. स्वामीशरण सक्सेना ३८८
९५. हरिदत्त पालीवाल 'निर्भय' ३९२
९६. हरि श्रीवास्तव ३९६
९७. हरीश ४००
९८. हरीश खुराना 'प्रेमी' ४०४
९९. हृषीकेश चतुर्वेदी ४०८
१००. ज्ञानसिंह ठाकुर ४१२
१०१. ज्ञान भारिल्ल ४१६

गीत और सरगम

ग्रंगराज

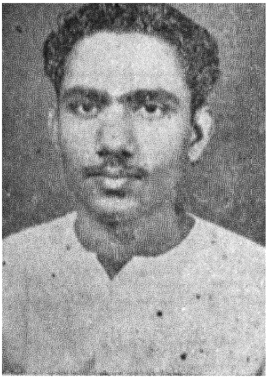

भाषा विज्ञान विभाग, सागर विश्वविद्यालय में ग्रसिस्टेण्ट प्रोफेसर श्री ग्रंगराज का पूरा नाम देवीशंकर द्विवेदी है। बी० ए०, बी० लिट्०, एम० लिट्० तीनों में ग्रागरा विश्व-विद्यालय से प्रथम श्रेणी मे प्रथम स्थान सहित उत्तीर्ण हुए हैं। धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ज्ञानोदय, सुप्रभात, नई धारा, युग चेतन, नया पथ, कादम्बिनी, समाज, राष्ट्र भारती, कविता, ग्रजंता, ग्रादि पत्र-पत्रिकाग्रों में कविताएँ, कहानियाँ, निबंध छपे हैं। ग्राकाशवाणी, लखनऊ मे भी कविताग्रों का प्रसारण हुग्रा है।

पथरिया हिल्स
सागर (म० प्र०)

बरस रही है चाँदनी

मन के अनुरागों को यश की धवल सुधा का दान ज्यों
इन गुलाब की पंखुड़ियों पर बरस रही है चाँदनी !

रूप-रजत में डूबी उठतीं लहरें मन्द सुवास की
उकसातीं सुधि प्रथम-प्रथम के क्वारे प्रणय-विकास की,
बिछी हुई कोमल दूर्वा पर श्वेत पर्त है रेशमी
चरणों की मन्थर गति जिसकी स्नेहिल गोदी में थमी,

यह अपूर्व संसार मिला है तन-मन के विश्राम को
जीवन का श्रम सोख रही है चन्दन-लिपटी यामिनी !

तन छूकर उर की धड़कन में अपना कम्पन घोलता
पवन सिहर कर किसी कामिनी के अंचल-सा डोलता,
पाँव उमगते हैं धरती से जैसे उड़ने के लिए
मानो सब मंगल, सब पावन सुलभ हुआ जो चाहिए,

अन्तर में उल्लासों का सागर हलके कल्लोलता
जिसकी मृदुल सतह पर स्वर्गिक बिछल रही है रागिनी !

जब-तब तरुओं से समीर मिल उपजाता सुसवाट है
किंतु न होता इस निर्जन में मेरा हिया उचाट है,
रुष्ट न हो, सच मानो—लगता है तुम मेरे पास हो
ऐहिक सत्ता से ऊपर हो, धरा नहीं आकाश हो

यह विस्तरता नशा और यह रम्य प्रकृति शृंगारती
चरम सुघरता में जैसे तुम ही हो मेरी भामिनी !

बयरिया लहकी

बयरिया लहकी, मन सिहरा।

कि जैसे हँस हलकाई धरा
कि जैसे दूधों धोया गगन,
सजीला ऋतु की उजली हँसी-
सरीखा हुलसा वातावरण

किसी तनछिपी कामिनी की
चुनरिया महकी, मन सिहरा।

सुआपंखी लगता सच आज
मिठासों-बिंधा सपन का पहर,
कि जैसे चन्दन-उपजा पवन
वसन-सा धीरज जाता उघर

किसी के चरण नहीं बिछले
डगरिया बहकी, मन सिहरा।

तुम्हारी थपकी-जैसी छुवन
न पा, हियरे में जागी पीर
अकेलेपन में कुम्हला उठा
फूल ज्यों खिलता हुआ शरीर

विसुधता में सियराई सी
अँगरिया दहकी, मन सिहरा।

उपालम्भ

यह मन जिस पर अधिकार तुम्हारा है
सूने में मुझको बहुत सताता है
तुम मुझे छोड़कर जाया नहीं करो।

मै तो गीता में ध्यान लगाता हूँ
यह मुझे प्रीति के गीत सुनाता है
मै वसुधा को परिवार समझता हूँ
यह करता—केवल तुमसे नाता है

मेरा हर संयम इससे हारा है
यह ढीठ हमेशा जीत मनाता है
तुम इस पर ऐसे छाया नही करो।

मेरे आगे हैं धन्धे और कई
पर मन की उलझन निशि-दिन एक नई
तुमने कुछ ऐसा विवश बनाया है
वश पाने की आदत-स छूट गई

तुमने क्या मेरे लिए विचारा है
क्या तुम तक मेरा स्वर जा पाता है
बोलो तो प्राण! छिपाया नहीं करो।

सोऊँ कैसे? मन मुझे जगाता है
जगता हूँ : यह तुम सँग सो जाता है
सब तरफ तुम्हारी छाया छूने को
भटका करता है, नही अघाता है

अब तो इसने खुद मुझे बिसारा है
शायद यह तुम पर ही इतराता है
तुम इसको पास बुलाया नही करो।

अनिल राकेशी

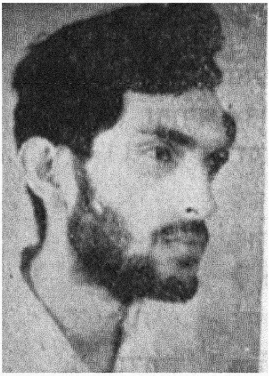

आपका जन्म स्थान नाहन, रियासत सिरमौर है। पंजाब विश्व विद्यालय से एम० ए० पास किया है। सन् १९५६ से लगातार कविता, कहानी, नाटक लिख रहे हैं। हिन्दी उर्दू, अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन तथा आकाशवाणी से रचनाओं का प्रसारण हुआ है। आपकी रचनाओं का अन्य भारतीय-भाषाओं में अनुवाद भी हुए हैं। विभिन्न साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक आन्दोलनों का संचालन किया है। नाटकों में अभिनय एवं निर्देशन में सिद्धहस्त हैं। हिमाचल में सांस्कृतिक तथा साहित्यिक गतिविधियों का सूत्रपात आपके माध्यम से विशेष हुआ है। सम्प्रति हिमाचल राज्य हिन्दी साहित्य संगम के स्थाई संचालक हैं। गद्य-पद्य की चार-पाँच पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

राकेशी कुटीर
नाहन
(हिमाचल प्रदेश)

अनिल राकेशी

फिर घिर आए मेघ माघ के

फिर-घिर आए मेघ माघ के फिर भीगा नयनों का काजल।
पलकों के भीगे आँगन पर झुक आए सुधियों के बादल !
सोनजुही-सी धूप लजीली
लौट गई आँगन तक आ कर,
रूठी साधों-सी यह ठण्डक
रख देगी तन-मन ठिठुरा कर,
कौन आज सहलाए तुझको, मत तड़पो मेरी लट घायल !
फिर घिर आए मेघ माघ के फिर भीगा नयनों का काजल !

आँचल से मैं संभाल रही हूँ
कुंकुम किसी हाथ का पूरा,
पलकें मूंद सहेज रही हूँ
अधरों पर से प्यार अधूरा,

चैता की चाहों में देखो उलझ रहा गीतों का आँचल !
पलकों के भीगे आँगन पर झुक आए सुधियों के बादल !
जो सर्वस्व समेट ले गई
उन छलिया बांहों का आदर,
जिन सांसों ने पिघला दी
अभिमानों की बरफीली चादर,
खोज रही संगीत उन्हीं सांसों का रुन-झुन बिरहिन पायल !
फिर घिर आए मेघ माघ के फिर भीगा नयनों का काजल !

गूंगी गन्ध गरकती जाती–
उपवन के गीले गुम्बद में,
मुखर कामनाओं का नन्दन
मौन नयन के नमन शब्द में,

शिशिर शरद में सुमन ढूंढते, मन उन विश्वासों का कायल !
फिर घिर आए मेघ माघ के फिर भीगा नयनों का काजल !

अनिल राकेशी

साध का रथ वरदानों की मंजिल

चटख चांदनी ने गीतों की रेख संवारी है !
कल तक दुनिया दुनिया की थी, आज हमारी है !

हवा निगोड़ी सेज फूल-कलियों से भर-भर देती है,
गन्ध सदा की नटखट बैरिन हँस-हँस चुटकी लेती है;
जरा शराबी सी गिर-गिर पड़ती हैं माथे पर अलकें,
चूम रही हैं बेबस नजरें दो सावन-भादों पलकें;

आज छेड़ले जीभर मौसम तेरी भी बारी है !
कल तक दुनिया दुनिया की थी आज हमारी है !

आज हुए घरवासी तेरी बहकन के सब बंजारे
आज तुम्हारी साधों की डोली पहुँची मेरे द्वारे;
दबा हुआ सन्देहों का कुहरा मन गलियारों से,
विश्वासों का ग त मुखर है साँसों के सहतारों से;

मौन प्यार की प्यार धड़कनों ने गुंजारी है !
कल तक दुनिया दुनिया की थी, आज हमारी है !

वे संकल्प-विकल्प, चेतना पर भारी सौ अन्देसे,
कस्तूरी मृग की भटकन, पग-पग अरवु आए सन्देसे;
थके भटकते पग जब मंजिल से मरघट की ओर मुड़े,
सपनों के छौने, विश्वासों के सहचर पथ रोक खड़े;

सागर से मरुथल तक हमने राह बुहारी है !
कल तक दुनिया दुनिया की थी आज हमारी है !

अनिल राकेशी

गीत माटी की महक का

मौन की वाचाल पाती भेजता हूँ, मीत, तुमको
पूछ कर थम-थम ढरकते रात के पहले पहर से ।

पात के नेहिल नयन से बूँद वह गिरती न गिरती;
ओठ धरती के सुलगते झट लपक कर चूम लेते;
बेलिया से कह गई सब अनकहे बाँहें पवन की;
बादलों का शब्द का अभिमान थक कर रह गया है

गरजते घन घन घहरते !
मौन की वाचाल पाती भेजता हूँ, मीत तुमको
पूछ कर थम-थम ढरकते रात के पहले पहर से !

महक माटी की तुम्हारी साँस-सी भीगी नशीली
तैर आई है नसों में प्यार के नीले नशे-सी,
नींद के साए पलक पर ढल रहे, आधी निशा में ज्यों
किशी जलदीप का संगीत मूर्छित हो रहा हो !

वक्ष पर निद्रित लहर से
मौन की वाचाल पाती भेजता हूँ मीत तुमको
पूछ कर थम-थम ढरकते रात के पहले पहर से !

दर्द मेरा पूछ तेरा क्षेम अकसर हो रहा चुप,
बात अपनी रह गई हर बार गीला प्रश्न बन कर,
शब्द की सामर्थ्य सीमा जान ली जब से,
सहमता हूँ कहीं अनुभूति का अपमान कर बैठूँ

किसी साधन अवर से
मौन की वाचाल पाती भेजता हूँ मीत तुमको
पूछ कर थम-थम ढरकते रात के पहले पहर से !

अमरबहादुर सिंह 'अमरेश'

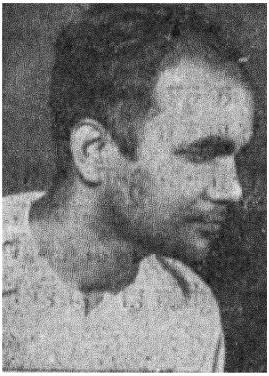

'कछार के काँटे', 'प्रवीन राय', हिना के हाथ', राना बेनीराघव', 'राज कलश', 'भटकती लहरें', 'गिलट के गहने', (उपन्यास) 'आँचल के दीप', (बाल कविता-संग्रह) 'कल्पना के पंख' (कविता-संग्रह) 'विकास के तीन चरण', 'उठो विकास देवता' (प्रौढ़ साहित्य) 'मसलानामा', 'कहरानामा' (जायसी के दो नये ग्रंथों की खोज) 'आचार्य द्विवेदी: एक सरपंच' (श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी जी के १८ वर्षों के सरपंच जीवन का मूल्यांकन) 'हेमाली' (महाकाव्य) आदि पुस्तकों के सृजक अमरेश का जन्म १ मार्च १९२९ ई० को ग्राम-कंदरावा, राय बरेली में हुआ। इधर कई वर्षों से आप नायब तहसीलदार थे। आज कल इससे त्याग पत्र देकर स्वतंत्र रूप से साहित्य सृजन कर रहे हैं। 'कल्पना के पंख' कविता संग्रह छप रहा है। 'राना बेनीराघव' उपन्यास उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा पुरस्कृत है।

गांधी नगर
रायबरेली (उ० प्र०)

अमरबहादुर सिंह 'अमरेश'

कीमत न आँको

कीमत न आँको, कि कितना चला हूँ,
मंजिल नहीं है, निशाने की कीमत।

मरने की कीमत, न जीने की कीमत–
हंस-हंस हलाहल न पीने की कीमत।
श्रम के दुआरे धरा आंकती है–
मेहनत के हाथों पसीने की कीमत।

पानी की कीमत न नदियों से पूछो–
सागर की कीमत, न लहरों की कीमत–
धरती में पानी खपाने की कीमत।

खेतों की कीमत, न पेड़ों की कीमत,
बैलों की कीमत, न भेड़ों की कीमत,
धरती की कीमत, न परती की कीमत–
बगिया की कीमत, न पेड़ों की कीमत।

खेती की कीमत न माटी से पूछो–
हल की न कीमत, न बैलों की कीमत–
धरती में फसलें उगाने की कीमत

चंदा की कीमत, न तारों की कीमत।
फूलों की कीमत न खारों की कीमत
आँखें पसारे समय आँकता है—
दुनिया के इन बेसहारों की कीमत।

मानव की कीमत न जीवन से आँकों–
हंसने की कीमत, न रोने की कीमत
जीवन में है मुस्कराने की कीमत।

अमरबहादुर सिंह 'अमरेश'

खेत कटने लगे

पछुआ हवा है,
समय पछिलहरा,
गंगा के तीर खेत कटने लगे !

हँसिये की झन-झन,
चूड़ी की खन-खन,
बिछियों का स्वर और
पैरों की फिसलन !
पन्ने समय के पलटने लगे !

जीवन की थाती !
उमंगों की बाती !
देख - देख लांक-
आज फूली है छाती !
आँखो के सपने उचटने लगे !

दिनकर का हँसना,
किरणों का डसना,
उठकर मजूरिन का-
फेंटे को कसना !
बिखरे हुए कच सिमटने लगे !

विरहा की तानें,
दबी मुसकानें,
कहतीं भला क्या,
विधाता ही जाने !
उठती हैं लाँक, बोझ घटने लगे !
गंगा के तीर खेत कटने लगे !

अमरबहादुर सिंह 'अमरेश'

बोलो किसकी नादानी है

मेरी कोई बात न मानो, लेकिन इतना तो बतला दो—
मेरे तन का खून चूस कर कितने घर आबाद करोगे ?
कङ्कालों के खून कहाँ है, जो कुछ था इतिहास पी गया।
शेष रहा जो उसे समय की साँसों का आकाश पी गया।
मधुऋतु की आशा में हमने पतझर का विश्वास किया तो—
मलयानिल चलने के पहले हरियाली मधुमास पी गया।
अब में तुमसे पूछ रहा हूँ, मानवता की पृष्ठ-भूमि पर—
जन-जीवन की परिभाषा को कितने दिन बर्बाद करोगे ?
जब-जब हुई पुकार खून की हमने अपना खून लुटाया।
तुमतो मठाधीश बन बैठे, मैं फाँसी पर चढ़ मुसकाया।
हमने अपना रक्त दिया तो खौल उठा सतजल का पानी—
काँप उठी झाँसी की छाती दिल्ली का आँचल शरमाया !
बदल गये पग चिह्न समय के, पर शोषित के दाग न बदले—
जिन्हें समय के, रथ ने रौंदा, उनको कैसे याद करोगे ?
सौ-सौ बार समय ने पूछा—'बोलो किसकी नादानी है ?
कितनी पलकों में सपने है, कितनी आँखों में पानी है ?
लेकिन तुमने दिया न उत्तर युग के इन जलते प्रश्नों का—
"कहाँ-कहाँ धरती सूखी है, कहाँ-कहाँ चूनर धानी है ?"
जितने पृष्ठ लिखे हैं तुमने—वह तो सब बर्बाद हो गये—
अब जीवन के महाकाव्य का, कितने दिन अनुवाद करोगे ?
आज समग्र के दरवाजे पर क्षुब्ध महाकंकाल खड़ा है।
मानसरोवर छोड़ हिमानी तट पर राजमराल खड़ा है।
खड़े हुये हैं विंध्य, हिमालय, अरावली आहुति देने को—
गंगाजल घृत तूल नारियल लेकर के बंगाल खड़ा है।
महासत्य का अपवादों से तुमने गला घोट डाला है—
अब अपनी ही मृग-तृष्णा का कितने दिन प्रतिवाद करोगे ?

अश्विनीकुमार 'प्रदीप'

श्री अश्विनीकुमार 'प्रदीप' का जन्म १५ अगस्त सन् १९३७ ई० को पलनवा जि० चम्पारण (बिहार) में हुआ। आपको साहित्य से अभिरुचि बचपन से ही रही है। सृजन के क्षेत्र मे सात-आठ वर्ष हुये हैं। रचनाएँ हिन्दी की सभी प्रमुख पत्रिकाओं में समय - समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। 'शहीदों की चिताओं पर' नामक संकलन में आपकी रचनाएँ संग्रहीत हैं।

समुदायिक विकास प्रखण्ड
पो० लौरिया, जि० चम्पारण
(बिहार)

अश्विनीकुमार 'प्रदीप'

किनारा आयेगा

मत रोक, नाव बढ़ रही आज तूफानों में,
सागर की छाती चीर किनारा आयेगा !
मैंने तो तूफानों से लड़ना सीखा है,
मैंने तो लहरों में ही बढ़ना सीखा है,
पर्वत तो रोक नहीं सकता है पथ मेरा,
मैंने तो पर्वत पर ही चढ़ना सीखा है,
मत रोक, चरण बढ़ रहा आज वीरानों में,
वीरानों में ही यह अमृत बरसायेगा !
चंचल लहरें कहती हैं मेरे कानों में,
क्या सोच रहे (?) नादान बढ़ो तूफानों में,
मंजिल आगे है खड़ी आरती लेने को,
स्वागत के लिए बहार खड़ी वीरानों में,
मत रोक, गीत गाना है उन सुनसानों में,
गीतों की तानों से बसन्त लहरायेगा !
मरघट की लाशों को तो मुझे जगाना है,
अम्बर के चाँद-सितारों को समझाना है,
धरती के नंगे-भूखे अब इन्सानों को-
महलों के मालिक से अधिकार दिलाना है,
मत रोक, मुझे बढ़ जाने दे इन्सानों में,
कविता मुस्कायेगी, कवि भी मुस्कायेगा ;
जीवन तो झंझावातों में ही पलता है,
अंगारों के पथ पर ही हरदम चलता है,
कब तक कोई भागे जग के तूफानों से,
जीवन चलता रहता, बादल सा गलता है,
जीवन को तो ढल जाने दे अब तानों में,
धरती लहरायेगी, अम्बर कुछ गायेगा !

अश्विनीकुमार 'प्रदीप'

नया सूरज आयेगा

चारों तरफ घनी अंधियारी का पहरा हो,
तब कैसे खुशियों की डोली आ पायेगी !

सूरज-चाँद सितारे बन्दी जंजीरों में
धरती की हर गलियारी में अन्धकार है,
शोषित, जर्जर मानवता रो रही विलख कर,
हर चौराहे पर बटमारों की कतार है,

मावस शासक बन जाये जब आसमान का,
चारों ओर विषमता की बदरी छायेगी !

विकल नयन के आँसू तक नीलाम हो रहे,
बीच सड़क पर बेच रही राधा इज्जत है,
कितने राम भटकते दर दर, वन जंगल में,
सती-सुन्दरी सीता की लुटती अस्मत है,

माँ-बहनों के तन का जब व्यापार हो रहा,
कैसे कोई कह दे—धरती मुस्कायेगी !

लेकिन है विश्वास नया सूरज आयेगा,
नव किरणों की उतरेगी बारात धरा पर,
अन्धकार की लाश कफन से ढक जायेगी,
स्वर्ण दिवस, चाँदी की होगी रात धरा पर,

आनेवाले कल की राह अगर रोके तो,
आसमान गरजेगा, धरती फट जायेगी !

अश्विनीकुमार 'प्रदीप'

हर गान मुबारक हो तुमको

सावन-भादों की रोनी-सी सूरत यूँ है स्वीकार मुझे,
लेकिन मधुमासों की मीठी मुस्कान मुबारक हो तुमको !
तुम फूलपरी बन खिलो कली, जूही, गुलाब की हमजोली,
तेरे दरवाजे पर बहार की रोज सजे मधुमय डोली,
तेरी किस्मत को देख जले वह नील गगन का चन्दा भी,
तेरे चरणों पर न्योछावर हो जाय सितारों की टोली,
मैं काँटों ही में पलूँ अगर, खुशियाँ अधरों पर नाचेगीं,
लेकिन पूरे हो जायँ सभी अरमान मुबारक हो तुमको !
माथे पर चन्दा का टीका, ग्रीवा में लड़ी सितारों की,
पायल रुनझुन बिजुरी की हो, चंचलता मिले बयारों की,
आँखों में काजल बदली का, होठों पर संध्या दे लाली,
पूरब को हवा चँवर देवे, मुखड़े पर खुशी नजारों की,
मुझको विष का ही घूँट मिले, इससे करता इन्कार नहीं,
लेकिन सागर के मन्थन का मधुपान मुबारक हो तुमको !
तेरे कोमल चरणों को तो हर लहर ठहर कर धो जाये,
बागों में खुशबू मंजर की, कोयलिया मीठे स्वर गाये,
तेरी गोदी में फुदक-फुदक सूरज आ किलकारी मारे,
खुशियों से नाच उठे धरती, यह दिग्दिगन्त भी हर्षाये,
मुझको दुनिया की ठोकर ही मिल जाय, उसे मैं सह लूँगा,
लेकिन जीवन के हर क्षण का सम्मान मुबारक हो तुमको !
हर ओर खुशी की चादर बिछ जाये, हर मौसम मुस्काये,
हर कली कुँआरी सुमन बजे तेरे आँचल में झर जाये,
मेरे नयनों से सागर उमड़ रहा है, इससे क्या होगा ?
लेकिन तेरे अन्तर में दुख का बादल कभी न घिर आये,
नयनों से आँसू बहा-बहा मैं दिल को हल्का कर लूँगा,
लेकिन जीवन में खुशियों का हर गान मुबारक हो तुमको !

उपेन्द्र

नई पीढ़ी के तरुण गीतकार श्री उपेन्द्र का जन्म १८ जून सन् १९३४ ई० में कानपुर के एक प्रतिष्ठित परिवार में हुआ। सन् १९५० से आप साहित्य क्षेत्र में गीत-सृजन कर रहे हैं। रचनाएँ अनेक पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। लिखने के मुख्य विषय कविता और गीत हैं। 'घटा साँवरी' शीर्षक से आपका एक गीत संग्रह प्रकाशित हो चुका है। अंग्रेजी में एम० ए० करने के पश्चात् बी० ए० डी० कालेज, कानपुर में प्राध्यापक हैं।

५९/१ बिरहाना रोड,
कानपुर

यह वर्षा का प्रथम दिवस है

यह वर्षा का प्रथम दिवस है मेरे मन उदास मत होना !

देख क्षितिज की ओर मेघ की सहसा चढ़ती हुई जवानी
देख विश्व की उत्सुक आँखें, भूल धूल धूसरित कहानी ;
कब तक खोजेगा सुधियों में सुख के अर्जन और विसर्जन,
देख धरा का हरा भरा मुख और गगन का प्यार सलोना !

कल थे पश्चाताप प्रथम के, आज उमंगों की बारी है,
कल थी सीमाहीन पिपासा, आज तृप्ति की तैयारी है—
इस सुरम्य आनंदोत्सव में क्षम्य नहीं क्षण की भी देरी
शाप आज सारी चिन्तायें, पाप आज है आँख भिगोना !

यह मेघों का मान कि जैसे दिशा-दिशा चल चरण पखारे,
यह मेघों की शान कि बिजली पग-पग पर आरती उतारे,
तू भी सीख भीख ले इनसे कुछ गुन या निर्गुन की बातें,
और नहीं तो क्या मिलना है तुझे यहाँ पर चाँदी-सोना ?

जल में उतर केश फैलाये चली तैरतीं घिरी घटायें
एक-एक छवि पर तुल जायें कालिदास की सौ उपमायें
ऐसे ही अवसर पर अक्सर दबा दर्द उभरा करता है
लेकिन आज नहीं चलने को यह छलनामय जादू-टोना !
यह वर्षा का प्रथम दिवस है मेरे मन उदास मत होना !!

छूट गया अपना

जो बिरहिन बन बाँसुरी बजाती है
लगती प्राणों की पीर मुझे प्यारी !

मैं हूँ वह जिसका टूट गया सपना
मिलते-मिलते ही छूट गया अपना
वह मैं ही जग में सिर्फ अकेला हूँ
जिसका सब उजड़ा कुछ भी नहीं बना
जो दुखिया मन को धीर बँधाती है
वह सुधियों की जंजीर मुझे प्यारी !

मैं आया था मधुवन में गाने को
सुन्दरता पर दो फूल चढ़ाने को
पर लगता है अब मैं हूँ इस जग में
अंगारों पर आँसू बरसाने को
जो पलकों में सावन भरलाती है
वह आँखों की तस्वीर मुझे प्यारी !

दुख से मुझको कुछ ज्यादा प्यार नहीं
लेकिन सुख की भिक्षा स्वीकार नहीं
अँधियारे का भय तनिक न है मुझको
मेरा दीपक यदि माने हार नहीं
जो कभी हँसाती कभी रुलाती है
मेरी बैरिन तकदीर मुझे प्यारी !

उपेन्द्र

ऐसी बैरिन व्यथा बावरी

घिर घिर आई घटा साँवरा :

किस छलिया ने छिपा लिया मुख
कोमल नवल जलद अंचल में
किन आँखों के स्वप्न सलौने
बदल रहे छिन-छिन पल-पल में
सजल नयन धूमिल कपोल तन–
पुलकित प्रतिमा सी विभावरी !

किसकी शून्य अटा पर छाई ?
किसका श्याम रूप हर लाई.?
किस सागर का ज्वार चुरा कर–
इतनी मादकता भर लाई ?
ऐसी राह चली, पग-पग पर–
छलकी इसकी गीत-गागरी !

जाने कैसे जान गयी यह
अन्त अनुज की मर्म कथा का
जाने कौन सगा नाता है
इससे मेरी मौन व्यथा का
जो उमड़े फिर थमे न आँसू
ऐसो बैरिन व्यथा बावरी !

उमरचन्द जायसवाल

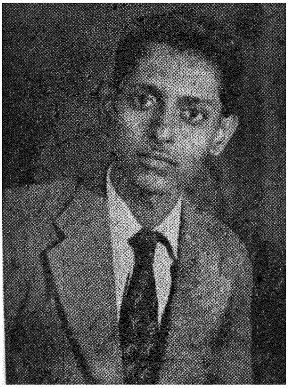

आप कविता के अतिरिक्त कहानियाँ भी लिखते हैं। भ्रमण, फोटोग्राफी और संगीत से विशेष रुचि है। पढ़ाई जारी हैं। बी० ए० सी० (अन्तिम वर्ष) विद्यार्थी हैं। रचनाएँ पत्र पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। कृष्णचन्द्र, अश्क, राजेन्द्र यादव, यशपाल राजकमल चौधरी आपके प्रिय लेखक हैं। धर्मवीर भारती, अज्ञेय, नागार्जुन आदि कवियों की नई कविताएँ पसद करते हैं। बच्चन, नीरज, रामानन्द दोषी, रामावतार त्यागी और बालस्वरूप 'राही' आपके प्रिय गीतकार हैं।

ओउम फ्लावर मिल
चक्रधरपुर (बिहार)

उमरचन्द आर्यसवाली

मेरा साथ निभाना होगा

तुम्हें आज रुक जाना होगा
साथ-साथ जब हम आये हैं
साथ-साथ ही जाना होगा
तुम्हें आज रुक जाना होगा।

जनम जनम का साथ हमारा
तोड़ रहे क्यों मुझसे साथी
जीवन का आधार हमारा
मोड़ रहे क्यों मुझ से साथी

मेरी क्या इसमें गलती है
आज मुझे बतलाना होगा
तुम्हें आज रुक जाना होगा।

एक बार जब प्यार किया है
दुख में सुख में साथ दिया है
जीवन भर का साथ निभाने
हाथ-हाथ में थाम लिया है

जीवन की अन्तिम साँसों तक
मेरा साथ निभाना होगा
तुम्हें आज रुक जाना होगा।

उमरचन्द जायसवाल

मादक यह संसार हमारा

अमर रहे यह प्यार हमारा
जब तक चमके चन्दा तारा
जब तक दीप जले घर-घर में
जब तक हो नभ में उजियारा
अमर रहे यह प्यार हमारा।

बन्धन अपना कभी न छूटे
जनम जनम का साथ न टूटे
नेह दीप की स्वर्णिम किरणें
धो डालेंगी कल्मष सारा
अमर रहे यह प्यार हमारा।

भक्ति भाव हो तन में मन में
अंग अंग में नव उमंग ले
कहे कि यौवन कितना प्यारा
मादक यह संसार हमारा
अमर रहे यह प्यार हमारा।

*

मुस्काते चलो

लहरा के चलो
बल खा के चलो
तुम जब भी चलो
इठला के चलो
शरमा के चलो
सर झुका के चलो
तुम जब भी चलो
मुस्काते चलो
कंगना अपनी–
खनका के चलो
पायल अपनी–
झनका के चलो
तुम जब भी चलो
पागल सा सबको–
बना के चलो

*

कमलकृष्ण गोस्वामी

इलाहाबाद केन्द्रीय आडिट आफिस में ऑडिटर श्री कमलकृष्ण गोस्वामी का जन्म ननिहाल स्यालकोट में २० मई सन् १९३४ को हुआ। शैशवावस्था अधिकतर कश्मीर की सौम्य पर्वतीय मनोरम नगरी जम्बू में व्यतीत हुई। हिन्दी, अंग्रेजी साहित्य तथा इतिहास लेकर १९५४ में पंजाब विश्वविद्यालय से बी० ए० तथा १९५६ में आगरा विश्वविद्यालय से इतिहास में एम० ए० किया है।

कविताओं के साथ आप निबन्ध और कहानियाँ भी लिखते हैं। लिखने की प्रेरणा पू० माता जी व पिताजी के उत्साहवर्द्धक आशीर्वाद एवं मामा तुलसीदासजी से प्राप्त हुई। प्रारम्भ में आप उर्दू में भी लिखा करते थे। रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में बहुधा प्रकाशित होती रहती हैं। आप के भाई निबन्धकार और मामा पंजाबी भाषा के प्रसिद्ध कवि हैं।

९/७ अलोपीबाग कॉलोनी,
इलाहाबाद--६

कमलकृष्ण गोस्वामी

गहरी काली रात नहीं तुम जानते

मन को सारी आशाओं को तोड़कर,
तन का नाता अजनबियों से जोड़कर;
जो इन्सान जिया धरती की गोद में,
उसके दिल को बात नहीं तुम जानते !
जिसके भीतर जलती रहती आग है,
जिसके सीने में हर गम का दाग है,
जिसके अधरों की मुस्कानें सो गईं—
जिसकी आँखों का बुझ गया चिराग है,
उसकी ज्योति-किरण को तुम हो देखते,
गहरी काली रात नहीं तुम जानते ।
जिसे न अपने का भी कुछ एहसास है,
जिसकी रुक-रुक कर चलती हर साँस है,
जनम-जनम से जो प्यासा है नेह का—
सुख से कोसों दूर, दर्द के पास है,
उसकी बगिया के ही फूल निहारते,
सूखे-पीले पात नहीं तुम जानते ।
सुनी न तुमने जिसकी कुछ आवाज है,
जिसके सरगम का रूठा हर साज है,
जो जीता बस केवल जीने के लिए,
जिसका अपने तक सीमित हर राज है,
उसके जीवन की बहार को देखते,
बे मौसम बरसात नहीं तुम जानते !

*

कमलकृष्ण गोस्वामी

मुझे परवाह नहीं

मन टूट जायगा दर्द न जो पहचान सके,
तुम सुनो न मेरे गीत, मुझे परवाह नहीं।
यों सपने सुन्दर बहुत लगा करते लेकिन,
सुन्दर यथार्थ हैं कुछ सपनों से भी बढ़कर।
प्रिय लगते हैं वे बहुत सभी जो अपने हैं,
पर कुछ पराए प्रिय हैं अपनों से भी बढ़कर।
बाहर से हैं कुछ और, और हैं भीतर से
इन जगवालों का क्या कोई विश्वास करे।
मिल गया प्यार विश्वास भरा यदि कुछ तुमसे,
तुम बनो न मेरे मीत, मुझे परवाह नहीं।
धरती के वैभव के पीछे कुछ दीवाने,
कुछ दीवाने अम्बर के चाँद-सितारों के।
हैं टूट चुके सब तार बजे फिर भी वीणा,
स्वर आज मधुर लगते सूनी झंकारों के।
कहने को कुछ भी नहीं, व्यर्थ ये आलम्बन,
पर जीवन को साँसों की आस बँधाना है।
यह आस बँधे जो नेह-प्रीत की डोरी से,
ढह जाए थोथी रीत, मुझे परवाह नहीं।
सुख-दुख की गोदी में संघर्ष पनपते हैं,
यह धूप छाँह तो केवल नजरों का भ्रम है।
हर रात दिवस के ही समान जीवन अपना,
उत्थान-पतन कुछ नहीं, रहस्यों का क्रम है।
बस यही सत्य है जीवन का इसी लिए,
नित खेल मनुज के लिए रचे जाते, लेकिन।
मुझको सुख मिला सदा जीवन की हारों में,
छिन जाए मुझसे जीत, मुझे परवाह नहीं।

*

कमलकृष्ण गोस्वामी

दोनों का दुःख मिट जायेगा

तुम मुझसे अपनी बात कहो, मैं तुमसे अपनी बात कहूँ.
दोनों का दिल हलका होगा, दोनों का दुख मिट जाएगा !
हर पुष्प कली सौरभ-विहीन,
अधरों की स्मिति बासी-बासी ।
हर रूप मलिन औ' कान्तिहीन,
हर तृप्ति यहाँ प्यासी प्यासी ।
बैठे चुप-चुप गुमसुम दोनों; अजनबी जहाँ हम तुम दोनो,
उस धरती से कुछ आस नहीं, उस पर कुछ भी विश्वास नहीं,
आओ निज से ही आस करें, विश्वास अमर हो जायगा ।
बदनाम यहां की गली गली,
सच्चाई का कुछ मोल नहीं ।
सबके ही मुख में गाली है,
हमदर्दी का इक बोल नहीं ।
पनघट की रीती हर गगरी, यह नगरी भी कैसी नगरी;
सबकी दुनिया बनती-मिटती, सबकी साँसे घुटतीं लुटतीं,
हम मिलकर नेह लुटा दें तो, हर प्राणी फिर जी जाएगा ।
तुम मिले अचानक आज लगे,
युग-युग से जाने-पहचाने ।
कोई चाहे कुछ कहे मगर,
हम तुम दोनों ही दीवाने ।
दोनों के अन्तर का यह गम, इक पल भी कब हो पाया कम;
देखो अब रात ढली जाती, ये चन्दा तारे डूब चले,
तुम गाओ अम्बर झूमेगा, धरती का मन मुसकाएगा ।

कमला जैन 'जीजी'

सुश्री कमला जैन 'जीजी' एम. ए. प्राकृत व संस्कृत के मर्मज्ञ विद्वान पं० शोभाचन्द्र जी भारिल्ल की सुपुत्री हैं। आप का जन्म मध्य प्रदेश के खेराना गाँव में तथा विवाह सिवनी (म० प्र०) में स्वर्गीय सेठ अभिनन्दन कुमार जी के साथ हुआ था।

आप पर आप के सुसंस्कृत पिता का बड़ा प्रभाव पड़ा है। यही कारण है कि बचपन में ही आपकी कविताएँ तथा कहानियाँ आदि लिखने की ओर बहुत रुचि रही है। आपके भाई श्री ज्ञान भारिल्ल राजस्थान के अच्छे कवि हैं।

आपकी कविताएँ एवं कहानियाँ समय-समय पर पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। 'आधुनिक जैन कवि' तथा 'आधुनिक कवयित्रियों के प्रेमगीत' पुस्तकों में भी आप की कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। 'नारी जीवन' पुस्तक का आपने सम्पादन किया है। इस समय आप स्वतन्त्र लेखन के साथ शिक्षण कार्य कर रही हैं।

मरुधर बालिका विद्यापीठ
रानी (राज०)

कमला जैन 'जीजी'

अधर गाना चाहते पर गा नहीं पाते

अधर गाना चाहते पर गा नहीं पाते
आज रुकता कंठ में है गीत मेरा
आज सारा मौन है संगीत मेरा
स्वर निकलना चाहते पर आ नहीं पाते
अधर गाना चाहते पर गा नहीं पाते

दूर प्रिय की राह है सूनी अँधेरी
सिहरती पल पल हृदय में पीर मेरी
प्राण जाना चाहते पर जा नहीं पाते
अधर गाना चाहते पर गा नहीं पाते

आज शबनम ने सजल मोती बिखेरे
देख भर आए सखी री नयन मेरे
नीर लाना चाहते पर ला नहीं पाते
अधर गाना चाहते पर गा नहीं पाते

खिल गईं कलियाँ खिले हैं फूल सारे
नील नभ मे आज हँसते हैं सितारे
शुष्क मानस आज पर सरसा नहीं पाते
अधर गाना चाहते पर गा नहीं पाते

मूक है रजनी कि सब जग सो गया है
मन न जाने रे! कहाँ पर खो गया है
चाँद, तारे, चंद्रिका अब भा नहीं पाते
अधर गाना चाहते पर गा नहीं पाते

*

कमला जैन 'जीजी'

पीर देकर जिन्होंने गलाया मुझे

माँगती हूँ निरन्तर उन्हीं की दुआ,
दर्द देकर जिन्होंने जलाया मुझे।

जल गई है चिता प्यार की आग की,
राख बन कर सभी स्वप्न मेरे मिटे।
एक क्षण को चली स्नेह की ज्योति थी,
एक क्षण वे बहारें दिखा कर गए।
देव ! उनको सहस्र कोटि वरदान दे,
स्नेह लेकर जिन्होंने मिटाया मुझे।

दीप उर में जले थे कभी स्नेह के,
द्वार पर फूल ले मैं कभी थी खड़ी।
एक कम्पन लिये था सिहरता हृदय,
स्वप्न था या कि थी सत्य ही वह घड़ी।
लाख दीपक चढ़ाऊँ उसी देव को,
शाप देकर जिन्होंने लुटाया मुझे।

नित नये स्वप्न से जो बना था कभी,
देखते-देखते चल दिया कारवाँ।
हम खड़े यूँही रहे थाम कर ये जिगर,
चार आँसू वहीं और आए गवाँ।
पंथ उसका अकंटक रहे सर्वदा,
पीर देकर जिन्होंने गलाया मुझे।

*

कमला जैन 'जीजी'

तुम्हारे देश के बादल

तुम्हें मैं भूल तो जाऊँ, मगर हर बार जाने क्यों,
मुझे आकर भिगो जाते तुम्हारे देश के बादल।
कि सारी शून्य सी धरती हरी, हर बार हो जाती,
नए अंकुर कहीं से फूट पड़ते नई आशा के।
दिशाओं में प्रतिध्वनि गूंज उठती अवश आत्मा की,
पवन से गीत झरते हैं हृदय की मौन भाषा के।
किसी अनजान पथ से दीप आशा के उतर आते,
मुझे सोने नहीं देते महकते अनगिनत बादल।

सुलगता एक रेगिस्तान मेरी जिन्दगी का है,
कहीं कोई नहीं छाया-तुम्हारी याद है केवल।
उसे भी छोड़ दूं आज्ञा तुम्हारी है यही लेकिन,
कहीं पर दीप्त है अनुराग का दीपक मधुर पलपल।
तुम्हारी भी विवशता है कि मेरे दग्ध जीवन में,
दिखा जाते कभी आकर अमर अनुराग का संबल।

सवेरे की सुहानी धूप मेरे जड़ित मस्तक पर,
तुम्हारे कंचनी कर से परस जीवन जगाती है।
निशा की चंदनी बाँहें गगन को बाँध लेती जब,
विवश हूँ प्रिय विवश हूँ तब तुम्हारी याद आती है।
तुम्हारी याद-जैसे किसी सूखे से सरोवर में,
कहीं से खिल पड़ें सहसा सपन के सैंकड़ों शत-दल।

*

कुमारी राधा

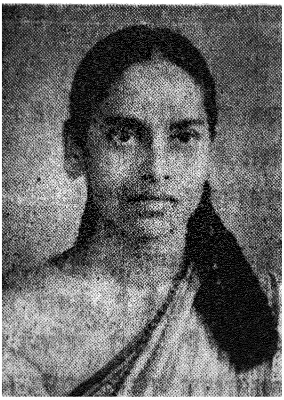

आपका जन्म सन् १९३६ को जीवछपुर में हुआ। सम्प्रति बी० ए० प्रीवियस (हिन्दी आनर्स) की छात्रा हैं और पटना विश्वविद्यालय में पढ़ रही हैं। सन् १९५३ से आप साहित्य क्षेत्र में हैं। अब तक अनेक प्रमुख पत्रों में रचनाओं का प्रकाशन हुआ है। कई साहित्यिक संकलनों में आपकी रचनाएँ संकलित हैं। 'सरयू कछारों की हरिणी' आपका कविता-संग्रह १९६१ में प्रकाशित हो चुका है। एक कहानी-संग्रह शीघ्र प्रकाशित होने को है। आकाशवाणी से भी रचनाएँ समय-समय पर प्रसारित होती रहती हैं। सामाजिक, राजनीतिक और साहित्यिक विषयों पर बहसें करना और इन क्षेत्रों में तत्परता पूर्वक काम करने में आपकी विशेष अभिरुचि है।

नागेश्वर कॉलोनी,
बाकरगंज, पटना—४

कुमारी राधा

मेघ गीत

ये काले कजरारे बादल, बड़े हठीले आये।

उमड़ी प्यास धरा की, हहरी
खेत-खेत की छाती
एक विरह का गीत जगा
मिल गयी पिया की पाती
उमड़-उमड़ घन घहरे पागल, प्यास बुझाने आये।
ये काले कजरारे बादल, बड़े हठीले आये॥

कोर-कोर तक उमड़
तलैयों ने गाया मल्हार
दूर दूर तक उड़
गरबैयों ने सुन ली झंकार
बजी बिजुरिया की मधु पायल, रास रचाने आये।
ये काले कजरारे बादल बड़े हठीले आये॥

बीत गयी शापों की बेला
यक्ष मगन मन आज
अलका में सिंगार सजाती
रच रच बिरहन साज
आंज रही नैनों में काजल, मेघ गगन, मन भाये।
ये काले कजरारे बादल, बड़े हठीले आये॥

*

कुमारी राधा

एक साँझ

अरी यह साँझ घिर आई।

डगर की धूल पर मादक मिलन के गीत मुसकाये,
नयी-सी कोंपलों को कुछ नये खग चूमने आये,
लजीली-सी चुनर में बंधे सुहागिन कामिनी आई।
अरी यह सांझ घिर आई।

कहीं पर दूर बजती बाँसुरी की धुन लगी छाने,
किसी की याद पलकों पर लगी कुछ पीर सजवाने,
लहरियों पर किसी की आँख की मदिरा उतर आई।
अरी यह साँझ घिर आई।

लदी डोंगी किनारा दूर, पर गाते चले आते,
धरा से शून्य तक वरदान है छाते चले जाते,
नवल सिन्दूर से सजकर किसी की माँग भर आई।
अरी यह साँझ घिर आई।

*

कुसुम दीक्षित

आपका जन्म ११ मार्च १९३८ ई० को उन्नाव जिलान्तर्गत निहालपुर नामक ग्राम में हुआ। पिता श्री नर्मदा प्रसाद जी अवस्थी हैं। सम्पूर्ण परिवार उनके व्यक्तित्व से प्रभावित है। परिवार का साहित्यक वातावरण प्रारम्भ से ही रहा। आपका विवाह सन् १९५५ में उन्नाव जनपद में ही श्री रविशंकर दीक्षित एम० ए० बी० टी० साहित्यरत्न के साथ हुआ। घर की साहित्यिक एवं आदर्श भूमिका पर सरस दाम्पत्य जीवन की स्वाभाविकता ने हृदय की सहज भावनाओं को उकसाया और वह भावनाएं सन् १९५७ से प्रायः गीत की पंक्तियों में सहज ही बदलने लगी। आजकल आपको गीत लिखना अत्यन्त प्रिय हो गया है।

द्वारा श्री एल० पी० तिवारी,
संस्कृत डिग्री कालेज,
ढाना, सागर (म० प्र०)

कुसुम दीक्षित

तुम पर मेरे प्राण निछावर

तुम मुझ पर ऐसे कुछ छाये
जैसे धरती पर नीलाम्बर

धरती चाहे जितना फैले
अम्बर आँचल ढक लेता है
जैसे मेरे साथ सब तरफ
प्यार तुम्हारा चल देता है

गूँज - गूँज टकराता तुमसे
मेरे अन्तस्तल का हर स्वर

तुमको मेरी साँस घेरती
इच्छा अपने पास टेरती
दूर न जाना नयनों से प्रिय !
तुमको इनकी प्यास हेरती

कैसे छोड़ूँ मोह तुम्हारा
तुमसे इतना नेह लगा कर

तुमको मेरा ज्ञान समर्पित
तुमको मेरा ध्यान समर्पित
जो भायेगा वह गाऊँगी
तुमको वह हर गान समर्पित

तो तुम जैसे चाहो रक्खो
तुम पर मेरे प्राण निछावर

*

कुकुम दीक्षित

तुम और मैं

वहाँ की तुमने मेरी याद
यहाँ बादल ने अश्रु बहाये

बैठ तुमने सरिता के तीर
तिराई जो लहरों में पीर
वही अम्बर पर छाकर आज
झरी जैसे हो दृग का नीर

वहाँ जब लगी तुम्हारे प्यास
यहाँ चातक ने स्वर दुहराये

दूर निर्जन उपवन के पास
भरे जितने तुमने निःश्वास
सभी मलयानिल लेकर आज
चला आया प्रिय ! मेरे पास

वहाँ जब तुमको हुआ विषाद
यहाँ शुलभों के मन अकुलाये

तुम्हारी मधुर प्रणय की चाह
विरह-पीड़ा से रही कराह
दिखाता दीपक मुझको रोज
भरा है जिसमें अन्तर्दाह

वहाँ तुम जागे सारी रात
यहाँ नखतों के दृग अ ासाये

तुम्हारे अलस अरुण-से नयन
तैरते रहते जिनमें सपन
देखती हूँ कलियों में रोज
खोलने आती जिनको किरन

वहाँ गाये तुमने जो गान
संदेशा यहाँ विहग ले आये

कुसुम दीक्षित

हम संगी चिरकाल के

दूर-दूर न दियो बसेरा
हम पंछी इक डाल के

उठने साथ साथ ही जगने
लेने साथ बसेरा
एक चाह है एक राह है
एक हमारा डेरा

अलग-अलग हम रह न सकेंगे
हम संगी चिरकाल के

दिन भर भटकें हाट-बाट हम
साँझ समय घर आएं
आप बीतियाँ दिन भर की सब
तब हम सुनें-सुनाएं

सह न सकेंगे विरह, सहेंगे
हमले हम भूचाल के

कोई और न संगी-साथी
और नहीं आधार है
छोटा-सा संसार हमारा
छोटा-सा परिवार है

खुशी-खुशी स्वीकारेंगे हम
तम भी बिना मशाल के

चाहे जो कुछ कहले दुनिया
हम बिल्कुल लाचार हैं
एक-दूसरे के जीवन के
प्रतिपल प्राणाधार हैं

हम दोनों हैं गमक, एक ही
गायन की लय-ताल के

कृष्णानन्दन व्यास 'बेआस'

बेआस प्रकाशन
गरौठा, झाँसी (उ० प्र०)

बुन्देलखण्ड की पावन भूमि गरौठा, झाँसी के श्री बेग्रास का जन्म उरई, जालौन के धागुवाँ कला ग्राम में १ जौलाई १९२१ को एक सनाढ्य ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपके पिता का नाम श्री नाथूराम जी टैंनगुटिया एवं माता जी स्वर्गीय पारवती देवी टैंनगुरिया थीं।

शिक्षा आपने अपने लब्ध प्रतिष्ठित नाना स्व० शिवदीन जी व्यास राज्य वैद्य के संरक्षण में प्राप्त की और उसी समय से आप गरौठा में ही निवास कर रहे हैं। आपकी शिक्षा हाईस्कूल तक है। आप बुन्देली गण्यमान गीतकार, सामयिक हास्य व्यंग के सफल कवि एवं छाया चित्रों के कुशल शिल्पी है।

आपकी 'बेआस के बोल' 'गरौठा के मढ़ी बन्द' 'बेईमान चालीसा' 'बेआस की फागें, त्रिवेणी' 'सीता के आँसू' (खण्ड काव्य) 'जय विश्व' 'बढ़ो वीर हिमालय पार' 'किस ओर जा रहे हो?' आदि छोटी बड़ी १५ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

कृष्णानन्दन व्यास 'बेप्रास'

तुमने प्यार कहाँ देखा है

तुमने प्यार कहाँ देखा है,
जिसमें हम मतवाले हैं।
वह संसार कहाँ देखा है,

देखे होंगे शूल अनेको,
चुभ कर स्वयं टूट जाते हैं।
मुखरित और सुवासित हो
बरबस मन में बस जाते हैं।
ऐसे भोले सुमनों का प्रिय
मन हर व्यापार कहाँ देखा है

देखे होंगे शलभ अनेको
दीप शिखा पर जलने वाले।
प्रज्वलित और प्रकाशित हो
अँधकार को हरने वाले।
जला रहा जो इन दीपों को
वह अंगार कहाँ देखा है।

देखे होंगे फूल अनेको
बहा बहा कर बह जाते हैं।
गगन विचुम्बति शिन्धु किनारे
बाहें कितनी फैलाते हैं।
नष्ट करें मरयादा को निज
बोलो! वह ज्वार कहाँ देखा है

देखे होंगे देव अनेको
गढ़कर जो पूजे जाते हैं
महा प्रसादों के आँगन में
सेवा हित जूझे जाते हैं
जो इनको गढ़ता है बोलो
वह करतार कहाँ देखा है

*

कृष्णानन्द व्यास 'बेग्रास'

संघर्ष गान मुझे गाने दो

मिलन विरह से ऊब गया मन संघर्ष गान मुझे गाने दो
मत रोको दुख मानवता का मानव तक पहुंचा आने दो
कवि को वाणी युग पुकार है
सभी सदा से कहते आये
कस्तूरी कैसी गन्ध भाव की
छिप नहीं पाती लाख छिपाये
उमड़ रहे जो अन्तः स्थलि में घुमड़ घटा वरषा आने दो
अरे धरा क्या गगन चीखता
रुदन श्रवण कर कंकालों का
मानवता की कृश काया पर
अनाचार लख धन वालों का
अमर शहीदों की समाधि पर शोश चढ़ा, चढ़वा आने दो
क्राँति विचारों में लाने का
समय आज है उठ विचार लो
मानव हो मानव के ऊपर
कष्ट न हो, वह गति सिहार लो
जय देश नहीं जय जग का नारा घर घर में गुजंवा आने दो

*

कृष्णानन्द व्यास 'बेप्रास'

वे गान और होते हैं

विंध जाते है स्वयं, बेध औरो को, वे बाण और होते हैं,
मचला देते स्वयं मचल औरों को, वे गान और होते है।

इस खुदगरजी दुनिया में
रिस्ते पैसे पर टिकते हैं,
दया धर्म के लम्बे पोस्टर
गलियों में बिकते हैं;
बेईमान मक्कार हजारों
गीता कुरान रटते हैं,
देशभक्ति का स्वाँग रचा,
पदलोलुप भों-भों करते हैं;
सिखला देते स्वयं सीख, वे गान और होते हैं।

हिंसक पशु से होड़ लगा कर
मानव, आज अकड़ते देखा,
इस जीवन में हमने सब पर
धन का नशा उमड़ते देखा।
भूखे शिशु का ग्रास छीनकर
पैरों तले रोंदने वाला,
तृप्ति नहीं पाता, अमृत सी
पीता और पिलाता हाला
पल जाते, स्वयं पाल औरों को वे प्राण और होते हैं।
मचला देते स्वयं मचल औरों को, वे गान और होते हैं॥

गोपालसिंह नेपाली

आधुनिक पीढ़ी के लोकप्रिय गीतकार श्री गोपालसिंह नेपाली जी का जन्म ११ अगस्त सन् १९११ ई०को बेतिया, चम्पारन (बिहार) में हुआ। किशोरावस्था से ही साहित्य सृजन। आप एक उच्चकोटि के फिल्मी गीतकार भी हैं। अनेक प्रमुख फिल्मों में आपके गीतों के ख्याति अर्जित की है। लगभग २० वर्षों से आप काव्य-सृजन करते चले आ रहे हैं। देश के अनेक सम्मनित पत्रों में आपके गीतों को उच्च स्थान प्राप्त होता है। आकाशवाणी से गीत अक्सर प्रसारित होते रहते हैं। कवि सम्मेलनों में आपके कवितापाठ से श्रोतागण तन्मय हो जाते हैं। सरसता तथा सरलता के कारण आपके गीतों का हृदय पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। क्लिष्ठ भाषा और अस्पष्ट भावों से आपका कृतित्व नितान्त दूर है।

चिचोली, पो० मलाड,
बम्बई—६४

गोपालसिंह नेपाली

जुगनू चिपका दूँ

मन करता है, प्रिये ! तुम्हारी अलकों पर जुगनू चिपका दूँ
चम-चम चमकें और झाँकियाँ, झलकों पर जुगनू चिपका दूँ

दिये न दमकें, फूल न गमकें
चमकें तो बस नयना चमकें
कक्ष-कक्ष के दिये बुझाकर, पलकों पर जुगनू चिपका दूँ
मन करता है, प्रिये ! तुम्हारी, अलकों पर जुगनू चिपका दूँ

मुखड़े पर क्यों तिल हों काले
दाग न भायें कालिख वाले
इन काले बदनाम तिलों के तिलकों जुगनू चिपका दूँ
मन करता है. प्रिये ! तुम्हारी अलकों पर जुगनू चिपका दूँ

कुञ्जगली या नदी किनारा
झिलमिल हो संसार तुम्हारा
जिनमें तुम घूमो उन हलकों, हलकों पर जुगनू चिपका दूँ
मन करता है, प्रिये ! तुम्हारी अलकों पर चुगनू चिपका दूँ

*

मुस्करा कर न कोई किनारा करे !

दूर जा कर, न कोई बिसारा करे, मन हमारा• दुबारा पुकारा करे
यों बिछुड़ कर न रतियां गुजारा करे, मन दुबारा-तिबारा पुकार करे !

मन मिला तो जवानी रसम तोड़दे, प्यार निभता न हो तो डगर छोड़ दे,
दर्द दे कर न यों बेसहारा करे; मन दुबारा-तिबारा पुकारा करे !

खिल रही है कली, आप भी आइए, बोलिए या न बोले चले जाइए,
मुस्करा कर न कोई किनारा करे: मन दुबारा-तिवारा पुकारा करे !

चाँद-सा हुस्न है तो गगन में बसे, फूल-सा रंग है तो चमन में हँसे,
चैन चोरी न कोई हमारा करे : मन दुबारा-तिबारा पुकारा करे !

हमतकें ना किसी की नयन-खिड़कियाँ, तोर-तेवर सहें ना सुनें झिड़कियां
कनखियों से न कोई निहारा करे : मन दुबारा-तिबारा पुकारा करे !

आप पर्दा करें तो किए जाइए, साथ अपनी बहारें लिए जाइए,
रोज घूंघट न कोई उतारा करे : मन दुबारा-तिबारा पुकारा करे !

लाख मुखड़े मिले और मेला लगा, रूप जिसका जंचा वह अकेला लगा,
रूप ऐसे न कोई सिंगारा करे : मन दुबारा-तिबारा पुकारा करे !

आप चाहें, हमारी डगर बन्द हो, तो नजर आपकी भी नजरबन्द हो,
खिड़कियों से न कोई इशारा करे : मन दुबारा तिबारा पुकारा करे !

रूप चाहे पहन नौलखा हार ले, अङ्ग-भर में सजा रेशमी तार ले,
फूल से लट न कोई संवारा करे : मन दुबारा-तिबारा पुकारा करे !

पग महावर लगा कर नवेली रंगे, या कि मेंहदी रचा कर हथेली रंगे,
अंग-भर में न मेंहदी उभारा करे : मन दुबारा तिबारा पुकारा करे ।

एक दिन क्या मिले, मन उड़ा लेगए, मुफ्त में उम्र-भर की जलन देगए,
बात हमसे न कोई दुबारा करे : मन दुबारा-तिबारा पुकारा करे !

गोपालसिंह नेपाली

तुम और मैं

आ रहे तुम बन कर मधुमास, और मैं ऋतु का पहला फूल।

घने तुम काले-काले मेघ उठे हों आज बांध कर वृन्द,
और मैं उठा पवन से सिहर थिरकता धारों पर जल-बुन्द।
बने तुम गगन, गगन-मुख चन्द्र चन्द्र की किरण, रेशमी डोर
और मैं तुम्हें देखने बना, मुग्ध दो नयन, नयन की कोर
सबल तुम आगे बढ़ते चरण और मैं पीछे पड़ती धूल।

तरुण तुम अरुण किरण का बाण, कठिन मैं अन्धकार का मर्म,
मधुर तुम मधुपों की गुंजार और मैं खिली कली की शर्म।
दूर की तुम धीमी आवाज, गूंजती जो जग के इस पार,
रात की मैं हूँ टूटी नींद नींद का बिखर गया संसार।
चपल तुम बढ़ती आती लहर और मैं डूब रहा उपकूल।

सुभग तुम झिलमिल झिलमिल प्रात प्रात का मन्द मधुर कल हास,
गहन में थकी झुटपुटी सांझ उतरती तरु कुन्जों के पास।
सघन तुम हरा-भरा वन-कुंज कुंज का मैं गायक खग-बाल,
तुम्हारा जीवन मेरा गान और मेरा जीवन तरु डाल।
पुरुष तुम फैला देते बाँह, प्रकृति मैं जाती उन पर भूल।

प्रबल तुम तेज पवन की फूंक फूंक से उठा हुआ तूफान,
और मैं थर-थर कंपित दीप दीप से झाँक रहा निर्वाण,
कुशल तुम कविकुल-कण्ठाभरण और मैं एक तुम्हारा छन्द.
जन्म तुम बनने का शृङ्गार मरण में मिटने का आनन्द।
सरल तुम प्रथम बार का ज्ञान और मैं बार-बार की भूल।

*

गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

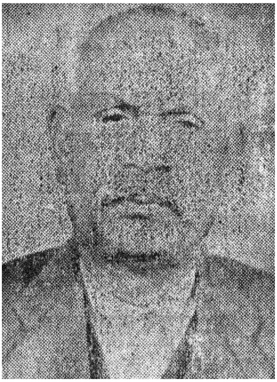

'शङ्कर निवास'
झाँसी (उ० प्र०)

द्विवेदी कालीन कवि श्री गौरी-शङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर' जी की जन्म तिथि आश्विन शुक्ल १० (श्री विजयादशमी) सं० १९५३ वि०, शुक्रवार १६-१०-१८५६ ई० है और जन्म स्थान ताल बेहट (झाँसी) है । शिक्षा हिन्दी, संस्कृत, उर्दू और अंग्रेजी है । साहित्य सेवा के क्षेत्र में सं० १९७० वि० से प्रवेश किया । लेख, कविताएँ, कहानियाँ उसी समय से पत्रों में प्रकाशित होने लगी थीं । अबतक छोटी बड़ी लगभग तीन दर्जन पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं । अनेक मासिक और साप्ताहिक पत्रों, पुस्तकालयों, संस्थाओं के जन्मदाताओं में हैं कितनी ही साहित्यिक संस्थाओं के अध्यक्ष और प्रधानमन्त्री रहे हैं। बुन्देली और लोक साहित्य सम्बन्धी शिक्षा से प्राय: ४० उच्च शिक्षा प्राप्त विद्वानों को पी० एच० डी० और डीलिट् की थीसिस तैयार कराने में सहयोग दिया । प्राय: अब तक ५० ग्रन्थों का सम्पादन कर चुके है ।

गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

पावस गीत

घिर-घिर-घिरी घटा घनघोर ।
अँधियारी अनियारी आई, छाई छिति-छिति- छोर;
घिर-घिरि-घिरी घटा घनघोर ।
उमड़-घुमड़ कर बादल बरसे,
जीव-जन्तु, जन-जन, जग हरसे,
वन-वन बाग-बाग लहराने, हो आनन्द-विभोर;
घिर-घिर-घिरी घटा-घनघोर ।
छपकी झप्प झरोखन ऐसे,
रात स्वयम् आई हो जैसे;
चकचाक चौंके चंचल चित, बिछुड़े कर कर शोर;
घिर-घिर-घिरी घटा-घनघोर ।
चपला चपल चमाचम चमकत,
चकचौंधी दे, दिशि-दिश दमकत,
सिहरन करती कौंध-कौंध कर, भरती हृदय हिलोर;
घिर-घिर-घिरी घटा घनघोर ।
नदी नद उमड़े बह बहके,
चातक, मोर शोर कर चहके,
मेघ मलार मुग्ध मन गावें, गांव-गांव सब ओर;
घिर-घिर-घिरी घटा घनघोर ।
पावस दे देता सबको सुख,
बिरहिन को देता दारुण-दुख,
छेद-छेद छलनी उर करते, मनसिज-बाण-कठोर;
घिर-घिर-घिरी घटा घनघोर ।

*

गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

जीवन पहेली

बढ़ चलें हम, बूझ लें निज, स्वयम् जग-जीवन-पहेली।
कौन कहता, विपुल-वैभव, विश्व से सब खो गया है;
कौन कहता, भाग्य अपना, सर्वदा को, सो गया है।
कौन कहता, हम न आगे बढ़ सकेंगे, कभी भी अब;
कौन कहता, हाय! वह युग आज सपना हो गया है।
हम वहीं जिनके करों में, ऋद्धि, सिद्धि, समृद्धि खेली।
भ्रातृ-हित जो भरत जैसा, त्याग करना सीख जायें;
अनुज लक्ष्मण की तरह जो, अनुज अपने वृद्धि पायें।
अगर बहिनें बढ़ चलें दृढ़, आज सीता की तरह तो;
स्वयं नत मस्तक बनें सब, धूल में मिल आपदायें।
विश्व का उद्धार कर दे, जाति यह केवल अकेली।
सुदृढ़ मन, बच, कर्म से यदि कार्य कुछ करके दिखाया
स्वयं अपने आप को, अर्जुन-सुदामा सा बनाया।
फिर मिलेगा कृष्ण सा, साथी-सखा हमको यहीं पर;
विश्व-हित का ध्यान रख कर, राग यदि अपना सुनाया।
शुद्धता मन-बुद्धि में हो, स्वार्थ की हो वह न चेली।
भली विधि जो जान पायें, गति अगर जीवन-मरण की;
साध यदि जो जाग जायें, महज्जन के अनुकरण की।
तो न कोई शक्ति जग में, जो हमारा मार्ग रोके;
शीश-मस्तक पर चढ़ायें, धूल सब उनके चरण की।
सिद्धि चिर चेरी बनें फिर, हो सफलता भी सहेली;
बढ़ चलें हम बूझ ले निज, स्वयं जग-जीवन पहेली।

*

गौरीशङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर'

ग्रामों की ओर

चलें हम फिर ग्रामों की ओर।

जहाँ पर ऊँचे-ऊँचे वृक्ष, सघन वन छाया शान्ति निकेत,
हरित तरु-पल्लव हिल-हिल जहाँ, भेंटते हैं सौहार्द समेत।
बिहरते पशु पक्षी सानन्द, न चलते जहाँ अधिक छल छन्द;
जहाँ गिरि खण्डों पर अल्मान बिचरती पवन सतत स्वच्छन्द।
बोलते फुदक-फुदक कर मोर, चलें फिर हम ग्रामों की ओर।
जहाँ के बासी परम बलिष्ठ, व्यर्थ के मतभेदों से दूर;
रहें हिल मिल सब रख कर सदा, परस्पर प्रेम भाव भरपूर।
बने छोटे-छोटे घर जहाँ, स्वच्छता का जिनमें साम्राज्य;
वही हैं उनके मङ्गल-सदन, खेत हैं उनका अपना राज्य।
न लम्पट लड़ें जहाँ रण-जोर, चलें हम फिर ग्रामों की ओर।
कृषक-गण होकर कर्मारूढ़, जहाँ निश दिन करते हैं काम;
धूप वर्षा या उत्कट शीत, नहीं दे सकता जिन्हें विराम।
जहाँ पर गाय-भैंस को सभी, मानते हैं घर का शृङ्गार;
जहाँ पय-गोरस की सर्वत्र, आज भी बहती है रसधार।
मिले जिसका कुछ ओर न छोर, चलें हम फिर ग्रामों की ओर।
जहाँ पर प्रचुर परस्पर प्रेम, शुद्ध सबके आचार-विचार;
जहाँ की दिनचर्या में व्यस्त, हृदय पाता है हर्ष अपार।
जहाँ सुख-दुख में साथी सभी जहाँ पर सत्य सरल व्यवहार,
जहाँ नर-नारी सब ही रहें, मान कर एक बड़ा परिवार।
न होवें जहां पाप अति घोर, चलें हम फिर ग्रामों की ओर।
जहां ऊषा से भी कुछ पूर्व, देवियों को [illegible]-रम्य;
चक्कियों की मृदु-ध्वनि के साथ, हृदय भरता [illegible]
[illegible] पर हर्षित होकर युवक, झूलते नीम-आम की डार;
और हिल-मिल कर छोटे-बड़े, जहाँ पर गाते मुदित मल्हार।
[illegible] [illegible] ओर।

चन्द्रमोहन 'हिमकर'

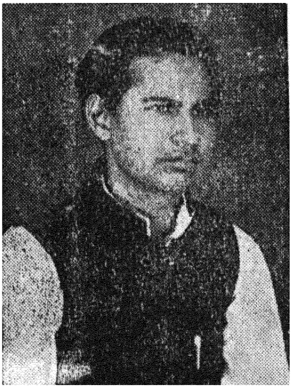

उदयपुर (राजस्थान) निवासी कवि श्री चन्द्रमोहन 'हिमकर' का जन्म २३ दिसम्बर १९२५ ई० को हुआ। शिक्षा एम० ए० (भूगोल) एम० ए० अर्थ-शास्त्र, साहित्यरत्न हैं। व्यवसाय-अध्ययन-अध्यापन के साथ स्वतन्त्र लेखन है। सन् १९४६ से आप साहित्य सृजन कर रहे हैं। 'विडम्बना' नामक हास्य व्यंग्य संग्रह प्रकाशित हो चुका है। लगभग १० पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ प्रकाशनार्थ तैयार है। कविताओं के अतिरिक्त कहानियाँ, निबन्ध भी लिखते है। रचनाएँ अनेक पत्र पत्रिकाओं में समय समय पर प्रकाशित होती रहती हैं।

अध्यक्षः राजस्थान शिक्षा विभाग
प्रधान कार्यालय
बीकानेर (राज०)

चन्द्रमोहन 'हिमकर'

नयी आशा

प्रणय के रूप गगन में आज, नई आशा की उठी हिलोर।
निलय पर श्याम घटायें देख नाचता है मेरा मन मोर।

खोल कर अवगुण्ठन प्रिय मौन, चलाती जीवन नौका कौन,
छू रही प्रणय पंथ अज्ञात, नवल आशा का हुआ प्रभात
देख कर रूप शिखा की ओर नाचता है मेरा मन मोर।
प्रणय के रूप गगन में आज नई आशा की उठी हिलोर॥

देख अलकों का अवगुण्ठन, कि पलकों का नूतन नर्तन,
कि प्राणों का प्रिय अभिनन्दन, कि चंचल गति से परिवर्तन ?
गगन पथ से सुन तेरा गान हो गया मैं आनन्द विभोर।
निलय पर श्याम घटायें देख नाचता है मेरा मन मोर॥

छिपाये नयनों में मधु प्यास कि मरने जीने का अभ्यास।
पूछता खिन्न गगन अभिराम प्रणय पथ पर देखे घनश्याम ?
कल्पना कानन की मृदु रोर, छू रही जीवन पथ के छोर।
देख कर रूप गगन में तुम्हें, नाचता है मेरा मन मोर॥

विश्व वीणा पर गाता गान सुनाता विरह मिलन की तान,
प्यार का प्राणों से कर मोल, प्रफुल्लित है जीवन अनमोल,
कामना कल्पतरु का प्यार, खींचता जन जीवन की डोर।
देख कर रूप गगन में तुम्हें, नाचता है मेरा मन मोर॥

*

चन्द्रमोहन 'हिमकर'

दुलहिन का रूप निराला है

सावन में धरती दुलहिन का रूप निराला है,
अम्बर से धरती का प्रियतम आने वाला है।

एक प्रणय सन्देश मनुज में जीवन लाया है,
प्यार भरा धरती का चल अञ्चल लहराया है।
प्राणों मे मधु प्यास निरन्तर बढ़ती जाती है,
किन्तु मिलन बेला में जीवन फिर मुस्काया है।

मिलन सेतु बन इन्द्र धनुष अब हँसने वाला है,
सावन में धरती दुलहिन का रूप निराला है।

सांध्य गगन की ललित लालिमा पंथ सजाती है,
सुधियों की निधियों का हँस अम्बार लगाती है।
दर्शक बन कर मेघ दूत कुछ गाते आते है,
दामिनि हँस कर उन पर सिन्दूर लगाती है।

पावस के स्वागत में अब कण कण मतवाला है।
अम्बर से धरती का प्रियतम आने वाला है।

नव वधु की पायल में रिमझिम अनुपम माया है,
ये श्याम घटाएं कजरारे नयनों की छाया है।
हरियाली साड़ी में सर सारङ्ग चमकाते हैं,
पावस प्रियतम प्रणय मिलन आनन्द समाया है।

उमड़-घुमड़ घन घोष कर रहे चंचलवाला है,
मधु मकरन्द छलकता यौवन मधुमय प्याला है।

*

चन्द्रसेन 'विराट'

अब सयानी हो गई है

यह उचित है वक्त पीले हाथ कर दो,
साध मन की अब सयानी हो गई है!
भावना की चूनरी को ओढ़ कर अब,
वह स्वयम् से ही लजाने लग गई है।
गूंथती शेफालिका निज केश में अब,
भाल पर टिकुली सजाने लग गई है।
आज की यह बात तुम कल पर न टालो
बात कल की अब कहानी हो गई है।
अब नयन रह कर अबोले बात करने,
सांस में मलयज महकने लग गया है।
एक ठण्डी आग सुलगी है हृदय में,
और शीतल तन दहकने लग गया है
उम्र का मंगल मुहूरत खो न देना,
जबकि ऋतु की महरबानी हो गई है।
यह किसी के रूप को इतना चढ़ाया।
जो किसी की आँख का जादू कहो तुम,
बात यह उसकी समझ में आ गई है,
चाह ने सौन्दर्य को दृग में बढ़ाया
चाहती है प्यार को होना समर्पित,
दर्प की चट्टान पानी हो गई है!
उलझ जाती कुंतलों में है अमावस,
चांदनी उबटन लगाने लग गई है।
हो उठे हैं प्रणय के सपने तरुण अब,
कामना मेंहदी रचाने लग गई है।
हो गये हैं नयन के डोरे गुलाबी,
और चूनर आसमानी हो गई है।

*

जगदीश 'विभाकर'

श्री जगदीश 'विभाकर' का जन्म स्थान गुड़गाँव जिले में तावड़ू नामक ग्राम में हुआ। साहित्य रुचि बचपन से ही उत्पन्न हो गई थी। फलतः किशोरावस्था मे ही कविताएँ, कहानियाँ लिखने लगे। तरुणावस्था तक पहुँचते पहुँचते आपकी रचनाएँ अनेक पत्र-पत्रिकाओं मे निकलने लगीं। अब पत्र पत्रिकाओं के अलावा भी आपकी रचनाएँ कई साहित्यिक संकलनों में स्थान पा चुकी हैं। आपका नवीन कविता संग्रह प्रकाशन के पथ पर है।

काफी समय से आप दिल्ली मे रहकर साहित्य-सृजन कर रहे हैं। 'दीर्घायु' मासिक पत्र के कर्मठ कार्य-कर्त्ता और सह-सम्पादक हैं। शिक्षा बी० ए० तक है। अध्ययन और सृजन के साथ आजकल दिल्ली विश्वविद्यालय से एम० ए० (हिन्दी) कर रहे हैं।

९/६५७८, देवनगर
नई दिल्ली–५

जगदीश 'दिवाकर'

चल पड़ी अधिनायिका........

श्रृङ्खला टूटी गगन से मेघ की
भावनाएँ मिट गई सब द्वेष की,
भीड़ से निकले सभी बन सहचरी
मिट गई मुरझी मलिनता—
उस असिञ्चित बेल की;

श्रृङ्खला टूटी गगन से मेघ की।
हो उठे हर्षित चमन मधुमास में
स्वप्न भी साकार थे इतिहास के,
कसमसाहट वाणियों की मिट गई
रागिनी बनकर पवन जब बह गई,
उन सिसकती भट्ठियों की—
आह से हिमशैल की;

श्रृङ्खला टूटी गगन से मेघ की।
चाँदनी की ओढ़नी ले दौड़ती
चल पड़ी अधिनायिका मुख मोड़ कर,
लोल-लहरें भी चलीं श्रृङ्गार कर
वर-बरस से वे प्रणय-गुञ्जारकर,
प्राची की ऊषा से विहँसी—
किरण नयनोन्मेष की;
श्रृङ्खला टूटी गगन से मेघ की

*

जगदीश विभाकर'

सजल नयन

हो आते हैं सजल, नयन क्यों ठहर-ठहर कर—
वन-मन में जब नाचें मोर शोर कर,
तप्त हो रहा विरह ताप से जब मन-मन्दिर,
खिल जाएँ क्यों मन के प्राङ्गण में कुसुमाकर।
नृत्य कर रहे बार-बार मन मधुर मिलन आशा से-
अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो उठते आलिङ्गन-कर्त्ता के,
क्षीण हो रहे मुक्तक सारे सर्व-रूप-स्रष्टा के,
रूप अनूप हुआ है पल में उस अद्भुत आभा से।
झर-झर-झरते नयन—
आह ! सावन सा रोता,
द्रवित हो उठा गगन और उससे जल बरसा;
टप-टप गिर विटपों से बूँदें अपना कष्ट सुनातीं
किन्तु वस्तुतः अस्थि पिण्ड की पीड़ा उर दहलाती

*

जगदीश 'विभाकर'

यह कैसा कजरारा बादल ?

मेरे नयनों की कोरों तक आ पहुंचा कजरारा बादल,
हृदय द्वार तब खोले मैंने आँसू जब बन आया पागल !

भटक न जाए मनमाना यह,
सब से ही अनजाना है यह;
हर पग पर ठोकर मिलती है:
गिर जाने को मतवाला यह,

बीच-बिचाव करूँ मैं कैसे—राहत अपनी छोड़ चुका यह,
खा-खाकर धक्के अब यह ढूँढ रहा पलकों का आंचल;
मेरे नयनों की कोरों तक आ पहुंचा कजरारा बादल !

समझाऊँ इसको बातों से,
गीतों से अथवा साजों से,
हर मेरा प्रयत्न विफल है;
सम्मुख इसकी मन चाहत के,

रोक नहीं सकता नादा को—खेल रहा जो निज जीवन से,
गिर जाए पर रिस न पाए सोच रहा मेरा मन कायल,
मेरे नयनों की कोरों तक आ पहुंचा कजरारा बादल !

उत्सुक है अश्रु गिराने को,
भावुक है थल पर भरने को,
मैं क्यों बाधक बनूँ राह में :
उद्यत जब धरणी मिलने को,

एकाकाकीपन अपना लूँगा—यदि तू निर्मल मिल जाए तो
धीरे से जब बरसा बादल खनकी भी धरती की पायल
मेरे नयनों की कोरों तक आ पहुंचा कजरारा बादल ।

*

ज्योति प्रकाश सक्सेना

अर्थ शास्त्र विभाग
छत्रसाल महाविद्यालय
पन्ना (म० प्र०)

'एक मुट्ठी चावल और दो हाथ' (खाद्य समस्या पर विवेचन) विन्ध्य प्रदेश एक आर्थिक परिचय' (आर्थिक समीक्षा)' लाल पीला और सफेद' (कहानी संग्रह) 'मौलश्री' 'ओस और अंगार' 'कल्पनाओं की धुरी पर' (कविता संग्रह) आदि पुस्तकों के रचयिता श्री ज्योति प्रकाश सक्सेना का जन्म-स्थान छतरपुर (म०प्र०) है और जन्म-तिथि २३ नवम्बर १९३१ । श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के शब्दों में--'एक अध्यापक' जिसके अध्ययन में संचय, तो दान में 'पर' की चिन्ता; और सचेष्टता में दृष्टि, तो चिन्ता में सृष्टि ! यही है ज्योति प्रकाश सक्सेना--सुघड़ मधुर गीतों का सृष्टा, कि जीवन का उसके विस्तृत रूप में दृष्टा-सरल सौम्य, शालीन तरुण ।'

ज्योतिप्रकाश सक्सेना

दो पाटों के बीच

यह दोराहा, यह असमंजस
इधर चलूँ या उधर बढ़ूँ।

सुबह चला तो शाम रिसाई
रात चला तो दिवस न आया,
ऐसा असगुन हुआ कि अब तक
मिला न संगी, दिखी न छाया,

यह बेमौसम, यह बेचैनी
इधर चलूँ या उधर बढ़ूँ।

चलते समय द्वार ने रोका
आँगन ने आवाज लगाई,
रो-रोकर दहलीज पुकारी,
लेकिन मुझको सूझ न आई,

अब यह संशय, अब यह मन्थन।
इधर चलूँ या उधर बढ़ूँ।

वैसे तो चलना जीवन है
रुकना है संकेत मरण का
लेकिन उस पथ पर चलना क्या
जहाँ न दीखे चिन्ह चरण का,

यह सूनापन, यह अकुलाहट
इधर चलूँ या उधर बढ़ूँ।

ज्योतिप्रकाश सक्सेना

बिखरा और निखरा हुआ जीवन

मेरा जो बिखर गया, मेरा है
मेरा जो निखर गया, सबका है
यह मेरी कुण्ठा
एकाकी है,
मेरी यह पीड़ा का
कोई हक़दार नहीं,
मेरा मन सीमा में
बन्दी है
मेरा दुःख सहने को
कोई तैयार नहीं,
मेरा जो भंवर गया, मेरा है
मेरा जो संवर गया, सबका है।
मेरा हर विघटन
अनदेखा है
मेरे हर सर्जन पर
दुनिया की आँख लगी,
मेरी हर कसकन
अनबूझी है
मेरे हर गुंजन से
दुनिया की प्यास भगी,
मेरा जो उतर गया, मेरा है
मेरा जो उतर गया, सबका है।

ज्योतिप्रकाश सक्सेना

गीतों के दीप

गीतों के दीप जले
स्वर का आलोक हुआ।

अन्तस की घाटी में
कचनारी हवा बही,
अधरों के पंख खुले
तारों की बाँह गही,
आँखों की बोली पर
यह तन नीलाम हुआ;
यह माटी के मोल बिका
मन का अनमोल सुआ।

गीतों के दीप जले,
स्वर का आलोक हुआ।

किरणों की आभा में
जीवन के पृष्ठ खुले
पूनमियाँ मावसिया
निमिषों के चित्र धुले,
यादों की लहर उठी
कूलों को लाँघ गई
अनजाने उधर गया
घावों का पुरा कुआ।

गीतों के दीप जले,
स्वर का आलोक हुआ।

तन्मय बुखारिया

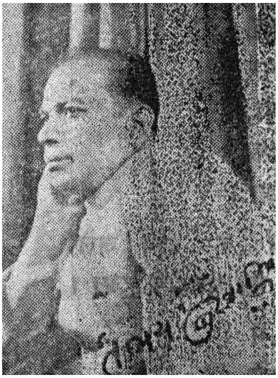

हिन्दी के प्रभावशाली कवि श्री बुखारिया जी का जन्म संवत् १९७७ में ललितपुर, झाँसी में हुआ। सन् १९३४ में आप राष्ट्रीय आन्दोलनों में भाग लेने लगे। परिणामतः सन् १९४०-४१ के व्यक्तिगत सत्याग्रह में ६ महीने के लिए तथा १९४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में एक वर्ष के लिए कारावास में रहे। जेल से बाहर आने पर पढ़ने की ओर विशेष रूप से प्रवृत्त हुए और बी० बी, एम० ए० की परीक्षा सफलता पूर्वक उत्तीर्ण की। तदुपरान्त होल-कर कालेज इन्दौर से लॉ फाइनल की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करके सन् १९५५ से ६१ तक ललितपुर में ही वकालत की प्रेक्टिस की। किन्तु अपने भौतिक कवि-स्वभाव से इस व्यवसाय से तिलाँजलि दे दी। रचनाएँ हिन्दी के लब्ध-प्रतिष्ठित पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। 'आहुति', 'पाकिस्तान', 'प्रहलाद', 'मेरे बापू', लालपदमधर सिंह' आपकी प्रकाशित पुस्तकें हैं।

ललितपुर,
झाँसी (उ० प्र०)

तन्मय बुखारिया

सब यत्न विफल हो जायेंगे

ये इतनी बड़ी-बड़ी आंखें नव कलिका सी,
सुरभित नजरों से मेरी ओर नहीं देखो,
ये मेरे गीत भ्रमर पागल हो जायेंगे !
ये अभी प्रतीकों को जंजीरों से जकड़े,
शह पाकर बागी फिर न रहेंगे बस में ये,
जिस तिस के सम्मुख गली-गली में चिर निलज्ज,
खाते डोलेंगे सलज, तुम्हारी कसमें ये।
तुम इनको इतना सिर न चढ़ाओ, रूपराज,
ये दगाबाज दुश्मन का बल हो जायेंगे !
ये मेरे गीत भ्रमर पागल हो जायेंगे !!
ये अभी बहुत भाते तुम को भोले भाले,
कल्पना तुम्हें इनकी कौतुक सी लगती है,
इकनी शैशव सी भावुकता से निर्विकार
गुदगुदी अभी प्राणों के भीतर जगती है,
कल ये वयस्क होकर अखरेंगे बहुत तुम्हें,
अनुशासन के सब यत्न विफल हो जायेंगे !
ये मेरे गीत भ्रमर पागल हो जायेंगे !!
इतनी न इन्हें दो कृपा-कोर आकंठ तृप्ति,
अधरों पर इन को अक्सर नहीं थिरकने दो,
जब चाहें तुम्हें द्रवित कर दें—गीली पलकें,
अपनी सांसों पर सांस न इनको धरने दो,
ये बरबस गले पड़ेंगे धड़कन बन करके
पांवों से लग-लग कर पायल हो जायेंगे !
ये मेरे गीत भ्रमर पागल हो जायेंगे !!

तन्मय बुखारिया

प्रेरणा से प्राणमय हूँ

इसलिए कहती मुझे बेहोश दुनिया,
मैं तुम्हारे रूप की मदिरा पिये हूँ
और पीता जा रहा हूँ।
कह दिया तुमने कि मैं चिन्मय चिरंतन,
और मैं विश्वास लेकर चल पड़ा,
सृष्टि को रंगीन महफिल में अचानक
मैं दिवाली के दिये सा जल पड़ा,
इसलिए जीवित समझते लोग मुझको,
मैं तुम्हारी प्रेरणा से प्राणमय हूँ,
और जीता जा रहा हूँ!
तुम मुझे मिलते रहे हर बार पथ में,
नित नई आभा, नये छवि वेष में,
पर तुम्हें पहचानता आया सदा मैं
हे विराट्म, सांस के इस देश में;
इसलिए मुझको समझते हैं सुगम सब
मैं तुम्हारे स्नेह को भर कर अहम् में,
स्वयं रीता जा रहा हूँ!
आज, अब इस जन्म में यह देर क्यों फिर,
किस लिए इतनी सलजता अन्यथा,
गीत के मिस और कब तक पुण्य मेरा
व्यक्त करता हो रहे अन्तर्व्यथा;
इसलिए मुझको समझते हैं सरल सब,
मैं युगों को बांध सकता, पर निमिष सा
मौन बीता जा रहा हूँ।

तन्मय बुखारिया

वर्षा गीत

मौसम को यह क्या नयी शरारत सूझी,
बादल बिजली की आँखें चार करा दीं,
बरसात बरस कर सबसे कह आई—
'बादल बिजली के घर में रह आई!
ऐसी निर्लज्जता देखी गई न रवि से,
स्वयमेव लजाया वयोवृद्ध शरमाया;
चन्दा ने सोचा चंचल मन बहकायेगा
तम के आँचल में आनन मलि छिपाया;
मूसलाधार को यह क्या नयी शरारत सूझी,
दिन और रात की आँखें चार करा दीं,
खुद रात विहँस कर सबसे कह आई।
उद्गम के घर से रूठी चपल वधू सी
पर्वती मान मर्यादाएँ तज निकली,
समतली किनारों के गारों को नदिया
बेशरम बाहुओं में भर कर मचली।
सावन को यह क्या नयी शरारत सूझी
सागर सरिता की आँखें चार करा दीं
सौगात सरस कर सब से कह आई।
बंजर धरती उर्वशी सरीखी सँवरी
वृक्षों के विश्वामित्रों के तप डोले,
बेहोश सुरभि ने अँगड़ाई ले-ले कर
अधमुँदे पराग के पलक सलज कुछ खोले।
सुषमा को यह क्या नयी शरारत सूझी,
अलियों कलियों की आँखें चार करा दीं
मधुवात तरस कर सबसे कह आई।

तपेश चतुर्वेदी

आपका जन्म १ फरवरी सन् १६२६ ई० को मझोली रियासत (गोरखपुर) में हुआ। शिक्षा दीक्षा आगरे में हुई। इन दिनों दयालबाग कालेज में वरिष्ठ प्राध्यापक हैं।

आपका अधिकाँश जीवन आगरे में ही व्यतीत हुआ है। अध्यवसायी और चिन्तनशील प्रकृति के भावुक कवि हैं। अविराम गति से गीतों का सृजन कर रहे हैं। देश की अनेकानेक पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर गीत प्रकाशित होते रहते हैं। आलोचना साहित्य पर भी आपका श्रेष्ठ व उल्लेखनीय अधिकार है। कई उच्चस्तरीय आलोचना ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

२० विजय नगर कॉलोनी,
आगरा

तपेश चतुर्वेदी

दीप की बाती छिपाए है अंधेरा

जरा चिलमन हटाकर मुस्करादो
यह अमावस पूनमी उजियार बन जाये
फूल सी हर राह कौरों से भरी है
दीप की बाती छिपाए है अन्धेरा
कौन सा दिनमान ऐसा है बताओ
जो बिछा दे स्याह आंगन में सबेरा
तुम जरा मेरे दिए को नेह दे दो
जिन्दगी की हर घड़ी त्योहार बन जाये
रूठ कर अब दूरियाँ इतनी बढ़ालीं
छू नहीं सकता तुम्हारी रूप-छाया
एक पल को यह कभी सोचा न तुमने
इस तरह कोई नहीं जाता भुलाया
तुम जरा इस गीत को बस गुनगुना दो
रूठती नफरत अमर मधु प्यार बन जाये
मन्दिरों के द्वार पर जा सिर झुकाया
पत्थरों के भी चरन मैंने पखारे
पर न जाने कौन सा नक्षत्र ऐसा
जो न फिर मिल पाए कभी दोनों किनारे
तुम जरा भुजपाश का सम्बल मुझे दो
आँसुओं का ज्वार भी पतवार बन जाये
कामना की मांग में सिन्दूर भरने
गीत अब बारात लेकर आ गया है
लौट कर ये डोलियाँ खाली न जायें
क्योंकि दुलहन पर नशा सा छा गया है
तुम जरा नजरें उठाकर देख लो
रूप का पतझार भी सिंगार बन जाये

तपेश चतुर्वेदी

तुम्हारी आँख का काजल

किसी की याद को झिलमिल बना देता तुम्हारी आँख का काजल

गगरिया सी झलक जाती तुम्हारी नीलमी आँखें
जुन्हाई सी बिछा देतीं तुम्हारी पूनमी आँखें

सदा सोयी बहारों को जगा देता तुम्हारी आँख का काजल

गगन ब्याही बदरियों सी तुम्हारी पावसी पलकें
क्षितिज की ओर तक फैलीं तुम्हारी मावसी अलकें

समन्दर को किनारों में बहा देता तुम्हारी आँख का काजल

सितारों की जड़ी रातें महकते फूल से सपने
घड़ी भर के लिए आते कभी होते नहीं अपने

मगर मन की नगरिया को बसा देता तुम्हारी आँख का काजल

मचलती रेशमी बाँहें खनकती चूड़ियों की धुन
पंखुरियों सी अँगुरियों में छिपाए चांद को दुल्हन

छलकते रूप की मदिरा पिला देता तुम्हारी आँख का काजल

शिकायत है तुम्हें मुझसे कि मैं अनजान सा क्यों हूँ
तुम्हारा साथ पाकर भी बना वीरान सा क्यों हूँ

करूँ क्या हृदय की धड़कन चुरा लेता तुम्हारी आँख का काजल
किसी की याद को झिलमिल बना देता तुम्हारी आँख का काजल

तपेश चतुर्वेदी

प्यार सिंधु के जल सा खारी

चाहे जो कुछ कहलो लेकिन प्यार सिंधु के जल सा खारी
काजल-बेंदी, पायल-मेंहदी
गोरा तन कजरारी सारी
वेणी फूल सजाए बैंठी
इन्द्र-धनुष सी राधा प्यारी
माना दरपन भी शर्माता यौवन जब लेता अंगड़ाई
चाहे जितना रूप संवारो लेकिन पास नहीं बनवारी
कोयलिया की कूक पुकारें
बादरिया की रिमझिम-रिमझिम
क्वारी साधों के पावों में
मन-पायल की रुनझुन-रुनझुन
साँस-साँस ने रात-रात भर वेणु बजाई, लोरी गाई
तूने लाखों सपन सजाए लेकिन आँख रही दुखियारी
हिरदय की जो पीर सुहागिन
आँसू से ब्याही जाती है
नयनों की डोली में चढ़कर
अधरों तक आ जाती है
सूनेपन को अपना कहकर तूने इतनी उमर गँवाई
जलते-जलते दीप बन गयी लेकिन पास रही अँधियारी
'आज' और 'कल' की राहों पर
जीवन प्रतिपल बढ़ता जाता
पर कोई वीरानी मरघट
हर राही को पास बुलाता
माना जग की हर मुश्किल से तन-मन की हो गयी सगाई
मंजिल पांव तले हो लेकिन नहीं घटेगी राह तुम्हारी।

तोताराम 'पंकज'

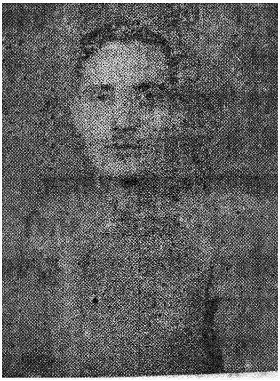

नागरी प्रचारिणी संघ
राजामण्डी,
आगरा

आपका जन्म २ जून सन् १९३६ ई० में हुआ। आप सरल सहज स्वभाव के एक भोले भाले मिलनसार व्यक्त हैं और खड़ी बोली बृजभाषा के उदीयमान कवि। आपकी बृजभाषा की रचनाएं आकाशवाणी से अक्सर प्रसारित होती रहती हैं। सूरदास के सही जन्म-स्थान के सम्बन्ध में एक बड़े महत्वपूर्ण कार्य में आप संलग्न हैं। इस सम्बन्ध में आपके लेखादि पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं।

आपने कुछ दिन पूर्व 'नव साहित्यकार' मासिक पत्र का प्रकाशन सम्पादन किया। आजकल 'साहित्यालोक' मासिक का सम्पादन एवं प्रकाशन कर रहे हैं।

रचनाएं पत्र पत्रिकाओं के अलावा अनेक साहित्यिक संकलनों में छपी हैं। निजी कई साहित्यिक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

अभिशाप

प्राण ! बस इतना बतादो और किससे प्यार करलूं ?
दे दिया जब दर्द तुमने क्यों न यह उपहार धर लूं ।
उर व्यथा से भर दिया रे
कौन यह जो छल रहा है ?
घाव अञ्चल में छिपाये
दीप-सा उर जल रहा है ।
सोचता हूँ पीड़ियों की हर व्यथा का भार हरलूं !
प्राण ! बस इतना बतादो और किससे प्यार करलूं ?
मिट गया उल्लास जब रे
क्यों न पीड़ित हों दिशाएं ?
छा गयो है कालिमा सी
यामिनी लाई व्यथाएं ।
अब कहाँ मधुमास कोकिल बोल री हिय हार भरलूं ।
प्राण ! बस इतना बतादो और किससे प्यार करलूं ?
आह ले रवि सो गया रे
श्री रहित शशि हो गया है ।
पंक बिन पंकज खिला जो
स्वप्न बन वह खो गया है ।
जो न जीने दो भला तो व्याधि का संसार वरलूं ।
प्राण ! बस इतना बतादो और किससे प्यार करलूं ।
जिन्दगी है प्यार की क्या
प्यार को बलिदान समझूं ?
प्यार ही अभिशाप है तब
क्या इसे भगवान समझूं ?
है प्यार का उपहार दुख तब क्यों न तुमसे प्यार करलूं !
प्राण ! बस इतना बतादो और किससे प्यार करलूं ?

सीताराम 'पंकज'

मेरे जीवन के कलाकार

तेरे अधरों का मधुर-हार
मेरे जीवन का चिर-सुहाग।
तेरी चितवन में चकाचौंध
मेरी आहों में करुण-राग।
तेरा कलियों-सा मृदुल-गात
मेरा उर पाहन-सम कठोर।
तेरा यश शशि की रश्मि-तुल्य
मेरा मन आकुल ज्यों चकोर।
तेरा नित-नूतन है विकास
मैं कृष्ण-पक्ष-सम अन्धकार।
तू मधुर व्यथा-सा शून्य चीर
रहता ज्योतिर्मय क्षितिज पार।
तेरी आभा है दिव्य-ज्योति
मेरा मन लहरों-सा अधीर।
आवाहन तेरा है बसन्त
मैं पतझड़कारी हूँ समीर।
याचक बन तेरे पड़ा द्वार
ठकरादे या करले दुलार।
क्या यही कला का पुरस्कार
करती मानवता चीत्कार।
अब कला, कला के लिए नहीं
है कला तिमिर-जीवन-निखार।
टूटी वीणा झंकृत करदे
मेरे जीवन के कलाकार।

तोताराम 'पंकज'

बसन्त-गीत

[बृज के एक लोक-गीत की ध्वनि पर आधारित]

सो आई रे बसन्त ऋतु अति प्यारी !
भाँति-भाँति के फूल खिले हैं
महक रहो है फुलवारी ।
रौस-रौस पै खिली केतकी
कोयल बोल रही कारी ।
सो आई रे बसन्त ऋतु अति प्यारी ॥
बेला, चम्पा, जुही, चमेली
है गुलाब की छवि न्यारी ।
सरसों भरी सुहाग माँग-सी
फूल रही है क्यारी-क्यारी ।
सो आई रे बसन्त ऋतु अति प्यारी ॥
देख-देख कर कलियन की थिरकन
झूम उठे हैं नर-नारी ।
पंकज खिले खिले या सरवर
देख भ्रमर मन बलिहारी ।
सो आई रे बसन्त ऋतु अति प्यारी !

दिलीप

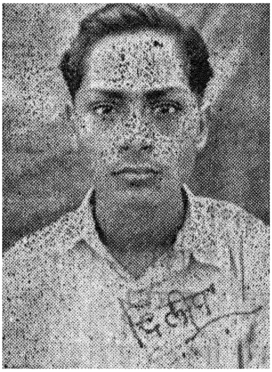

श्री दिलीप का जन्म ग्राम बावरपुर, अजीतमल, इटावा (उ०प्र०) में एक कायस्थ परिवार में हुआ। आपके पिता श्रीकृष्ण सहाय जी सक्सेना धार्मिक एवं साहित्य प्रेमी व्यक्ति हैं। आपको काव्य-सृजन की प्रेरणा पिता से विशेष रूप से मिली है। प्रथम कविता 'तब और अब' 'महिला सन्देश' में प्रकाशित हुई थी।

आजकल जनता इण्टर कालेज अजीतमल में अध्ययन कर रहे हैं।

बाबरपुर,
पो० अजीतमल,
इटावा (उ० प्र०)

मुरली और मन वीन

यौवन की अल्हड़ मस्ती में जब आ जाती याद तुम्हारी।
तेरी मुरली की ध्वनि सुनकर बज उठती मन-वीन हमारी॥

पनघट पर पायल बजती है,
हर कलिका खिलने लगती है,
प्रेम-नीर, उर-घट में भरके—
हर गोपी हँसने लगती है।

मृदुल माधुरी चितवन, मुझको हर लेती मुस्कान तुम्हारी।
तेरी मुरली की ध्वनि सुनकर बज उठती मन-वीन हमारी॥

वंशीवट पर नाच रहे हो,
मुरली के स्वर साध रहे हो,
राधा के उर में बस करके—
मोहन अब तुम भाग [illegible]।

मोर शिखामय आज रंगी है श्याम रंग में गोपी प्यारी।
तेरी मुरली की ध्वनि सुनकर बज उठती मन-वीन हमारी॥

उर में दीपक ज्ञान जलादो,
अन्धकार को दूर हटादो,
एक बार दर्शन दे करके—
मेरे मन की प्यास [illegible]।

न[illegible]र, [illegible] मन [illegible]।
तेरी मु[illegible] हमारी॥

दिलीप

मेरा तेरा राग पुराना

यों ही रो रो रात बिताऊँ
देव मेरे क्यों आज न आये ?

सदा साधना में मन मेरा, उर में बसा नाम अब तेरा।
हर गति में अब तू ही तू है, मन-मन्दिर में जय स्वर तेरा ॥

नेह लगाकर उस साजन से,
गीत विरह के किसने गाये ?

जीव कहाँ से जग में आया, प्रेम कहां से उसने पाया ?
जन्म मरण के अटल चक्र में, उसने फिर क्यों तुम्हें भुलाया ?

'गति ही जीवन' ध्येय तुम्हारा,
पर, गति मे अब तुम्हीं समाये।

पंकज की इन मृदु कलियों मे, मोहित 'पद रज' स्वर अलियों में
प्राप्ति हेतु मैं भटक रहा हूँ, जग की कंटकमय गलियों में ॥

मेरा तेरा राग पुराना,
तुमने ही वह मन्त्र सिखाये।

प्रियतम मेरे सुमन बिहारी

नील गगन की राहों पर मैं,
बाट जोहती रही तुम्हारी ।

मावस की अन्धियारी रातें,
पिय वियोग में ढलती रहतीं ।
और चकोरी की मन-आहें,
शशिकर बिना भटकती रहतीं ॥

इस जग के हर पनघट पर मैं,
राह देखती रही तुम्हारी

सावन के सरसाते बादल,
नभ में उमड़ घुमड़ कर छाते ।
किन्तु पपीहा की पुकार से,
नहीं भूलकर भी तुम आते ॥

मन में आशा लगी हुई थी,
कलियों में मुस्कान तुम्हारी ।

नव रस रंजित देव हमारे,
क्या मैं अपनी आश मिटादूं ?
तुम्हीं बतादो आज मुझे क्या,
वारिद बन मैं झड़ी लगादूं ?

तेरी स्वर लहरी पर मोहित,
प्रियतम मेरे सु-मन बिहारी ।

दीप हरीश

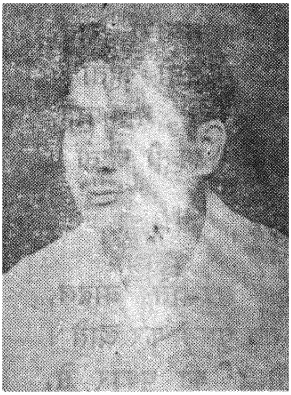

आगरा नगर के सुप्रसिद्ध व्यावसायी ला० रामप्रसाद जी अग्रवाल के सुपुत्र श्री 'दीप' हरीश की जन्म तिथि १६ जौलाई १६२६ है। कविता, कहानी, उपन्यासा, और संगीत के क्षेत्र में आपने अखिल भारतीय स्तर पर ख्याति अर्जित की है। भारत के प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में शायद ही कोई अछूती बची हो जिसमें आपकी रचना न छपी हो। पूरा नाम डा० हरिश्चन्द अग्रवाल है। कहानियाँ और उपन्यास इसी नाम से लिखते हैं। अब तक लगभग ३०० कहानियाँ, चार उपन्यास और लगभग १०० कविताएँ लिख चुके है। कहानी-संग्रह कला और जीवन' प्रकाशित हो चुका है। नया कहानी-संग्रह 'स्टील की छाती' प्रेस में है। कई उपन्यास एक साथ शीघ्र मार्केट में आ रहे हैं।

प... गो

ब... गज, आगरा

दीप हरीश

दे दी दान उमरिया तुमको

मन की तृप्ति चुरा कर तुमने जी भर कर ... मुझे ठगा है,
जितना प्यार बढ़ाया तुमसे, उतना दिल मे दर्द जगा है।
जब जब दर्शन को अकुलाया, मुंह पर ओढ़ी नील चुनरिया,
मुस्काते चन्दा पर जैसे, घिर आई हो श्याम बदरिया।
जब जब तरसे नैन बावरे, तुमने फेरी ढीठ नजरिया,
प्यास मिलन की रोई जीभर, मन की रीती रही गगरिया।
है सत्य आज लगता मुझको, सपने सब झूठे होते हैं,
अभिलाषओं की समाधि में, ये अरमान सदा रोते हैं।
तीर चला कर कभी न देखा, उर में कितना घाव लगा है,
मन की तृप्ति चुराकर तुमने जीभर कर तो मुझे ठगा है।
रतनारे नयनों का काजल, सागर सा लहराता यौवन,
बिक जाता है बीच हाट में, या चाँदी का प्रबल प्रलोभन।
मैंने कब सौदागर बनकर, रूप शशि का मोल लगाया।
दे दी दान उमरिया तुम को, दुनिया ने याचक ठहराया॥
अन्तर के अरमान कुँआरे आशा से कब हुई सगाई।
कितने यज्ञ रचाये मैंने फिर भी गंगा पास न आई।
प्यार भक्ति के बन्धन झूठे, कोई अपना नहीं सगा है।
मन की तृप्ति चुराकर तुमने जीभर कर तो मुझे ठगा है॥

दीप हरीश

नया सवेरा तुम को दूँगा

अपनी पीड़ा दर्द तड़प तुम मुझको दे दो,
मैं जीवन का नया सवेरा तुमको दूंगा।
जीवन पथ पर मिले बहुत से राही होंगे,
तुमने कहकर मीत उन्हें अपनाया होगा,
चन्द्र किरण से होड़ लगा कर तुमने साथी,
नील गगन के चन्दा को शरमाया होगा॥
रूप कली का गीत भंवर से छल कर तुमने,
मन वीणा पर गीत मिलन के गाये होंगे।
दे आँचल की ओट पवन की आँख बचाकर,
विहँस विहँस अन्तर के दीप जलाये होंगे।
किन्तु सफर जीवन का इतना सरल नहीं,
जब चाहो सुख की छेड़ सको तुम बाँसुरिया।
गल गल कर बह जाते हैं अनुराग सभी,
जब किसी धूप को डस लेती है बादरिया।
यूं तो हंसते नभ के पट पर लाख सितारे,
कब चूनर को झिलमिल अपनी दे पाये हैं?
जलने को तो दीप बहुत से जलते रहते,
कब पथ के प्रहरी-बन राह दिखा पाये हैं?
है वह ही इन्सान कि जिसने हँसते हँसते,
मानवता के लिये सदा विषपान किया है।
जिसके उर के घाव न जगवालों ने देखे,
स्वयं नष्ट हो जग को जीवन दान दिया है।
इसी सत्य की शपथ तुम्हें तुम आ भी जाओ,
मैं प्राणों का नया बसेरा तुमको दूंगा।
अपनी पीड़ा दर्द तड़प तुम मुझ को दे दो,
मैं जीवन का नया सबेरा तुमको दूँगा॥

फासला क्यों है ?

है अगर मुझसे तुम्हें कुछ प्यार तो,
क्यों कदम उठता नहीं मजबूर है ?
चाँद बदली में छिपा ही रह गया तो,
रात की चूनर न तारों से सजेगी;
दर्द ने छेड़ा अगर अपना तराना,
प्रीति के स्वर में न शहनाई बजेगी;
स्नेह से भरदो दिया मन का सलोनी,
प्राण से कह दो-जलन मंजूर है !
कर रहा इकरार तो इन्कार क्यों,
क्या नहीं विश्वास मेरी साधना पर ?
रूठ कर चल दे न यह मन का बटोही
तम न छा जाये कहीं आराधना पर,
हर लहर तट की भुजाओं में समाकर,
पा रही देखो प्रणय भरपूर है !
सोचलो कुछ रात बाकी है अभी भी,
भोर का तारा अभी चमका नहीं है।
वीन में अब राग विरहा का जगा है।
आँख का पानी अभी छलका नहीं है।
तुम जगादो रागिनी फिर से मिलन की
स्वप्न के जग का यही दस्तूर है !

दुर्गाप्रसाद झाला

बागली
जि० देवास (म० प्र०)

कुछ लोगों की दृष्टि में सीधे सरल और कुछ लोगों की दृष्टि खतरनाक श्री दुर्गाप्रसाद झाला का जन्म १९३३ ई० को ग्राम गंधर्वपुरी जि० देवास (म० प्र०) में हुआ। आपने शिक्षा एम० ए० (हिन्दी) एल० एल० बी० तक प्राप्त की है। १९५५-५६ में एक वर्ष तक सोनकच्छ में वकालत भी कर चुके हैं। किन्हीं विशेष कारणवश इस वकालत से त्याग-पत्र देकर एक शिक्षक का कार्य ग्रहण किया है। आजकल बागली, देवास के शसकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में हिन्दी के व्याख्याता के रूप में कार्य कर रहे हैं।

रचनाएँ हिन्दी के लगभग सभी पत्रों मे समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं 'चेतना के फूल' (कविता-संग्रह) 'हमारे कवि' (समीक्षा) पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं।

दुर्गाप्रसाद झाला

मगर तुम न आये

जूही के हार मुरझ मुरझ गए, मगर तुम न आए !

संध्या ने जूड़े में
चाँद-फूल बाँधा
कौमुदी विहँस उठी
नाच उठी गाया

नूपुर के राग सिहर सिहर गए मगर तुम न आए !!

जमुना के नीर में
चाँदनिया चमकी
मेघों की छाँह में
दामिनिया दमकी

आँचल के फूल बिखर बिखर गए, मगर तुम न आ

अमवा की डाली पै
कोयलिया बोली
लहर लहर बिखरी
केशर की झोली

सपनों के तार उलझ उलझ गए, मगर तुम न आए !

दुर्गाप्रसाद झाला

वैभव पर कब मैं इठलाया

कब कोयल से मांगी मादक स्वर-मधुराई
मैंने तो अपना अनगढ़ सुर ही लहराया !

हर लहर थपेड़े मार मार कर चली गई
मेरे कपोल पर सदा धूल ही मली गई
पर मैं आंचल में छिप जाने को कब तरसा
मैंने तो तब तूफानों को ही दुलराया !
कब कोयल से माँगी मादक-स्वर-मधुराई
मैंने तो अपना अनगढ़ सुर ही लहराया !

चाँदनी लुटाती रही सुधा की गगरी भी
आवाज लगाता रहा स्वप्न का प्रहरी भी
पर नन्दन के वैभव पर कब मैं इठलाया
मैंने तो बिखरी पंखुरियों को सहलाया !
कब कोयल से माँगी मादक स्वर-मधुराई
मैंने तो अपना अनगढ़ सुर ही लहराया !

मैं लगा रहा हूँ श्रम की मेंहदी पगतल में
मैं स्वेद बहाकर फूल उगाता मरुथल में
आकाश-कुसुम के सपनों में कब भरमाया
मैंने तो चलने में ही मंजिल को पाया !
कब कोयल से माँगी मादक स्वर मधुराई
मैंने तो अपना अनपढ़ सुर ही लहराया !

दुर्गाप्रसाद झाला

अकेला दिया

अकेला अकेला दिया जल रहा है !
मुंदी हैं पँखुरियाँ
कि चुप हैं लहरियाँ
न इस पार कोई; न उस पार कोई
कहीं शून्य में मूक पलकें भिगोईं
सपन की परी भी विसुध हो भटकती
अकेला अकेला हिया ढल रहा है !
अकेला अकेला हिया जल रहा है !

घिरी है बदरिया
भरी मन-गगरिया

पवन चुप गगन चुप, कि चुप हैं दिशाएं
भ्रमर चुप, नहीं गुनगुनाती लताएं
उमस सी भरी एक आकुल हृदय में
हिमालय अकेला नहीं गल रहा है !
अकेला अकेला दिया जल रहा है !

बिखेरो किरण रे
बढ़ाओ चरण रे

करो आज स्वीकार तम की चुनौती
बहुत हो गई देवता की मनौती
जलाओ दिये से दिया, स्नेह ढालो
अभी तो विवश चाँद सिर धुन रहा है !
अकेला अकेला दिया जल रहा है !

देवीप्रसाद 'राही'

हिन्दी के सरल और भावुक गीतकार श्री देवीप्रसाद 'राही' का जन्म बलरामपुर जिला गोंडा के एक लब्ध प्रतिष्ठ ब्राह्मण परिवार में हुआ। आपकी शिक्षा एम० ए० है। साहित्य से रुचि शैशवकाल से ही थी, फलतः अल्प आयु में ही कविता सृजन प्रारम्भ कर दिया। काव्य के साथ आलोचनात्मक लेख भी लिखते हैं। 'छाँव' तथा 'दर्द बदनाम न हो' आपके दो गीत संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। कविताएँ देश के अनेक प्रतिष्ठित पत्रों में बहुधा प्रकाशित होती रहती हैं। रेडियो से भी आपकी रचनाओं का प्रसारण होता है।

लेखकों को सहयोग तथा उन्हें आगे बढ़ाने में सहायता देने के लिए कानपुर में 'कानपुर लेखक सङ्घ' की स्थापना आपका प्रसंशनीय कार्य है।

२३/२, एक्सटेंशन साइट नं० १
बापू पुरवा, कानपुर

देवीप्रसाद 'राही'

बन कर मिट जाता हूँ

अब भी क्यों गाता हूँ, समझ नही पाता हूँ।
अपने हित पत्थर हूँ, धीरज का उत्तर हूँ,
विष तक पी जाने को, तन मन से तत्पर हूँ,

दुर्दिन का मारा हूँ, टूटा-सा तारा हूँ।
दुनिया तो दुश्मन है, तुमको क्यों भाता हूँ॥

अनजानी राहें हैं, वीरानी चाहें हैं,
क्वांरी-सी कसकन है, विधवा-सी आहें हैं,

बीहड़ वीरानें में, अवसर अनजाने में,
गीतों की डाली पर, खिल कर झर जाता हूँ॥

भूला भरमाया हूँ, बादल-सा आया हूँ,
गीतों की गागर में सागर भर लाया हूँ,

प्यासों की आशा हूँ, खुद भी तो प्यासा हूँ,
अक्सर तब [illegible] तुमको जब [illegible] हूँ।

आंधी तूफानों में, [illegible] चट्टानों में,
ऊसर की [illegible] पर, निर्जन [illegible] श्मशानों में,

बिन भी [illegible] को गढ़ता हूँ
फिर भी क्या कारण, [illegible] बनकर मिट जाता हूँ।

अब तो बस इनमें ही उनके हित जीना है,
किस्मत की [illegible] में जिनका दिन छीना है,

[illegible] अपना हूँ, भूलो तो सपना हूँ,
नयनों के नीड़ों में, बस कर उड़ जाता हूँ॥

देवीप्रसाद 'राही'

धुआँ न हो हृदय जले

एक पंख प्यार का, एक पंख भूख का;
हाँ ! यही हमारे गीत के विहग।
भोर आई ये उड़े भूख-प्यास से लड़े
साँझ आई, लौट आये नीड़ देख रो पड़े,
तन अभाव ले डसा मन लगाव से कसा,
काटनी है अब मुझे एक राह दो दिशा,
किसे गहूँ, किसे करूँ, जिन्दगी से मैं अलग
एक पंख प्यार का एक पंख भूख का—
हाँ ! यही हमारे गीत के विहग।
रूप अजनबी नहीं ये मेरे ही, नहीं नहीं
ये दर्द सब के पास है कहीं उडा, कहीं नहीं,
धूप—छाँह के तले बचपने में ये मिले,
बड़ा विचित्र सत्य है धुआँ न हो, हृदय जले
किसे गहूँ, किसे करूँ, जिन्दगी से मैं अलग
एक पंख धूप का, एक पंख छाँह का—
हाँ ? यही हमारे गीत के विहग।
घुटन रहे हजार पर घृणा न आये प्यार पर,
जो डूब जायें बूँद में खड़े-खड़े कगार पर,
जिन्हें अगिन की प्यास हो अंगार पर विश्वास हो,
वोगायें मेरे गीत जिनके-आँसुओं में हास हो,
किसे गहूँ किसे करूँ जिन्दगी से मैं अलग
एक पंख अश्रु का एक पंख हास का—
हाँ ! यही हमारे गीत के विहग।

रात रोती रही

रात रोती रही, चाँद गलता रहा।
डाल तन पर तिमिर की फटी चूनरी
वर्तिका ले रही थी, विदाई खड़ी,
आँधियों ने कहा, माँग भरलो बहिन
राख थी कुछ शलभ की, शिखा पर पड़ी,
दीप माटी बना, ढेर सा रह गया—
स्नेह की ओट में. रूप छलता रहा।
आसमानी किरन चौंक कर रह गई
साँस की धार में, जिन्दगी बह गई,
दौड़ कर खिड़कियों से अन्धेरा हँसा
एक लौ तिलमिला कर, मगर रह गई,
नींद विधवा हुई. स्वप्न ठग से गये—
अश्रु की गोद में, प्यार पलता रहा।
साँझ की लाज लो आग बन बुझ गई,
बुझ गई, दीप की हर किरन बुझ गई,
कौन अपना हुआ, इस निठुर देश में ?
आह ! अपनी जलन भी न अपनी हुई,
हूक भर कर मिलन रह गया पर विरह—
मौत की बाँह थामे मचलता रहा।
एक तारा गगन के नयन से तभी
आंसुओं सा गिरा रात की गोद में,
अपशकुन देख सहमी इधर चाँदनी
चाँद डूबा उधर प्रात की खोज में,
रात का दिल जला, जुगनुओं का बुझा—
ओस के गात पर, तम फिसलता रहा।

देवेन्द्र नारायण द्विवेदी 'देवेन्द्र'

आप 'गीता गौरव', 'बुन्देल वैभव', 'सुकवि-सरोज', 'महारानी झाँसी वीराङ्गना लक्ष्मीबाई', 'ज्ञान गीता', 'विश्व वाटिका', 'विकास गीत', 'नारी निष्ठा', और 'शङ्कर शतदल' आदि ग्रन्थों के रचियता हैं। आपके आत्मज गौरी शङ्कर द्विवेदी 'शङ्कर' हैं। कविताओं के अतिरिक्त ... याँ भी लिखते है। रचनाएं अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं।

असिस्टेन्ट इन्जीनियर
लोक निर्माण विभाग
सब डिवीजन लहार (म० प्र०)

देवेन्द्र नारायण द्विवेदी 'देवेन्द्र'

अपना देश

युग-युग से हो विश्व-शान्ति का, जिसका अपना नारा है;
परम पुरातन पावन भाई ! भारत-देश हमारा है।

मुकुट-हिमालय ऊपर इसके,
कटि में विन्ध्य खिला है;
अन्य अनेकों गिरि खण्डों की,
शोभित सजी शृंखला है ॥

जिसने सतत अनादि काल से मानव-धर्म प्रचारा है;
परम पुरातन पावन भाई ! भारत-देश हमारा है।

जिसके चरण चूमता सागर,
मेघ सलिल बरसाते है,
जिसके धन-वैभव की गरिमा,
हिल मिल कर हम गाते हैं।

जिस में कृषक धान्य उपजाते, जिसका कण-कण प्यारा है;
परम पुरातन पावन भाई ! भारत देश हमारा है।

गङ्गा, यमुना सिन्धु बेतवा,
रेवा, सोन, शक्ति शाली;
अपने अपने जल से करतीं;
दिन-दिन दूनी हरियाली।

जिस के जन-जन में लहराती, विश्व-प्रेम रस धारा है;
परम पुनातन पावन भाई भारत देश हमारा है।

देवेन्द्र नारायण द्विवेदी 'देवेन्द्र'

हिलमिल कर सब श्रमदान करो

हिल मिल कर सब श्रमदान करो।

भावी-पीढ़ी के हित अपना,
कुछ त्याग करो, बलिदान करो।
श्रम से ब्रह्मा त्रिभुवन चलते,
रवि दे प्रकाश दिन भर चलते;
शशि-साज सभी श्रम से सजते,
श्रम की सत्ता का गान करो;
हिलमिल कर सब श्रमदान करो।

श्रम से सोना देती धरती-
श्रम-साध्य-साधना दुख हरती;
जन-जीवन को सुखमय करती,
श्रम-साधन का सम्मान करो;
हिलमिल कर सब श्रमदान करो।

श्रम से हीरा-मोती मिलते,
श्रम से धरती के गुल खिलते;
श्रम से उतंग-गिरि भी हिलते;
श्रम से अपना उत्थान करो;
हिलमिल कर सब श्रमदान करो।

बैठे-बैठे कब क्या पाते;
अपना भी और गंवा जाते;
श्रम करने वाले सुख पाते,
जन-जन जीवन का ज्ञान करो;
हिलमिल कर सब श्रमदान करो।

देवेन्द्र नारायण द्विवेदी 'देवेन्द्र'

विश्व शान्ति

शान्ति अहिंसा लक्ष्य हमारा, उससे विश्व-शान्ति सरसाए।

पंचशील से भरी भावना, कुण्ठित मृग-तृष्णा में डूबी;
जन की लिप्सा, स्वार्थ-पिपासा, विश्व-शान्ति उससे जब ऊबी
उसने नए मार्ग अपना कर, गीत निराले अपने गाए;
उच्च हिमालय के शिखरों से घोषित कर निज संदेशों को।
जन-जन में प्रसारित कर देंगे, शान्ति अहिंसा उद्देश्यों को;
पशुबल लो दे रहा चुनोती, लोट नहीं मुँह की खाजाए;
राष्ट्र-पिता बापू की शिक्षा मस्तक ऊँचा करे हमारा;
सदा रहा है, सदा रहेगा उत्तम विश्व-शान्ति का नारा;
जिससे पुन्य-पुरातन-पथ पर, जन-जन जीवन सुखी हमारा;
कायर बन कर हम न जियेंगे, हम को अपना कण-कण प्यारा;
आँख दिखाकर हम को कोई कर न सकेगा उनको न्यारा,
विश्व-शान्ति के इच्छुक हैं हम हमें न कोई भी घुड़काए,
जन-जन की रक्षा हित अपना, सब कुछ हम बलिदान करेंगे,
विश्व-शान्ति की सुखद-भावना, मन-मन में सब स्वयम् भरेंगे
वक्त कह रहा आज कि हमसे शौर्य दिखाने के दिन आए।

ना० सु० रा० गणात्रे

अहिन्दी क्षेत्र के इस युवक कवि की जन्म-तिथि सितम्बर सन् १९२८ ई० है। शिक्षा एम० ए०, साहित्यरत्न, रा० भा० प्रवीण मा० हि० पारंगत, संस्कृत कोविद इत्यादि। आपको हिन्दी के अतिरिक्त मराठी, गुजराती, पालि, प्राकृत, अंग्रेजी, तमिल, कन्नड़ व उर्दू भाषा का भी ज्ञान है। 'भारती' दक्षिण भारत, 'भारतवाणी, साप्ताहिक 'मनु' दिव्य ज्योत, आदि पत्रों में रचनाएं छपी हैं। कई पुस्तकों की पाण्डुलिपियाँ प्रकाशनार्थ तैयार हैं। चित्रकला में आपको विशेष रुचि है।

विद्यानिकेतन
कोडैक्कानल—२
(दक्षिण-भारत)

ना० सु० रा० गर्ग

विवशता

अभाव की पूर्ति मेरा वह एक ही है री।
लाज के अवगुण्ठन में अमृप्त नयन
उसी को खोजते हैं सदा साकुल ।
सास ननद के अंकुश से बचकर
कैसे आऊं अरी उस तममय गृह से
ज्ञानलोक-प्रांगण में तज घूंघट-लाज री।
अभाव की पूर्ति मेरा वह एक ही है री॥

माखन चोर समझ उसे देवरानी
प्रहरी बनाती द्वार पर देवर का
मेरी ममता वही बाल कन्हैया।
धर्म-धेन्ड सह जब लौटना निज धाम,
बांसुरी की तान छेड़ विस्मृत कर देना री।
अभाव की पूर्ति मेरा वह एक ही है री॥

मेरे वात्सल्य के पूरक कान्हा को
कैसे निरखूं इन बावरे नयनों से
जो नयन नीर नजराना ले कर री
प्रतीक्षा की माला जपते रहे हैं।
कहां मिलूं और कैसे नन्द किशोर से री।
तम हृदय से जगा कर कब शीतल करे री।
अभाव की पूर्ति मेरा वह एक ही है री॥

ना० सु० रा० गणात्रे

अभिन्न

हे अनन्त रमणीय !
कल थी मैं तेरी बिछुड़ी वियोगिनी;
तेरे अमित वैभव की मैं सदा सुहागिनी;
तेरे अभाव की पूर्ति है मेरी रागिनी।
भाव तरंग में तेरी असीम जलराशि की।
हे शुभे मंगलमय।
हे अनन्त रमणीय !!

अनन्त सृजन के समय की मैं अहमिति तेरी;
रवि सौन्दर्य की मायाविनी प्रकृति तेरी।
मैं हूँ अमर कामना तेरी आकांक्षा की।
श्याम छाया हूँ मैं तेरी विमल आलोक की।
हे भावालोकमय !
हे अनन्त रमणीय !!

मेरे सुहाग सिन्दूर है रोली ऊषा की,
प्रशान्ति-तट पर आशा परोक्ष मधुर मिलन की
क्रिया-पथ के कर्त्तव्य यान पर चढ़ी हूँ मैं
मंगल-युग का स्वागतम् तेरे यश गान में।
हे शुभ-युग निर्धय !
हे अनन्त रमणीय !!

निरंकारदेव सेवक

तुम्हारे लिए हूँ

तुम्हारे लिए हूँ, तुम्हारे लिए हूँ, तुम्हारी पिलाई हुई मैं पिये हूँ
तुम्हारे दिये स्वप्न मन में लिये हूँ, कहीं भी रहूँ मैं तुम्हारे लिये हूँ

किसी देश में हूँ किसी काल में हूँ
किसी वेश मे हूँ किसी हाल में हूँ
अकेला हूँ या एक मेला लगाये
पड़ा मुँह दबाये या महफ़िल जमाये

किसी का हुआ हूँ न मैं हो सकूँगा कहीं भी रहूँ मैं तुम्हारे लिए हूँ
कहीं भी रहो तुम तुम्हारे लिए हूँ तुम्हारे लिए हूँ-तुम्हारे लिए हूँ

किसी ने यह समझा कि मैं रो रहा हूँ
किसी ने यह समझा कि मैं खुश हो रहा हूँ।
किसी ने यह समझा कि इसके लिये हूँ
किसी ने यह समझा कि उसके लिये हूँ

मेरी प्रेरणा प्राण जग और जीवन कहीं भी रहूँ मैं तुम्हारे लिए हूँ
कहीं भी रहो तुम तुम्हारे लिये हूँ, तुम्हारे लिये हूँ तुम्हारे लिए हूँ

नहीं भूल सकता वह रात रंगीली
नहीं भूल पाता वह बातें रसीली
छिड़ी ही थी जब प्रेम की यह कहानी
सबक प्रेम से ले रही थी जवानी

अजब एक उलझन में पड़कर कहा था कहीं भी रहूँ मैं तुम्हारे लिए हूँ
कहीं भी रहो तुम तुम्हारे लिए हूँ तुम्हारे लिए हूँ तुम्हारे लिए हूँ

निर्मला साधना

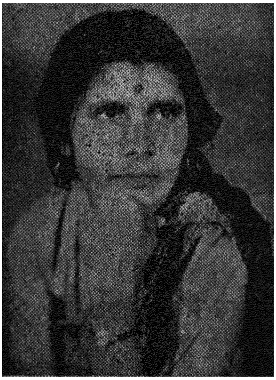

आपकी जन्म-तिथि सन् १६३० ई० और जन्म-स्थान सीतापुर है। हास्य कवि श्री त्रिलोकीशरण 'डंठल' की धर्मपत्नी हैं। काव्य सृजन की प्रेरणा सूत्र महादेवी वर्मा हैं आपको अपने पिता श्री त्रिभुननाथ सिंह 'सरोज' से प्रर्याप्त प्रोत्साहन मिला। प्रथम रचना १६४२ ई० में 'स्वतन्त्र भारत' में प्रकाशित हुई। आपका गीत-संग्रह 'करवट' शीघ्र प्रकाशित हो रहा है। रचनाएँ अनेक पत्र पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं।

चक अहमदपुर,
रायबरेली (उ० प्र०)

निर्मला साधना

तुमने मुझे पुकारा होगा

आज रात की रात सुहागिन, तुमने इन्हें निहारा होगा।

पलकों में घिरते सावन को
गीतों का आधार मिल गया,
सीमाहीन गगन छूने को
बाँहों का विस्तार मिल गया,

शूल फूल बन गये राह के, तुमने इन्हें पुकारा होगा।

कूक-कूक उठती कोयलिया
कलियों का यौवन इठलाया
पतझर की सूनी डाली पर
मधुरित ने फिर नीड़ बसाया,

दूर कहीं वन्शी स्वर गूँजा, तुमने मुझे पुकारा होगा

युग-युग के अनदेखे सपने
हर सुविधा सोपान बन गई
मंजिल तक चलने वालों को
हर मुश्किल आसान बन गई

इस दुर्भेदय गहन तिमिर में जब तुमने हाथ पसारा होगा।
आज रात की रात सुहागिन, तुमने इन्हें निहारा होगा।

निर्मला साधना

जी न सके पल भर भी हँस कर

खामोशी भी एक तुम्हारी जाने कितनी बात कह गई।

कह न सके होठों तक आए
बन न सके अपने ही बन-बन
डस-डस लेता आज अजाना
मुझको मेरा ही सूनापन
केवल एक प्रतीक्षा में ही वह बरसों की रात ढह गई।

जी न सके पल भी हँस कर
सीखा जीना ही जीवन भर
बच्चों का वह रेत घरौंदा
रह जाता बन-बन कर मिट कर
उठ-उठ कर रंगीन यवनिका सुधियों के आघात सह गई।

साधों को यदि स्वर मिल जाता
होठों को दिल मिल पाया कब
जब-जब थे तुम पास हमारे
मुझे होश ही आया था कब
तैर-तैर सूनी साँसों पर, केवल यह अफवाह रह गई।
खामोशी भी एक तुम्हारी जाने कितनी बात कह गई।

किसको प्रणय निवेदन मानूँ

मेरा ऐसा जीवन जिसमें
अब तक हाय बहार न आई,
मेरी ऐसी श्वास कि जिसमें
सुधियों की सौगात समाई,

सुख के साझीदारों का अब कैसे दुःख से समझौता हो,
स्पन्दन तो लाख उठे पर किसको सहज संवेदन मानूँ।

मेरा मौन समझकर तुमने
स्वीकारों को दो कि दुहाई,
कहना तो चाहा था लेकिन
पगली आँखे भर-भर आईं,

मेरे मन की मजबूरी का कभी किसी ने मूल्य न आंका,
आशाएँ तो लाख मिलीं पर किसको सत्य चिरंतन मानूँ।

मैं ऐसी पाषाण कि जिस पर
शिल्पी का भी हाथ न काँपा,
मैं ऐसी पीड़ामय जिसको
जग को कोई गीत न भाया,

तूफानों का साथ न दूँ तो मंजिल तक ले कौन चलेगा,
अपनी तो कह गए सभी हैं किसको आज निवेदन मानूँ।

निरखे 'उर्मिला'

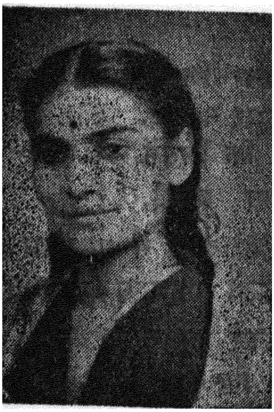

पूरा नाम कुमारी उर्मिला दिनकर निरखे है। आपकी जन्म-तिथि ५-११ सन् १९३८ ई० है। शैक्षणिक योग्यता बी० ए० साहित्य रत्न, है। प्रारम्भ में साहित्य से रुचि जरा भी नहीं थी, डाक्टर बनने की धुन सवार थी। सन् १९५६ के आस पास साहित्य से रुचि उत्पन्न हुई और काव्य सृजन करने लगीं।

कविताएँ पत्र पत्रिकाओं में समय समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। चिन्तन, अध्ययन के साथ आजकल भोज कन्या विद्यालय, धार, में अध्यापन कार्य कर रही हैं।

४६, रघुनाथपुरा,
धार (म० प्र०)

निरखे उर्मिला

मैं अनजानी सी लौट गई

संघर्ष सदा जग में पाया
है अमर प्राण ! उसका साया

जिस डाल पै नीड़ बनाया था वह डाल वहीं से टूट गई।
जो लहर हमारा सम्बल थी वह सब कुछ लेकर डूब गई !

सागर की कोई थाह नही
तिरने की कोई राह नहीं

इस पार नहीं, उस पार नहीं यदि डूबूँ तो मँझधार नहीं !
जिसको थामे तिरजाना था पतवार वहीं से टूट गई !

संगी-साथी इस पार रहे
जो बचे सभी मँझधार रहे

माँझी भी हिम्मत हार गया, उस पार का साथी कोई नहीं !
जिसको लेकर कुछ आश बँधी उसकी भी हिम्मत टूट गई !

उस पार सूर्य की किरण पड़ी
मैं आंख बिछाए इधर खड़ी

जागृत थी सपनों में खोई, पहले मुस्काई फिर रोई !
जब चल कर समय स्वयं आया, मैं अनजानी-सी लौट गई !

निरखे उर्मिला

जल रहा है मन

कोकिले ! क्यों बसंत में दर्द बोती ?
क्यों चकोरी रात में अश्रु पिरोती ?
जो कठिन हैं पीर, वह ही दे सकूँगी।
प्राण ! तुमको प्यार मैं न दे सकूँगी।

पास मेरे है नहीं अब स्वर्ण मोती।
शेष केवल एक मेरी प्राण-ज्योती।
आँसुओं का अर्घ्य तुमको दे सकूंगी।
प्राण ! तुमको प्यार मैं न दे सकूंगी

सत्य, मैंने प्रेम को पाया नहीं हैं।
जल रहा है मन मगर धुआँ नहीं हैं।
यह प्रज्वलित प्रेम अग्नि दे सकूंगी
प्राण ! तुमको प्यार मैं न दे सकूंगी

फूल की मुसकान में माली बसा है।
बीन की झनकार में साधक बसा है।
गीत मैं तुमको समर्पित कर चुकी हूँ
प्यार तुमको मैं कभी न दे सकूंगी

निरखे उर्मिला

मछुओं का गीत

तेरे हाथ पतवार,
तेरी नाव मंझधार।

तेरे सागर में उठा तूफान
खेवनहार सावधान रे!

सागर पर तूने जन्म लिया।
सागर ने तुझको प्यार दिया।
सागर ही मांगे बलिदान,
खेवनहार सावधान रे!

तेरी पाले भी बरसों पुरानी है।
तेरी नैया में भर गया पानी है।
तेरी टूट गई है पतवार,
खेवनहार सावधान रे।

हटेगा नहीं तू तो मानी है।
मौत आये तो भी कुर्बानी है।
हिम्मत तेरी मददगार,
खेवनहार सावधान रे!

तेरे हाथ पतवार,
तेरी नाव मंझधार।

तेरे सागर में उठा तूफान,
खेवन हार सावधान रे!

नारज

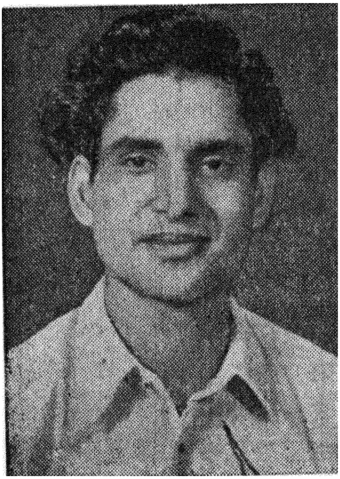

हिन्दी के लोकप्रिय सशक्त गीतकार श्री नीरज से हिन्दी संसार बहुत दिनों से परिचित है। जन्म-तिथि ८ फरवरी १९२६ है। पूरा नाम गोपालदास नीरज है। बच्चन जी के बाद, कवियों की नयी पीढ़ी को सर्वाधिक प्रभावित किया हैं। 'दर्द दिया है', 'प्राण-गीत', 'बादर बरस गयो', 'दो गीत', 'नदी-किनारे', 'लहर पुकारे', 'नीरज की पाती', 'मुक्तकी', 'आसावरी', 'विभा-वरी', 'लिख-लिख भेजत पाती' आदि आपकी प्रकाशित पुस्तकें हैं। एक समर्थ गीतकार के अतिरिक्त आप एक सबल शिक्षक भी हैं। आजकल फिल्मी गीत भी लिख रहे हैं।

४७, मैरिस रोड
अलीगढ़ (उ० प्र०)

बसन्त की रात

आज बसन्त की रात, गमन की बात न करना!
धूल बिछाए फूल-बिछौना,
बगिया पहने चाँदी-सोना,
कलियाँ फेंके जादू-टोना,
महक उठे सब पात, हवन की बात न करना!
आज बसन्त की रात, गमन की बात न करना!

बौराई अंबवा की डाली,
गदराई गेहूँ की बाली,
सरसों खड़ी बजाये ताली,
झूम रहे जल-जात, शयन की बात न करना!
आज बसन्त की रात, गमन की बात न करना!

खिडकी खोल चन्द्रमा झाँके,
चुनरी खींच सितारे टाँके,
मना करूँ तो शोर मचाके,
कोयलिया अनखात, गहन की बात न करना!
आज बसन्त की रात, गमन की बात न करना!

निंदिया बैरिन सुधि बिसराई,
सेज निगोडी करे ढिठाई,
ताना मारे सौत जुन्हाई,
रह रह प्राण पिरात, चुभन की बात न करना!
आज बसन्त की रात, गमन की बात न करना!

यह पीली चूनर, यह चादर,
यह सुन्दर छवि, यह रस-गागर,
जनम-मरण की यह रज-काँवर,
सब भू की सौगात, गगन को बात न करना!
आज बसन्त की रात, गमन की बात न करना!

दूर नहीं हो

तन से तो सब भाँति बिलग तुम लेकिन मन से दूर नहीं हो !

हाथ न परसे चरण सलौने,
पाँव न जानी गैल तुम्हारी,
दृगन न देखी बाँकी चितवन,
अधर न चूमी लट कजरारी,

चिकने-खुदरे, गोरे-काले, छलकन औ, बेछलकन वाले,
घट को तो तुम निपट निगुन पर, [illegible] से दूर नहीं हो !
तन से तो सब भाँति विलग तुम लेकिन मन से दूर नहीं हो !

जुड़े न पंडित, सजी न वेदी,
वचन न हुए, न मन्त्र उचारे,
जनम-जनम को किन्तु वधू यह
हाथ बिकी बेमोल तुम्हारे,

झूठे-सच्चे, कच्चे-पक्के, रिश्ते जितने दुनिया भर के,
सबसे तो तुम मुक्त, प्रेम—के वृन्दावन से दूर नहीं हो !
तन से तो सब भाँति बिलग तुस लेकिन मन से दूर नहीं हो !

रचते रचते चित्र उड़े रंग,
शब्द थके लिख लिख परिभाषा;
गढ़ गढ़ मूरत माटी हारी,
खत्म न लेकिन खेल तमाशा,

कब तक और छिपोगे बोले, अब तो मन्दिर के पट खोले,
भले भजन से दूर मगर तुम हठी रुदन से दूर नहीं हो !
तन से तो सब भांति विलग तुम लेकिन मन से दूर नहीं हो !

मन क्या होता है

उसको मन दे दिया जिसे यह ज्ञात नहीं मन क्या होता है ?
उससे लगन लगाई जिसका नाम न जाना, ग्राम न जाना,
उस पर उमर गँवाई जिसको पाना है खुद को खो आना,
उस संग खेला खेल कि जिसका जन्म विरह है मरण मिलन है,
उससे जोड़ी गाँठ न जिसको ज्ञात कि बंधन क्या होता है ?

बृज में श्याम बसे राधा का, गोकुल में गोपी का ग्वाला,
मेरे पी का पता न कोई कहाँ बिछाऊँ मैं मृगछाला,
किससे पूछूँ किसे बुलाऊँ किस-किस डगर भभूत रमाऊँ
उसे समर्पित हूँ न जिसे यह ज्ञात समर्पण क्या होता है ?

मथुरा ढूँढ़ी, काशी ढूँढ़ी, ढूँढ़ फिरी जीवन-जग सारा,
उस छलिया का गेह न पाया साँस-साँस ने जिसे पुकारा,
छिल-छिल छाले गये पाँव के तार-तार हो गई चुनरिया,
उस छवि पर हूँ मुग्ध न जिसको ज्ञात कि दर्पन क्या होता है ?

भूख भुलाई, प्यास भुलाई हंसी खो गई, खुशी खो गई,
निद्रा रूठी, जागृति छूटी सुबह-शाम एक-सी हो गई,
भोग न भाया, जोग न भाया पूजन-जप कुछ नहीं सुहाया,
उसकी हूँ प्रेयसी न जिसको ज्ञात प्रदर्शन क्या होता है ?

सावन गरजा, भादों बरसा, दामिनि देख गगन बौराया,
मेरे मन की बगिया में पर एक न दिन झूला पड़ पाया,
कौन पीर मेरी पहचाने कौन दरद-दुख मेरा जाने
उससे होली खेली जिसको ज्ञात न फागुन क्या होता है ?

उसको मन दे दिया जिसे यह ज्ञात नहीं मन क्या होता है ?

परमेश्वर द्विरेफ

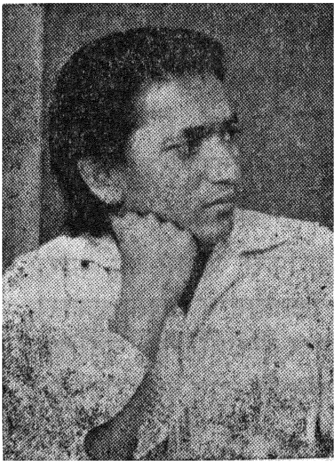

आपका जन्म संवत् १९८४ में जि० झुँझुनू (राज०) में हुआ। पिता पं० श्री गजानन शर्मा का तरुणावस्था में ही स्वर्गवास हो जाने के कारण आपका लालन-पालन माँ ने किया। शिक्षा ननिहाल खेतड़ी ठिकाना में हुई। आपकी काव्य-कृतियों में 'मीरा महाकाव्य' 'युग स्रष्टा महाकाव्य' 'कमला नेहरू', 'मरु के टीले' 'धूल के फूल' 'बालुका के प्राण', 'बलजा' प्रमुख हैं। 'मीरा महाकाव्य' केरल वि० वि० की बी० ए० परीक्षा में निर्धारित हो चुका है। (उ०प्र०) तथा (राज०) सरकार द्वारा पुरस्कृत भी है। जिन पत्रों में रचनाएँ प्रकाशित होती रहती हैं उनकी संख्या तीन सौ के आस-पास है। कई साहित्यिक संस्थाओं के आप संचालक तथा संरक्षक हैं।

द्विरेफ निवास,
चिड़ावा, (राज०)

परमेश्वर द्विरेफ

गीत-तृषा

सूने-सूने लोचन, भूला-भूला सा मन !
अपने में यों न दुखो, अञ्चल ने यों न लुको !
बजने दो बाँसुरिया अधरों पर यों न झुको !
दुग्धा सी स्वच्छन्दा, मुग्धा यमुना मन्दा !
मीठा-मीठा कोई छेड़ो स्वर मन-भावन !
सूने-सूने लोचन भूला-भूला सा मन

जीवन की अभिलाषा भूली है भूलों में
काँटे उलझाओ मत प्राणों के फूलों में !
भर लो मधु की मात्रा, जिससे हो शिव यात्रा !
रजनीगन्धा, जूही चम्पक का यह कानन !
सूने-सूने लोचन भूला-भूला मन
गाते ही गाते जब अब तक जीवन बीता
ऐसे में उलझन क्या रीती क्यों संगीता ?
सुन्दर-सुन्दर वेला, कुछ प्रहरों का मेला
कुञ्जों के शिखरों पर देखो तो, चन्द्रानन !
सूने-सूने लोचन भूला-भूला सा मन
पंकज के मधु रज की अंकित कर दो बिंदिया !
साँसों में मादकता मुझको आती निंदिया
भरलो वक्षों में सिर, गूँजे ध्वनि कोई फिर !
गीतों की जननी का करना है आराधन !
सूने-सूने लोचन भूला-भूला सा मन ।

परमेश्वर द्विरेफ

संसृति स्वर्गङ्गा

तुम सरसायी तो खिले फूल तुम अलसायी तो उड़ी धूल

अवगुंठन में दो नयन हँसे तो छिपे शून्य में सूर्य-चन्द्र
वर्तुल सिन्दूरी भाल उठा तो उषा लड़खड़ायी अतन्द्र
चंचल चितवन की सुषमा से पथ सरल हुआ, बिछ गयी तूल

काजल में दृग की बूँद घुली तो उठी घटा ले घोष मन्द्र
सन सन करता पवमान उड़ा नासा-पुट के जब हिले रन्ध्र
भ्रू के किंचित् कटु कुञ्चन से पथ कठिन हुआ, बिछ गये शूल

तुम कल कंठो में चहकी तो उड़ गया पिकी का रूप-रंग
पायल की मधु झंकार हुई तो हुआ शिखी का नृत्य भंग
अभिसार किया तो शैवलिनी प्रच्छन्न हुई, रह गये कूल

तुमने बाँहें ऊपर की तो बुझ गये स्वर्ग के दिव्य दीप
तुमने आलिंगन चाहा तो आया हिमाद्रि चल कर समीप
भावों में अन्तर्द्वन्द्व हुआ तो अब्धि गया गाम्भीर्य भूल

तुमने मृदु मदिर अधर खोले तो कवि ने पाया छन्द-बन्ध
रमणीय कान्ति का स्वेद उड़ा तो घुली विश्व में रुचिर गन्ध
विच्छिन्न इन्द्र का धनुष हुआ जब लहराया चंचल दुकूल

युग-युग से मेरी बांहों में पाती आयी आधार मौन
तुम संसृति की स्वर्गङ्गा में जीवन की मधु पतवार कौन ?
तुमने अमरत्व दिया शिव को हे शिवा, भवानी, विश्वमूल !

थका बटोही

साथी बिछुड़े एक एक कर मैं ही एक डगर पर

भीगे नयनों में पग-पग की स्मृतियाँ भर भर आतीं
बिखर गयी मेरी इच्छासी वह सिन्दूर-प्रभाती
सूनेपन में टकराता है मेरा ही घर्घर-स्वर

पीछे मुड़-मुड़ देख रहा हूँ चलता हारा-हारा
मेरी पीड़ा समझ रहा है मौन क्षितिज पर तारा
निकल गया कितना लम्बा पथ ? अभी न निकट नगर,पर

पथ पर कितने फ़ूल खिले थे ? कितने वृन्त हरे थे ?
कुसुम-कुसुम की पंखुड़ियों पर तुहिन अनन्त ढरे थे
क्या वह केवल सपना ही था ? क्या सब कुछ नश्वर, क्षर

धूमिलता में नयन भटकने कसक रही हैं बाँहें
हैं डगमग पग, बोझिल गठरी भुला रहे चौराहे
थका बटोही चला जा रहा शाश्वत मरण-समर पर

गुजर चुके कितने ही इस पर और चलेंगे इतने
अम्बर-तल में दीप बुझे हैं और जलेंगे जितने
जैसे जल में उठे-मिटे हैं बुद्बुद् लहर-लहर पर

मैं न रहूँगा किन्तु हँसेगा वैसे स्वर्ण-सबेरा
गुञ्जन होगा, कमल खिलेगा जैसे जीवन मेरा
धूप चढ़ेगी, छाँह बढ़ेगी कुछ भी नहीं अमर, पर

पाण्डेय 'आशुतोष'

आप की जन्म तिथि सन् १६३६ ई० है। साधना काल १६५२ ई० है। गीतों की दिशा में आपका कार्य प्रशंसनीय रहा है। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन हुआ है। आकाशवाणी से भी रचनाएँ प्रसारित होती रहती हैं।

कल्पित कैलाश, मलकौली
(नरईपुर)
चम्पारण (बिहार)

पाण्डेय 'आशुतोष'

कारवाँ थका सा लगता है

कुछ ऐसा दर्द दिया है फूलों ने मुझको,
जिसके चलते गीतों में जलन बनी रहती।

सुख सपन लुटा पंथी अपने यौवन का हूँ,
मैं अलख जगाने वाला योगी वन का हूँ,
उड़ने के लिए किराया मुझे न देना है
आभारी जीवन में नील गगन का हूँ,

यह चांद किया करता है मेरी निगरानी,
इसलिए हवा में इतनी तपन बनी रहती!

प्यासे लोचन में पलते मोती रतनारे,
सूखे होठों ने पिला दिए पतझर-सारे,
तुम तो गागर अम्बर की सीमा बँधवाते,
लेकिन बँधती जाती गति और पंख सारे,

किसने कह दिया कि तुमसे रूठ गया हूँ मैं,
मुझको तुमसे मिलने की लगन बनी रहती।

हर गलियारे में मैंने तुम्हें पुकारा है,
आँधी पानी में मिलता नहीं किनारा है,
फिर भी तेरी राहों में दीप जलाता हूँ,
लाचार जिन्दगी का आखिरी सहारा है,

यह सांसों का करवां थका सा लगता है,
मेरे विश्वासों में भी थकन बनी रहती।

पाण्डेय 'आशुतोष'

मुझको नहीं पुकारो

गीत सुनाकर अनजानी गलियों को नहीं बुहारो
क्या जाने किस चौराहे से पथ मेरा मुड़ जाये ?

वैसे तो मैं राजपंथ का ही भूला पंथी हूँ
मुझे किसी ने राह बतायी हो—यह बात नहीं है,
कोई भी तैयार नहीं था मंजिल तक चलने को
फिर भी कैसे कहूँ कि मेरे संग बरसात नहीं है,

झंझाओं में हाथ उठा कर मुझको नहीं पुकारो
संध्या को घर लौटा पंछी फिर न कहीं उड़ जाये।

देखो जो कुछ भी कहना है जल्दी से कह डालो,
बातचीत करने में ही मत शाम कहीं हो जाये,
बहुत बुरा प्राणी हूँ मैं इस दुनिया की आँखों में,
तेरी क्वाँरी साँसें मत बदनाम कहीं हो जायें,

भिखमंगी आँखों में तुम मत अपना रूप निहारो,
मेरे अश्रु तुम्हारी किस्मत से न कहीं जुड़ जायें।

तुमको अगर शिकायत थी तो मुझसे आकर कहते,
कान भरे पगली वंशी के क्या यह बात सही है ?
जब से सूरज बना पड़ोसी प्यास बढ़ गयी दूनी
मरुथल तो कहता, तुमने सागर की बाँह गही है,

रात रात भर प्राणों की लौ पर मत टोना मारो
कहीं न साहिल पाने से पहले कश्ती बुड़ जाये।

मंजिल की मर्यादा घट जायेगी

धीरे-धीरे चलने वाले थके मुसाफिर सुन लो,
अगर रुके तो मंजिल की मर्यादा घट जायेगी।

सब राहों की धूल समझ कर चन्दन अपना लो,
साँसों का पंछी जो उड़ना चाहे तो गा लो,
जाने या अनजाने कोई घाव दुखा जाये,
होठों को सीलो घिरते सावन को समझा लो;

समझौता सपनों के शीश महल से क्यों करते हो ?
दो दिन में ही तो जिन्दगी तुम्हारी कट जायेगी।

तुमने गाया गीत, ध्यान से जग ने सुना नहीं,
उमर कटी रोते रोते चातक ने चुना नहीं,
दोष तुम्हारा इसमें क्या है ? ओ भोले राही।
जिसे बनाया मीत उसी ने तुमको गुना नहीं,

बहुत पुरानी चलन यहाँ की, इसे नयी मत समझो,
इससे तो मंजिल की दूरी और निकट आयेगी।

किसने तेरी अगवानी में भेजी अक्षत रोली
किसने देख लगायी कुंजी, किसने सांकल खोली ?
कौन गायबाने में तेरे दिया जला आता है ?
किसने बिना कहारों वाली तुम्हें पठाई डोली ?

यहाँ नहीं बहते तिनकों से तट को हमदर्दी है,
वरना ऐसी लहर नहीं जो दर दर भटकायेगी।

पार्थसारथि डबराल

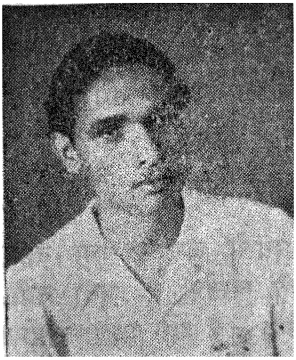

पं० सदानन्द मध्य प्रदेश के कुशल व्याख्याता और संस्कृत के प्रसिद्ध कवि हैं। उन्हीं के सुपुत्र हैं श्री पार्थ-सारथि डबराल। आपका जन्म २५ फरवरी सन् १९३६ ई० को तिमली गढ़वाल में हुआ। आपकी शिक्षा एम०ए० तक है। बंगला और संस्कृत का भी विशेष अध्ययन कर रहे है।

कविता और गीतों के साथ आप कहानी और निबन्ध भी लिखते हैं। रचनाएँ बहुधा पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं।

प्रकाशित कृतियों में 'रेत की छाया' (कविता-संग्रह) है। 'सूनी साँझ' और 'विविधा' संग्रह शीघ्र प्रकाशित होने वाले हैं।

१३५, ए० एलनगंज
इलाहाबाद

पार्थसारथि 'डबराल'

प्यार ही प्यार में

तुम हँसी—

बिजलियाँ कौंध कर गिर पड़ीं
उर्मियाँ उठ चलीं ताल में
चौक में चँदनी आ गयी
प्राण भूचाल में।

वेदना—

देख! भवभूति के भाव फिर
कर रहे अश्रु का अनुसरण
और दुहरा रहा आदि कवि
आज सीता हरण।

मान वह—

पेड़ का आसरा छोड़कर
भूमि पर लेटती है लता
तट बदलना नयी बात क्या?
—यह नदी की प्रथा।

प्रेम सब—

हास यह, वेदना, मान भी
हैं सभी प्रेम परिवार में
आज तुम जो करो ठीक है
—प्यार ही प्यार में।

पार्थसारथि 'डबराल'

पंथ की भूल कर थकान को

चाँदनी आज ही नयी नहीं
बात फूल से निशीथ ने कही।

शारदी चाँदनी कपूर की
चौक में फूल है बिछा रही
किन्तु तू कौन वेदना लिए
नैन बीच ओस डबडबा रही

वेदना आज ही नयी नहीं
वर्तमान जब कि था तड़प रहा
बात यों भूतकाल ने कही।

साँस से दीप की शिखा कँपी
आस से स्नेह प्रेरणा जगी
पंथ की भूलकर थकान को
जिन्दगी उठी कि राह पर लगी

प्रेरणा आज की नयी नहीं
नाव की भँवर पड़ी-थकान में
बात आ कर समीर ने कही।

पाँव में मेंहदी सुहाग की
पालकी बीच कोमला नई
कल्पना है भविष्य रँग रही—
अब सुखद गृहस्थपूर्ण जिन्दगी

कल्पना आज की नयी नहीं
पतझरी उदास एक फूल के
कान में बात भृङ्ग ने कही।

पार्थसारथि 'डबराल'

लेकर चाँद तुम्हारे मुख सा

बदुत दिनों के बाद शाम को
एक पत्र तेरा आया था
जीवन का उद्गम आया था।

छत में निज चाँदनी बिछाकर
तकिये पर कोहनी जमाकर
साँस, विरह से तप गरमाती
आँखों में भादों दुहराती
पत्र लिखा होगा यह छिपकर
आहट सुन तकिये में रखकर
लेकर चाँद तुम्हारे मुख सा
आँगन में पूनम आया था।

स्याही में आँसू ढुलकाती
साँसे गीले शब्द सुखाती
लिखती शब्द मोतियाँ जड़ती
आगे बढ़ पीछे को पढ़ती
सही पत्र था मिला मुझे तब
खाली हाथ हुआ था मैं जब
आया पत्र—हरे घावों के
लिए शीत मरहम आया था।

कौतूहल मेरा उफनाता
प्रेम पत्र यह बाँच न पाता
आँखों में बादल घिरते थे
हिलते कर अक्षर तिरते थे
बार-बार पढ़कर रख देता
अन्तिम शब्द "तुम्हारी" अंकित
प्रथम शब्द "प्रियतम" आया था।

प्रेमबहादुर 'प्रेमी'

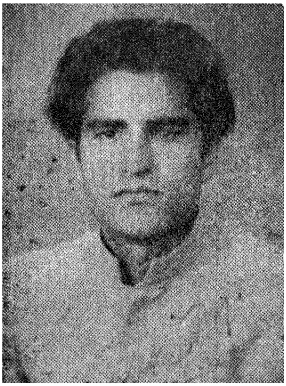

सरस्वती विद्यालय
इण्टर कॉलेज
बरेली (उ०प्र०)

सन् १९५८ में 'निर्माण-गीत' पर ५० रुपये के पुरस्कार विजेता श्री प्रेमबहादुर 'प्रेमी' का जन्म ४ जनवरी १९२८ ई० को ग्राम-शकरस जिला बरेली में हुआ। एम०ए० तक शिक्षा ग्रहण कर आप आजकल अाध्यापक हैं। शैशवावस्था में ही आपके पिता मुन्शी मनसुखराय जी का स्वर्गवास हो गया। फलतः जीवन संघर्षों से जूझना पड़ा। बचपन से ही काव्य की ओर उन्मुख रहे हैं। बालोपयोगी गीत भी लिखे है। सन् १९५७ में अपनी कविताओं पर प्रथम पुरुस्कार प्राप्त किया। कविताएँ अनेक पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। आकाशवाणी से भी प्रसारित हुई हैं। आपका प्रथम गीत संग्रह शीघ्र मार्केट में आ रहा है।

दो-दो बात करूँगा

चाँद-सितारो ! सँभलो, तुम से दो-दो बात करूँगा।
सूर्यास्त हो गया, यामिनी
छम-छम करती आई।
चार दिनों का रूप कि पगली
व्यर्थ यहाँ इतराई॥

तुमने भी उपहास किया था धरती के सोने पर।
किन्तु दिखाई दिये न कोई—भी प्रभात होने पर॥
अब तक तुमने मात दिये हैं अब मैं मात करूँगा।
चाँद-सितारों ! संभलो, तुम से दो-दो बात करूँगा॥

रजनी के चाकर हो फिर भी
लाज नहीं आती है !
इसीलिए धरती की छाया
तुमको ठुकराती है॥

तुम तम के वल पर फूले हो उचित नही इतराना।
मै स्वतन्त्र हूँ खेल नही है मुझ से आँख मिलाना॥
आँखें मल-मल कर रोओगे ऐसा प्रात करूँगा।
चाँद-सितारो ! सँभलो, तुम से दो-दो बात करूँगा॥

तुमतो तुम ही आज धरा को
रवि की चाह नही है।
पंथ जहाँ रुक जाये ऐसी
कोई राह नही है॥

आज स्वयं ही धरती का शृंगार मुझे करना है।
जगर-मगर दीपों से इसकी माँग मुझे भरना है॥
मेरी ही दुल्हन होगी मै ही बारात करूँगा !
चाँद सितारो ! सँभलो, तुमसे दो-दो बात करूँगा॥

प्रेमबहादुर 'प्रेमी'

पीड़े ! मैं न तुझे ठुकराऊँ

तू अभाव के अंक पली है,
तुझे न तेरी राशि फली है,
और मुझे भी, इसीलिए तो—
मैं तुझ को अपनाऊँ ।
पीड़े ! मैं न तुझे ठुकराऊँ ॥

तू मेरी सी चिर अभागिनी
चिर उपेक्षिता, चिर विरागिनी,
री सुपरिचिते ! आज तुझी में—
अपना परिचय पाऊँ ।
पीड़े ! मैं न तुझे ठुकराऊँ ॥

मैं तेरे आँसू रोऊँगा,
तेरा जनम स्वयं ढोऊँगा,
आज तुझीको पाकर प्रिय की—
सुमधुर याद भुलाऊँ ।
पीड़े ! मैं न तुझे ठुकराऊँ ॥

दोनों प्रणय-पंथ के अनुचर,
केवल पात्र-पात्र का अन्तर,
तू चाहे तो प्रणय-पंथ का—
यह रहस्य सुलझाऊँ ।
पीड़े ! मैं न तुझे ठुकराऊँ ॥

प्रेमबहादुर 'प्रमी'

नयन में नीर न हो

जग कहता है हँसो इसी से हंसता हूँ
इसका अर्थ नहीं कि नयन में नीर न हो।

मुझे न देखो तुम संशय की आँखों से,
मेरी आजादी तो एक भरम भर है।
मैं तो पंखहीन पंछी हूँ पिंजरे का,
मेरा स्वामी तो सैयाद सितमगर है॥

जग कहता है चलो इसी से चलता हूँ
इसका अर्थ नहीं कि पाँव जंजीर न हो।

नभ के विस्तृत उर पर कितने दाग लगे
व्यर्थ पूछना है दिन के उजियारों से।
उपवन के माथे कितने पतझार लिखे
व्यर्य पूछना है मदहोश बहारों से।

जग कहता है सहो इसी से सहता हूँ
इसका अर्थ नहीं कि हृदय में पोर न हो।

श्वासों का आना-जाना यदि जीवन है,
तो मैं भी गुमनाम जिन्दगी जीता हूँ,
यद्यपि जहर भरा प्याला है हाथों में
किन्तु उसे पीयूष समझ कर पीता हूँ

जग कहता है जियो इसी से जीता हूँ
इसका अर्थ नहीं कि मृत्यु-प्राचीर न हो।

प्रेमशंकर 'आलोक'

श्री प्रेमशंकर 'आलोक' का जन्म २२ फरवरी सन १९३४ को सफीपुर तहसीलान्तर्गत ग्राम पट्टी उसमान, उग्र, उन्नाव में हुआ। आप १०-१२ वर्षों से साहित्य क्षेत्र में हैं। आपकी रचनाएँ अनेकानेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। 'टी शाला' और कानन पथिक' दो पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। तीसरी पुस्तक 'गीत गाने का समय है' गीत-संग्रह प्रेस में है।

आपकी रचनाओं में विरह-वेदना की प्रधानता है। आप हास्य रस में भी लिखते हैं। कविताओं के साथ लघु कथाएँ, आलोचनात्मक लेख भी लिखे हैं। आजकल स्थानीय रोमन कैथलिक ईसाई मिशवरी के एक अंग्रेजी स्कूल में जीवनयापन कर रहे हैं। स्थानीय 'सहयोगी' साप्ताहिक में विगत तीन वर्षो से स्तम्भ-सम्पादक की हैसियत से अतिरिक्त समय में सम्पादन कार्य भी करते है। अष्टावक्र नाम से पैरॉडियाँ लिखने वाले आप ही है।

६७/७८ दौलतगंज
कानपुर

प्रेमशंकर 'आलोक'

कहीं बदनाम न कर डाले

गीतों की सुकमार गली में आते तो हो पर,
तुमको मेरी चाह कहीं बदनाम न कर डाले !

जब-जब आँख भरी है, मैंने चुप रह कर—
हर आँसू पी जाने की कोशिश की है।
और बूंद जो आ अधरों तक फिसल गया,
उसको भी अपनाने की कोशिश की है।

दुनिया के संग गीतों मैं रस लेते तो हो पर,
तुमको जग की 'वाह' कहीं बदनाम न कर डाले !

आकर बस जाने से गीतों में केवल,
प्रणय-प्रथा का हो पाता निर्वाह नहीं।
इसके लिये अपेक्षित है निश्छल होना
निकट रहो या दूर मुझे परवाह नहीं।

तुम मेरे पथ पर अपने पग रखते तो हो पर,
तुमको बीहड़ राह कहीं बदनाम न कर डाले !

जाने कितनी बार कहा तुमसे मैंने,
तनहाई के खँडहर मत आबाद करो।
प्रीति विवश है अभी ब्राह्मणी विधवा सी,
उसे नहीं स्वीकार कि उसकी माँग भरो।

आँख बचाकर सपनों में तुम आते तो हो पर,
तुमको सुधि की आह कहीं बदनाम न कर डाले !

तुम कहते हो, प्यार मर चुका है, फिर भी—
तुमको यह विश्वास भुलाना पड़ता है।
क्योंकि शेष रह गयीं सुखद कुछ संस्मृतियाँ,
इसीलिये गीतों में आना पड़ता है।

तुम 'समाधि' पर सुमन चढ़ाने आते तो हो पर,
तुमको यह 'दरगाह' कहीं बदनाम न कर डाले !

प्रेमशंकर 'आलोक'

गीत गाने का समय है

यदि कभी कोई किरण छूकर जला जाये हृदय को,
तिलमिलाने का नहीं वह गीत गाने का समय है।

जब नयन मूँदे उदासी साँझ पर छाने लगी हो।
विहग बाला नीड़ के हित विवश अकुलाने लगी हो।
भ्रमर-गुञ्जन से बहक कोई लता तरु के निकट से,
शिर झुकाये पवन के संग रूठ कर जाने लगी हो।

तब हृदय के सुप्त तारों को जगाकर स्वर मिलाओ,
वह किसी भूली कथा के याद आने का समय है।

ओस पलकों पर निशा की मिलन के सपने सजाये।
पर अमावस चाँद के घर विरह के स्वर गुनगुनाये।
रात का सुख खोजने में व्यस्त हों नभ के सितारे,
और कोई एक तारा बीच ही में टूट जाये।

छू न ले तब वेदना का नीर नयनों का उजाला,
स्वयं के विश्वास को वह आजमाने का समय है।

शरण दीपक की शलभ को, नेह-छाया में छले जब।
दिवस के थकते पहर सा ज्योति का जीवन ढले जब।
शून्यता की बाँह गहने को तिमिर जब बढ़ चला हो,
बुझ रही हो किन्तु अन्तिम श्वास ले बाती जले जब।

तुम निराशा में दफन तब कामना क्वाँरी न करना,
हृदय के सूने नगर के वह बसाने का समय है।

साँस का सागर लिये तूफान आहों का गरजता।
करवटों का ज्वार भाटा बेकली से हो मचलता।
उठ किसी की सुधि भँवर सी लहर के संग नाचती हो,
दूर तट से स्वप्न का जलयान हो कोई भटकता।

तब न कुछ आभास तट का, तुम करा देना कहीं से,
वह अतल गहराइयों में डूब जाने का समय है।

प्रेमशंकर 'आकोक'

मुक्ति है, बँधना प्रणय के बन्धनों में

जिन्दगी तो सांस का इक सिलसिला है,
मौत है उस सिलसिके का टूट जाना।

गगन-सर में ले उषा की तरणि तिरती,
सूर्य-तनया सी, किरण कोई सुहासिनि।
साँध्या-शिविकाले, तिमिर के अगम-पथ में,
खोजती शशि, डगमगाती निशि विरागिनि।

प्रात है, तिरना किसी सूरजमुखी का,
रात है थक कर किरण का डूब जाना।

शून्यता में, बदलियाँ सुधि की घिरीं कुछ,
पुतलियाँ उघरीं, मयूरी सी मुदित हो।
दर्शनों को, नयन से दो बूंद झाँके,
रह गयी आशा, अधर पर ही उदित हो।

हास है, खिलना अधर का आँसुओं में,
रुदन है, उमड़ी व्यथा का सूख जाना।

भावना के वश सदा भगवान रहते
भक्ति तो केवल कराती मार्ग-दर्शन।
सो गया जो, पा सका केवल वही है,
देवता से मुक्ति के मधुमय मधुर कण।

मुक्ति है, बंधना प्रणय के बन्धनों में,
और बन्धन है कि बँधकर छूट जाना।

'प्रेमी' उत्तमचन्द

बिड़ला इंजीनियरिंग कॉलेज
पिलानी (राज०)

आगरा नगर से ५ मील दूर सिकन्दरा नामक गाँव में आपका जन्म १ अगस्त सन् १९२८ ई० को हुआ। संघर्ष और कठिनाइयों में जीवन-कला का अध्ययन किया। हिन्दी में साहित्यरत्न और अंग्रेजी तथा राजनीति शास्त्र में एम० ए० तक शिक्षा ग्रहण की है। जीवन की विभिन्न मंजिलों को पार कर आज कल पिलानी में बिड़ला इंजीनियरिंग कालेज के अंग्रेजी विभाग में प्राध्यापक हैं। एक कविता-संग्रह 'मैं और मेरा देवता' प्रकाशित हो चुका है। दूसरा 'मिट्टी के स्वर' प्रकाशन के पथ पर है। 'अंग्रेजी साहित्य पर 'सम इमोर्टल्स आफ इंगलिश लिटरेचर' आलोचनात्मक निबंध-संग्रह प्रकाशित हो चुका है। रचनाएँ हिन्दी पत्र पत्रिकाओं में प्राय: प्रकाशित होती रहती हैं। अधिकतर रचनाएँ आप उत्तमचन्द जैन 'प्रेमी' नाम से लिखते हैं।

'प्रेमी' उत्तमचन्द

गीत वहीं है

राग वहीं है मन वीणा पर छा जाता है,
साज वही जो गीत गली में बस जाता है।
त्राण वही है जो जीवन से उठ जाता है,
प्राण वही है, जो पर हित पर मिट जाता है।
गीत वही है, जो बिन गाये गब जाता है।
मीत वही जो बिना पुकारे आ जाता है।
शक्ति वही जो जीवन को जीवित रखती है,
भक्ति यही जो जीवन की जीवित करती है।
धर्म वही, सत्कर्म सुपथ पर चलवाता है,
कर्म वही गन्तव्य भूमि तक पहुँचाता है।

'प्रेमी' उत्तमचन्द

जीवन गीत न गा पाया हूँ

ऐसा गीत सिखादो मुझको,
गाकर जिसे रिझालूँ तुमको।
ऐसा मीत बतादो मुझको,
पाकर जिसे निहारूं तुमको।
गाये गीत बहुत मैंने पर प्राण न जी को भर पाया हूँ।

जिस जिससे माँगा मैंने कुछ,
वही न मुझको दे पाया है।
जिसको बारंबार पुकारा,
वही न निकट अभी आया है।
पाये मीत बहुत मैंने पर मन का प्यार न पा पाया हूँ।

जहाँ जहाँ चल कर मैं पहुँचा
मंजिल मुझसे दूर हो गई।
जहाँ जहाँ जीवन में देखा,
स्वप्निल आशा छिन्न हो गई।
पाली नीति बहुत मैंने पर, जीवन-नीति न पा पाया हूँ।

सब जीवन सम्बन्ध निहारे,
पथ पर आकर सब ही हारे।
केवल पथ ही चला निरन्तर,
पथिक सभी चल चल कर हारे।
टालो भीति बहुत मैंने पर, निर्भय-गीत न गा पाया हूँ।

चाँदनी में सब क्षमा है

चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में।
दिवस में सबके लिए बस एक जग है,
रात में हर एक की दुनिया अलग है,
कल्पना करने लगी अब राह मन में,
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में।

भूमि का उर तप्त करता चंद्र शीतल,
व्योम की छाती जुड़ाती रश्मि कोमल,
किंतु भरतीं भावनाएँ दाह मन में,
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में,

कुछ अँधेरा, कुछ उजाला, क्या समा है,
कुछ करो, इस चाँदनी में सब क्षमा है,
किंतु बैठा मैं सँजोए आह मन में,
चाँदनी फैली गगन में, चाह मन में।

चाँद निखरा, चंद्रिका निखरी हुई है,
भूमि से आकाश तक बिखरी हुई है,
काश मैं भी यों बिखर सकता भुवन में,
चाँदनी फैली गगन में चाह मन में।

बालकृष्ण बलदुवा

रामगंज
कानपुर (उ० प्र०)

आपकी जन्म-तिथि चैत्र शुक्ल १२ सं० १९६८ वि० है और जन्म-स्थान कानपुर है। शिक्षा बी० ए०, एल-एल० बी० है।

'गीत' (१९३७) विश्व-काव्य, २ भाग (१९४७–४८) 'आंगन', 'प्रांगण', 'धड़कन' (कविता-संग्रह) (१९४७) 'अपने गीत', 'मन के गीत' (गद्य-काव्य-संग्रह) (१९४८) 'उर्वशी' (कहानी संग्रह) (१९५१) 'समाजवादी विचार धारा' (निबन्ध-संग्रह) (१९४९) 'संताप' (राज-नैतिक काव्य-संग्रह) (१९५३) 'आदर्श', 'अवसाद' और 'आस्था' (गद्य-काव्य-संग्रह) (१९६३) मे आपकी प्रकाशित पुस्तकें हैं। रचनाओं का प्रथम प्रकाशन काल १९२६ ई० है। निबन्ध, कविताएँ, कहानियाँ अनेक सम्मानित पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित हुई हैं।

बालकृष्ण बलदुवा

रानी ! भाव-अभाव सभी के : मेरे भी हैं

रानी ! भाव-अभाव सभी के मेरे भी हैं।
मालिक ने दे दिया सभी कुछ, जो शरीर की भूख मिटाये,
पर न तनिक भी दिया—एक कण भी, जो मन की प्यास बुझाये ॥

यश भी मिला और सिर भी है ऊँचा अपने कार्य-क्षेत्र में,
पर मन की दुनिया सूनी है, एकाकीपन भरा नेत्र में ॥

क्या न कभी भी सम्भव रानी ! बाहर-भीतर का सम्मिश्रण—
थोडा-सा मन कीं दुनिया का वहिर्जगत में मृदु रव गुंजन ?

क्या यौवन के स्वप्न और आदर्श गगन में ही विचरेंगे ?
त्याग और बलिदान भी न भूतल पर उन्हें उतार सकेंगे ?

मैं न मानता किन्तु यही मनवाना दुनिया मुझे चाहती।
संघर्षण में पीस-पीस कर नित्य हराना मुझे चाहती ॥

पर हारूँगा नहीं ! बस चुके आदर्शों के स्वप्न नयन में
और गूँज हैं रहे मिष्ट, दृढ़ प्रोत्साहन-स्वर नन नन मन में ॥
मेरे अन्य अभावों की कटुता ये ही तो सौम्य कर रहे।
ये ही थकित, क्षत-विक्षत मुझमें अटल, अडिग विश्वास भर रहे ॥
रानी ! भाव-अभाव सभी के : मेरे भी हैं ॥

बालकृष्ण बलदुवा

समझती हो क्यों नहीं तुम बेबसी मेरी ?

समझती हो क्यों नहीं तुम बेकली मेरी ?
समझती हो क्यों नहीं तुम बेबसी मेरी ?

याद है, भूला नहीं हूँ—साथ तुमने ही किया था
और तुमने ही अकेले राह का सम्बल दिया था ॥
याद है, भूला नहीं हूँ—उसी सम्बल के सहारे ।
मार्ग विस्तृत मरुथली में पार द्रुतगति कर लिया था ॥

याद सब, भूला नहीं हूँ, प्यार तुमसे है, बहुत है ।
और तुमको सुखी देखूँ, चाहना इसकी बहुत है ॥
और उसके लिए अब तक, बिना तुम तक को बताये ।
कर दिए बलिदान मैंने आग्रह अपने बहुत हैं ॥

किन्तु ऐसा एक आग्रह, छोड़ जिसको मैं न पाया ।
प्यार पर आदर्श को कुरबान अब तक कर न पाया ॥
यही मेरी बेबसी है : प्यार में आदर्श में, प्रिय !
द्वन्द होने पर सदा आदर्श ने पलड़ा झुकाया ॥

क्षोभ इस पर ठीक ही है, रोष इस पर ठीक ही है ।
तुम न मुझको समझ पाईं, ठीक ही है, ठीक ही है ॥
शिकायत-शिकवा करूँ क्या जब बहुत हैं जो न समझे ।
प्यार की आदर्श पर कुरबानियाँ बिलकुल सही हैं ॥

समझती हो क्यों नहीं तुम बेकसी मेरी ?
समझती हो क्यों नहीं तुम बेबसी मेरी ?

बालकृष्ण बलदुवा

मुझे रेत में रमकर मरु को सरस बनाना है

मुझे रेत में रम कर मरु को सरस बनाना है।
मुझे रेत पर चल कर मरु में गंगा लाना है॥

मेरे चारों ओर रेत उड़ती है।
नाक-कान-मुख, नयन बीच धँसती है॥
गरम हवा में सूरज के शोले ले,
पथ का कदम-कदम भूना करती हैं॥

तन जलता है, छाले पैरों पड़ते।
मन थकता है, आँसू आँखों भरते॥
आँसू में मुसकान मंदिर चमकाना।
आस्था के बल आगे बढ़ते-चढ़ते॥

मुझे रेत पर चल कर मरु में गंगा लाना है।
मुझे रेत में रमकर मरु को सरस बनाना है॥

बालस्वरूप 'राही'

साप्ताहिक हिन्दुस्तान
कनाट सर्कस
नई दिल्ली

नई पीढ़ी के गीतकारों में पर्याप्त लोकप्रिय गीतकार श्री बालस्वरूप 'राही' का जन्म १६ मई सन् १९३६ ई० को तिमारपुर दिल्ली में हुआ। शिक्षा—एम० ए० (हिन्दी) दिल्ली विश्वविद्यालय से ग्रहण की। सन् १९५० से आप अविराम गति से साहित्य सृजन कर रहे हैं। रचनाएँ देश के अनेक प्रख्यात पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। कवि सम्मेलनों और आकाशवाणी से भी रचनाएँ प्रसारित होती रहती हैं। हिन्दी में आपकी गजलें और मुक्तक विशेष लोकप्रिय हुए हैं। एक ओर कवि तो दूसरी ओर स्वस्थ समालोचक-पत्रकार हैं। कई मासिक पत्रों और साहित्यिक ग्रन्थों का सम्पादन कार्य किया है। 'मेरा रूप तुम्हारा दर्पण' आपका प्रकाशित गीत-संग्रह है।

फिर रचो मुझको

अन्यथा अपनी व्यथा मुझसे सही जाती नहीं,
तुम मिली तो है बहुत संभव कि मुस्काने लगूँ!
थक गया हूँ मैं तनिक विश्राम दो,
डूबता ही जा रहा हूँ थाम लो,
मैं स्वयं को ही नहीं पहचानता
फिर रचो मुझको दुबारा नाम दो!
मैं निरर्थक शब्द-सा हूँ व्यर्थ तुम छू दो मुझे,
है बहुत संभव नया ही अर्थ बतलाने लगूँ!
तुम गुलाबी भोर-सी ताजा, तरुन,
मैं किरन की बाँसुरी की मौन धुन,
हाथ में मेंहदी रचाए हर दिशा:
तुम उगो, पिघले निशा का तम करुन!
मैं अभी सोया हुआ हूँ कोहरे की सेज पर,
तुम जगा दो तो कमल की बाँह सहलाने लगूँ!
रूठना फिर-फिर मनाने के लिए,
दूर जाना, पास आने के लिए,
चूड़ियों की यह खनक जादू भरी,
हो बहुत मुझको बुलाने के लिए!
देखना चाहूँ तुम्हें तो ढाँप लो अपने नयन,
और मैं तुमको लजाते देख शरमाने लगूँ!

बालस्वरूप 'राही'

'ऊबी हुई प्रिया से'

ऊब गया हो मुझसे अगर हिया,
तो तुम से कहना है मुझे प्रिया,
कहा कभी मुझसे जो
किसी अन्य श्रोता से केवल वह कहना मत!
मेरे वे शब्द प्राण, शेष सब तुम्हारे हैं!

रूठ गईं मुझसे यदि अकस्मात,
तो तुम से कहनी है एक बात,
साथ कभी रहे जहाँ हम दोनों
साथ अन्य साथी के सिर्फ वहाँ रहना मत!
मेरे वे ठौर शेष देश सब तुम्हारे हैं!

विरस लगे मेरे यदि तुम्हें नयन
तो तुमसे लेना है एक वचन,
देखा जिस तरह कभी मैंने था
किसी अन्य दर्शक की दृष्टि वही सहना मत!
शेष दृगनिपातों के श्लेष सब तुम्हारे हैं!
मेरे वे शब्द प्राण, शेष सब तुम्हारे हैं!

प्यास के क्षण मांगता हूँ

बाँट दो सारा समंदर तृप्ति के अभिलाषकों में
मैं अंगारे सी दहकती प्यास के क्षण मांगता हूँ।
दूर तक फैली हुई अम्लान कमलों की कतारें,
किन्तु शेष है बहुत मधुपात्र रस लोभी भ्रमर का
रिक्त हो पाती भला कब कामनाओं की सुराही
टूट जाता है चिटख कर किन्तु हर प्याल उमर का
बांट दो मधुपकी सारा इन सफल आराधकों में,
देवता ! मैं तो कठिन उपवास के क्षण माँगता हूँ
वह नही धनवान जिसके पास भारी सम्पदा है
वह धनी है जो कि धन के सामने झुकता नहीं है
प्यास चाहे ओंठ पर सारे मरुस्थल ला बिछाये
देखकर गागर परायी किन्तु जो रुकता नहीं है
बांट दो सम्पूर्ण वैभव तुम कला के साधकों में
किन्तु मैं अपने लिए सन्यास के क्षण माँगता हूँ
जिस तरफ भी देखिये सहमा। हुआ वातावरण है
आदमी के वास्ते दुष्प्राप्य छाया की शरण है
दफ्तरों में मेज पर माथा झुकाये बीतता दिन
शाम को ढांपे हुए लाचारगी का आवरण है
व्यस्तता सारी लुटा दो इन सुयश के ग्राहकों में
मैं सृजन के वास्ते अवकास के त्रण माँगता हूँ।
जिन्दगी में कुछ अधूरा ही रहे यह भी उचित है
मैं दुखों की बाँह में यों ही तड़पना चाहता हूँ
रात भर कौधे नयन में, जो मुझे सोने नहीं दे
सत्य सारे बेच कर वह एक सपना चाहता हूँ
बांट दो उपलब्धियाँ तुम सिद्धि के अभिभावकों में।
मैं पसीने से धुले अभ्यास के क्षग माँगता हूँ ॥

ब्रजगोपाल अग्रवाल

आपका जन्म सन् १६३८ ई० को ग्राम-माँट जिला मथुरा में हुआ। शिक्षा एम० ए० तक है। साहित्य से अनुराग बचपन से ही रहा है। आपकी प्रथम रचना बँगला से अनूदित होकर 'कल्याण' के जून १६५२ के अंक में प्रकाशित हुई। तदुपरान्त 'धर्मयुग' 'भारती' 'विशाल भारत' 'मानव धर्म' 'परमार्थ' 'आदर्श' 'जनयुग' आदि पत्र-पत्रिकाओं में रचनाओं का प्रकाशन हुआ। कविता के अतिरिक्त कहानी, एकांकी और निबन्ध भी लिखते हैं, 'निमाई संन्यास' अनूदित नाटक कल्याण में धारावाहिक रूप से छपा है। 'प्रेमाम्बुधि' नामक एक काव्य ग्रन्थ आज कल लिख रहे हैं।

आँगल विभाग
गवर्नमेण्ट, डिग्री कालेज
झालावाड़ा (राज०)

ब्रजगोपाल अग्रवाल

मैं तड़फता जा रहा हूँ

प्यार का जो घूँट पीया
विश्व से उपहास पाया
आत्म जन का साथ खोया,
उर कसकती वेदना ले—
क्या दिवस क्या रजनि,
पलकों को मिलाये रो रहा हूँ।

शून्य सा संसार लगता
शुष्क सा व्यवहार चलता
धैर्य का अवसान होता,
जिधर भी ये आँख उठतीं—
क्या सुगम क्या विषम पथ,
मैं पागलों सा बह रहा हूँ।

ये रुदन का स्रोत बहता
ये हँसी का कुसुम खिलता
नृत्य का मृदु पवन छनता,
इक मधुर संगीत जिसमें—
क्या श्रवण क्या हृदय घोले,
मैं स्वयं को खो रहा हूँ।

व्रजगोपाल अग्रवाल

आशा-दीप जला कर रङ्गिनि

झंझा अब क्योंकर बनती हो !
छोटासा यह भवन हृदय का
सोया सुख से शान्त कभी का
सुनते ही स्वर की मादकता
खोया-सा, भूला-सा, हँसता—
जाग उठा निद्रा-पलने से,
ज्यों वीणा की बीन सुनी हो।

अन्धकार से भरा भवन था
सूना, जिसको प्यार नहीं था
झट ही पाकर नेह तुम्हीं से
छलक उठे सब दीप हँसी से
नृत्य हुआ फिर तो दीपों का,
ज्यों तारावलि भू उतरी हो।

कैसी ये जगकी नश्वरता
आज रहे जो कल को मिटता,
भर के नेह आश-दीपों में
चलदीं किसी सुदूर जगत में
एक दिवस वह बुझ जावेंगे,
सिसक-सिसक जैसे सोये हों;

ओ रङ्गिनि, अभिमान-मंच से
क्रूर नटी के नाट्य-रंग से
चल दो फिर से बन उदारता
बुझते दीपक, भरो अमरता
रोम-रोम कह बैठे सबका—
ओ बाला, सचमुच सङ्गिनि हो !!

ब्रजगोपाल अग्रवाल

इस उर-उपवन के बीच आज

हा हन्त ! निष्ठुर विरहा ने आग लगाई !!
विश्व की अवहेलना फिर
तीव्रगामी अनिल बनकर
क्रूर विरहा की सजनि-सी
साथ उसके वीर बधु-सी
सजकर चलदी ले सर्वनाश,
हा, नवल-निबल अंकुर की कौन सुनाई !

नेत्र दोनों मेघ-कण बन
साथ लेकर सकल तन-मन
मित्र का नाता निभाने
रो उठे आपद भगाने
पर, एक क्षण में ही वारि-राशि
हा, बनी तरल घृत, दूनी ज्वाल जगाई।

दूर माली आज से तुम
जा बसो चहुँ रम सको तुम
बाग ये सोता रहेगा
स्वप्न में रह-रह कहेगा—
अब-जब बसन्त का मधुर हास
हा, की पतझड़ ने तब-तब ही कुटिलाई।

ब्रजराज पाण्डेय

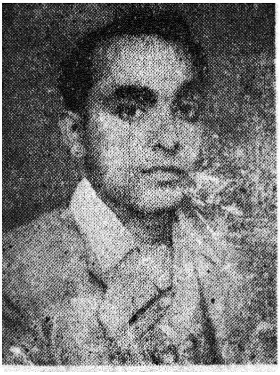

छायावाद एवं रहस्यवाद से अत्यधिक प्रभावित श्री ब्रजराज पाण्डेय का जन्म ४ जून सन् १९३४ में रामपुर के एक समृद्ध परिवार में हुआ। आपने बी० ए० तक शिक्षा प्राप्त की है। इस समय आप उपसंचालक उद्योग बरेली के कार्यालय में एकाउन्टेन्ट के पद पर कार्य कर रहे हैं।

आपने सन् १९५४ से काव्य-जगत में प्रवेश किया, तब से आप निरंतर साहित्य-साधना में रत हैं। छायावाद शैली के अन्तर्गत प्रगतिवाद का पुट भी है।

रचनाओं का प्रकाशन बहुधा पत्र-पत्रिकाओं में होता रहता है।

उपसंचालक उद्योग
बरली (उ० प्र०)

गान मेरे जानते हैं

दर्द जो तुमने दिया है, गान मेरे जानते हैं !

नयन की सीमा यही, भूले हुये को जान जाना !
बुद्धि का अनुरोध यह, हर सत्य का अनुमान पाना !
किन्तु तुमको देखकर, यदि आज मैं विस्मित नहीं हूँ,
अर्थ है इसका कि तुमको, प्राण मेरे जानते हैं ॥१॥

हार में मुझको मिले हैं, जीत के झूठे प्रलोभन !
नयन का अभिनय दिखाकर, छल गया निर्मम प्रवचन !
उम्र भर जलता रहूँ पर, राख बुझकर हो न पाँऊ,
बस इसी वरदान को, अरमान मेरे जानते हैं ॥२॥

कल्पनाओं के सहारे कौन कब तक चल सकेगा ?
नेह ही जिसमें नहीं, वह दीप कब तक जल सकेगा ?
आत्म-दर्पण के बिना अनुरूप फल किसको मिला है ?
कुछ प्रलय-पाषाण को, भगवान मेरे जानते हैं ॥३॥

हर दिये की आँख में, हर रोज हँसता है अंधेरा।
हर चिता की गोद में अस्तित्व खोता है सबेरा !
किन्तु हर पतझाड़ में, मधुमास का अँकुर निहित है,
हर चिरन्तन सत्य, अनुसन्धान मेरे जानते हैं ॥४॥

साधना ने नैन-नभ में, धैर्य-मेघों को छिपाया !
अर्चना ने दिवस-अँचल में तिमिर शिशु सा सुलाया !
हर प्रलय के बाद फिर से, सृष्टि को रूपक मिला है,
कुछ इसी निर्माण को, निर्वाण मेरे जानते हैं ॥५॥

ब्रजराज पाण्डेय

लेकिन वह मुस्कान नहीं

प्राण मिले चेतनता जागी, लेकिन वह मुस्कान नहीं !

हृदयम्बर की मौन वेदना, मुखरित हो स्वरकार हुई !
स्वप्न-लोक में विचर रही जो, आज स्वयम् साकार हुई !
सुने हुये से स्वर लगते हैं, लेकिन यह पहिचान नहीं ॥१॥

प्राण भटकता सा फिरता है, मन की कल्पित राहों में !
शूलों से अभिसार मिला है, पंथ प्राप्ति की चाहों में !
लक्ष्य पगों में बल भरता है, पग में अनुसंधान नहीं ॥२॥

प्राण-दीप के स्वाभिमान का, चिर संचित जय घोष बना !
रिसते अरमानों से अन्तर तम का रीता कोष बना !
प्राणों में जीवन तो है, जीवन का वह वरदान नहीं ॥३॥

क्षणिक मिलन की वह मृग-छलना बो न धैर्य के कक्ष पली !
आज प्रणय की आकुल सरिता, फिर असीम के पक्ष चली !
मौन बेधती तान आ रही, पर स्वर का संधान नहीं ॥४॥

जहाँ जा रहा था लगता है, आज वहाँ आ गया स्वयम् !
पहिले जो खोया-खोया था, उसको अब पा गया स्वयम् !
पर ऐसा लगता है जैसे, उपमा है उपमान नहीं ॥४॥

संयम से सागर बनता है, सागर में वाडव जलता !
आग उगलते मेघ गर्भ में, प्रणय-स्वाति का जल पलता !
शूलों में जीवन मिलता है, अनुभव है अनुमान नहीं ॥५॥

ब्रजराज पाण्डेय

शूलों से शृंगार हो गया

फूलों से हँसते-हँसते भी, शूलों से शृंगार हो गया !
मेघ फटे चन्दा मुस्काया
नैन झुके यौवन शरमाया
युग-युग से सोये मानव में, विद्युत का संचार हो गया ॥

दीपक पर परवाना चढ़ता
कमल-व्यूह में भँवरा फँसता
परवाना भी दीप-शिखा के, जीवन का आधार हो गया ॥

वह मुस्काई दीपक रोया
मधुऋतु जागी पतझर सोया
मेरे अन्तर की उलझन पर क्रन्दन का अधिकार हो गया ।

सहसा याद किसी की आई
जब रजनी ने ली अंगड़ाई
घोर तिमिर का बीता वैभव, प्राची का उपहार हो गया ॥

सुख दुख हैं विधियाँ जीवन की
जनम-मरण नैतिकता तन की
जब इसने करवट ली, मानव युग-युग का अवतार हो गया ॥

जीवन लीला एक पहेली
तर्कों के आँगन में खेली
जिज्ञासा की सरिताओं में जल-कण पारावार हो गया ॥

पिया मिलन की आस लगाये
कितने ही मधुमास गँवाये
जीवन-सन्ध्या को पतझर के अवशेषों से प्यार हो गया ॥

ब्रह्मसिंह भदौरिया 'दीपक

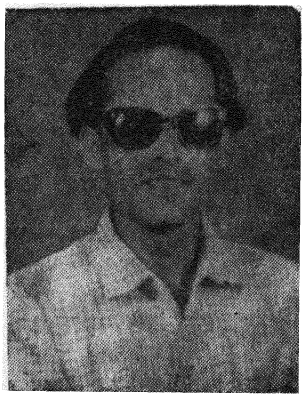

श्री ब्रह्मसिंह भदौरिया 'दीपक' का जन्म ४ सितम्बर १९५५ ई० को जिला भिण्ड (म० प्र०) की सीमा पर चम्बल नदी के किनारे रानीपुरा ग्राम में हुआ। चम्बल के कगारों पर कविता विकसित हुई। साहित्य से रुझान बचपन से ही थी। तरुणावस्था में प्रवेश करते समय आपकी कविताएँ अनेकानेक पत्र-पत्रिकाओं में निकलने लगीं। अध्ययन और सृजन के साथ आजकल आप मध्य प्रदेश के वन विभाग में डिप्टी रेन्जफारेस्ट आफीसर हैं।

फारेस्ट रेन्ज
गुना (म० प्र०)

ब्रह्मासिंह भदौरिया 'दीपक'

चांद बन कर लौट आना

मैं समन्दर पर पपीहे की लगन सा गा रहा हूँ
तुम क्षितिज के छोर से घमसान बन कर लौट आना

तुम कहो हर रात को दीपक जलाऊँ राह देखूँ
तुम बुलाओ तो अपरिचित पंथ पर भी पग बढ़ा दूँ
नयन मांगो नयन दे दूं, थक गये हो पाँव दे दूँ
सांस की पूँजी तुम्हारी मंजिलों पर ही चढ़ा दूँ
फिर नहीं कहना कि मांगा और मुझको मिलन पाया
है कसम तुमको शरद की पूर्णिमा घर पर विताना

फूल सा खिल कर चमन में झूम कर गाया तराना
प्रात का उगना थकन की शाम का ढलना न जाना
आज यह जाना खुशी के साथ आती है जलन भी
फूल की हर एक पंखुरी में छिपा सपना सुहाना
पंथ की माहस कसौटी पर खरा उतरूँ इसी से
तुम तिमिर को चीर ऊषा की किरण बन जगमगाना

मैं न हारूंगा, भँवर में नाव चाहे टूट जाये
सिन्धु में पतवार चाहे पास आकर के डिगाये
यदि नियति के ही थपेड़े मोड़ना चाहें अलग है
मैं न डूबूँगा, भले यह कामना ही डूब जाये
टेरता मझधार में मेरी उमंगों का बिछौना
तुम तरंगों के पलंग पर चाँद बनकर लौट आना

ब्रह्मासिंह भदौरिया 'दीपक'

जाने क्या बात हुई

मन के अवगुंठन में जाने क्या बात हुई
एक पीर याद रही, एक पीर भूल गया

बोझिल परछाईं में निर्जन अमराई में
सावन के पाहुन सी, बहती पुरवाई में
पंकिल पथ की गहरी गरवीली-काई को
एक पाँव चीर गया,
एक पाँव काँप गया !

जाना है दूर बड़ी मंजिल है जीवन की
करनी है चूर चूर शंकायें तन मन की
लेकिन तूफानों में लहराते सागर में
एक नाव डूब गई,
एक पोत टूट गया !

नीला नीला अम्बर, गीला गीला बादल
फगुआरी आँखों में, भीगा भीगा कागज
ऐसी बरजोरी में, रस बोरी होली में
एक बार जीत गया
एक बार हार गया।

ब्रह्मसिंह भदौरिया 'दीपक'

दीपक जलता रहा अकेला

आधी रात द्वार धकिया कर,
चुपके से चढ़ कर तकिया पर,
जाने किसने घाव कुरेदे, जाने किसने याद दिलाई।
तुमने खुद बाजी लगवा कर, मन चाही लम्बाई कर दो
लेकिन मेरी हर पतंग की अपने मन से डोर घटा दो
जब जब कटी पतंग जीतने की उतनी भर दो अभिलाषा
तुमने जाने इस रेशम डरी को कैसी कसम धराई

जितनी उम्र प्रतीक्षाओं की उतनी ही बाती उकसाये
जितनी काँपे ज्योति दर्द से, उतनी पीर दिया मुसकाये
आँधी, पानी, सावन-भादों दीपक जलता रहा अकेला
तुमने जाने किन रातों में, किस आँचल से आग लगाई

ऐसी है यह याद निगोड़ी, सीढ़ी पर सीढ़ी चढ़ती है
जितना इसे घटाओ, उससे ज्यादा यह बाकी बचती है
जितना ही मैंने गरियाया
उतनी याद तुम्हारी आई
तुमने जाने किन घड़ियों में, काजल भर कर आँख मिलाई

भीष्मसिंह चौहान

आपका जन्म मैनपुरी जिला के अन्तर्गत गाँव–नगला जुला में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर कुछ समय तक ग्वालियर रहे। कविता से शोक बचपन से ही है। आप मूलतः हास्य के कवि हैं, किन्तु विकासवादी राष्ट्रीय गीत भी खूब लिखे हैं। गत १५ वर्ष से निरन्तर वीर, व्यंग्य, शृंगार, करुण और हास्यरस में लिखते चले आ रहे है। 'देश का संदेश', 'आगे देश बढ़ाओ', 'जागा राष्ट्र हमारा', 'हिन्दी पौवाड़े', 'बापू के बोल', आपकी प्रकाशित पुस्तकें हैं। पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त आकाशवाणी से भी रचनाएँ प्रसारित होती रहती है। 'रात गई दिन आया' ग्रामोपयोगी पुस्तक शीघ्र प्रकाशित हो रही है। आपके लोक गीतों को 'मद्यनिषेद प्रतियोगिता' में प्रथम पुरस्कार मिला है। आजकल मध्य प्रदेश शासन योजना तथा विकास सचिवालय मे है।

१२।१४, नार्थ टी० टी० नगर
भोपाल (म० प्र०)

भीष्मसिंह चौहान

आगमन में तुम्हारे

हृदय से हृदय का विलय चाहता हूँ ।

संजोए गय स्नेह दीपक सहस्त्रों,
प्रणय पंथ पर आगमन में तुम्हारे
अमा की निशा चीर चंदा गगन से
भला साथ पथ में बिछाये सितारे ।

नहीं कामना पास आओ हमारे,
तुम्हारे हृदय पर विजय चाहता हूँ ।
हृदय से हृदय का विलय चाहता हूँ ।।

पवन भी थमी सो रही मौन कुछ क्षण,
हृदय सिंधु का ज्वार देखा उमड़ता,
प्रणय दाप की भी प्रखर ज्योति जलकर,
निगल सी रही है हृदय की मलिनता ।

व्यथा की घड़ी में तुम्हें याद करके,
बिताना में अपना समय चाहत हूँ ।
हृदय से हृदय का विलय चाहता हूँ ।।

भीष्मसिंह चौहान

साधक मैं रहा सत्यता का

शूलों को फूल समझ मैंने,
जीवन पथ पर प्रस्थान किया।
साथी मैंने बाधाओं का,
अपमान नहीं सम्मान किया।

जग की दृष्टि में अपने को,
समझा केवल मैं तो रज कण।
अस्तित्व हमारा नश्वर है,
घटता जाता जीवन प्रतिकण।

प्रत्येक बार इस दुनिया ने,
ठहराया है मुझको दोषी।
ठुकराया कितनी बार गया,
पर, बना रहा हूँ सन्तोषी।

सुख में जीवत को भूल गया,
दुःख गाया मस्त तरानों में।
सम्मानों से अभिमान हुआ

साधक मैं रहा सत्यता का
जिससे दुनिया को हुई घृणा।
जब-जब ली शरण असत्यता की,
बलवती हुई मानस तृष्णा।

मेर स्वभाव में स्वाभिमान,
जीवन विचित्र इतिहास लिए।
बंधन में कोई ले न सका,
कितने ही गए प्रयास किए।

मात बनाया नहीं जगत को,
हार गुंजाई तानों में।
सम्मानों से अभिमान हुआ।

भीष्मसिंह चौहान

नई मंजिल

नये युग की नई मंजिल, नए अपने तराने हैं।
नई है ज्योति आँखों की, नए अपने खजाने हैं।
नए निर्माण का पथ है,
नए अरमान हैं अपने।
उमंगों में नयापन है,
नये ही गान हैं अपने
नई मुस्कान होठों पर, नई उर की सभी चाहें,
नया विश्वास लेकर के, बनाते चल रहे राहें।
नया है कर्म का नारा,
नया सन्देश गीता का।
नए है राम तुलसी के,
नया आदर्श सीता का।
नयी वाणी, नये स्वर में, समय के गीत गाते हैं।
नया है गाँव का पनघट,
नई धरती नई गलियाँ।
नया है रूप खेतों का,
नई हैं खिल रहीं कलियाँ।
नए उत्साह को लेकर, जवानी आज मचली है,
नए अरमान को लेकर, हमारी आस उछली है।
नई है रोशनी घर-घर,
नया सब साज सजता है।
नया विश्वास लेकर के,
मनुज का पाँव बढ़ता है।
नई है भोर जीवन की, नए सूरज उगाने हैं।
नए अपने तराने हैं।

मदनमोहन 'उपेंद्र'

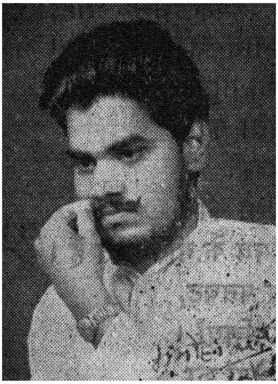

कवि श्री मदनमोहन 'उपेन्द्र' का जन्म ८ सितम्बर सन् १९३४ ई० को एटा जिले के एक गाँव नगला तिरखा (जलेसर रोड) पर श्री तोताराम यादव के यहाँ हुआ। शैशवावस्था में ही मातृ-स्नेह से वंचित रहे। साहित्य से रुचि बचपन से थी। फलस्वरूप १८ वर्ष की अल्प आयु में ही आपने 'दाक्षायणी' नामक प्रबन्ध काव्य की रचना की। आपकी स्फुट रचनाओं का संकलन 'उलझी अलकें' प्रकाशित हो चुका है। कुछ दिनों तक 'मथुरा टाइम्स' के साहित्य सम्पादक रहे हैं। 'हिन्दी प्रचारक सभा मथुरा' के सक्रिय सदस्य हैं। आजकल सिंचाइ विभाग आगरा में कार्य कर रहे हैं।

सिंचन कार्यालय
आगरा

मदनमोहन 'उपेन्द्र'

चाँद एक दिन ढल जायेगा

मत अपनेपन पर तुम इतना इतराओ सुमुखी,
उगा हुआ यह चाँद एक दिन ढल जायेगा।

यह बहार जो आई है निस्सीम-चमन में,
यह खिला महकता है गुलाब जो इस डाली पर।
मदभरी निगाहों का यह भी सपना है,
पूरब में उगते हुए सूर्य की लाली भर।
आँगन में जो लहराई यह हरयाली है,
पतझर आकर इसे एक दिन छल जायेगा।

आसमान तक गया हुआ जो पागल मन है,
और विचरों में जो अनगिन महल बसाये।
क्षण भर की यह केवल बहकी हुई सनक है,
बालू का यह महल कि जिस पर तुम इतराये।
अहंकार तो एक बरफ का टुकड़ा हो है,
जो क्षण भर के बाद स्वयं ही गल जायेगा।

रोज न होतीं मौसम की रंगीन बहारें,
रोज न होतीं पूनम की रातें उजियाली।
शरमाएगी महलों की अनमोल, आदायें,
खण्डहर के आंगन में जब होगी दीवाली।
लोप न होगा चाँद समय के अन्धकार में,
बुझा हुआ जब दीप किसी का जल जायेगा।

मदनमोहन 'उपेन्द्र'

प्यार मुझे भी मिल सकता है

यदि उर के उदगारों को उपहार बना लूँ,
सारे जगका प्यार मुझे भी मिल सकता है!

व्यर्थ मुझे माटी के तन पर अहंकार है!
चंचल मन के अरमानों से बड़ा प्यार है!
किनको पता कि कब भावों पर कुहरा छाये
फिर भी वैभव से मुझको इतना दुलार है।

जीवन को जन सेवा हित यदि अर्पित कर दूँ,
जीने का आधार मुझे भी मिल सकता है।

तन है एक बरफ का टुकड़ा, गल जायेगा,
आज नहीं तो कल मरघट में जल जायेगा।
मानव अपनी मजबूरी से बन अनजाना
जिधर बढ़ाए पाँव उधर ही चल जायेगा।

संघर्षों के बीच अगर मैं हँसता जाऊँ,
निश्चित सुख का द्वार मुझे भी मिल सकता है।

जिनको मुझसे घृणा उन्हीं को प्यार करूँ मैं,
आयें कितनी ही बाधाएँ पर न डरूँ मैं।
मेरे व्यवहारों का सब उपहास करें पर—
मेरा है कर्तव्य न उस पर ध्यान धरूँ मैं।

आँधी, पानी, तूफानों में बढ़ता जाऊँ,
मंजिल पर अधिकार मुझे भी मिल सकता है।

मदनमोहन 'उपेन्द्र'

सूना पनघट प्यासा राही

पनिहारिन के बिन जब पनघट सूना हो जाया करता है,
तब हर राही बैठा-बैठा प्यासा अकुलाया करता है?

आशाओं पर विश्वास पले प्यासे की मंजिल पनघट है,
अरुणिम ऊषा का संध्या की गौधूली ही घूँघटपट है।
कब किसकी प्यास बुझी अब तक इस क्षणभंगुर से जीवन में—
प्यासा राही प्यासी गागर प्यासा का प्यासा पनघट है।

तपती दोपहरों में मरुथल जब मृगतृष्णा बन जाता है,
हर जीव निराशा आशा में जीवन विसराया करता है।

वैसे तो हर अन्तर पीड़ा अपना ही राग सुनाती है,
शीतल रजनी भी विरहिन को, अंगारा सा बन जाती है।
यों ही गायक जब संन्ध्या में, कुछ स्वर दुहराने को होता—
तब सरगम की झंकार स्वयं बजते-बजते रुक जाती है!

अंधियारी रातों में चकोर जब शशि को खोजा करता है,
तब चकवी का हर सजल नयन पूनम सरसाया करता है।

रवि जलता है अंगारे सा, यह भी तो उसकी तृष्णा है,
शशि अमृत दान किया करता, यह भी तो मन की भ्रमना है।
विरहिन से पूछो शशि अमृत कैसे विष भी बन जाता है,
जीवन ही भटका-भटका सा मायामय केवल सपना है।

जब सूनी घाटी में कोई पावस के गीत सुनाता है,
तब पपीहे का उत्पीड़ित मन सुनकर अकुलाया करता है।

मदनमोहन 'तरुण'

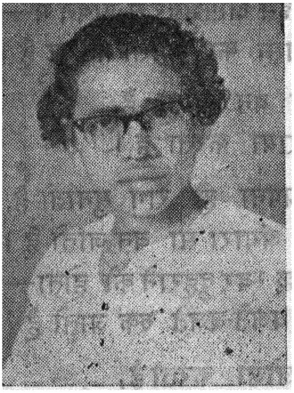

रूढ़िमुक्ति परम्परा में हिन्दी, संस्कृत, बँगला, गुजराती, अँग्रेजी की शिक्षा प्राप्त श्री मदनमोहन 'तरुण' का जन्म-स्थान जहानाबाद, गया है।

आपकी विशेष रुचि चित्र-कला और अभिनय में है। अध्ययन विषय है। साहित्य और दर्शन इन्हीं के माध्यम से कविताएँ लिखते । पत्र-पत्रिकाओं में भी वे प्रकाशित होती रहती हैं। चार कविता-संग्रह, दो कहानी संग्रह, दो नाटक और एक उपन्यास की पण्डुलिपियाँ प्रकाशनार्थ तैयार हैं।

परमानन्द औषधालय,
जहानाबाद, गया
(बिहार)

मदनमोहन 'तरुण'

हर नया सन्देश मेरा

हर विजय की राह मेरी,
हर प्रगति का पंथ मेरा।

नहीं दुर्घटना मनुज का जन्म कोई,
अमरता के प्रक्रिया की पुष्टतम अभिव्यक्ति हैं सब
वृद्ध मन होता नहीं फिर जरा कैसो,
सूक्ष्म आत्मा के प्रभा की सृष्टि हैं सब।

रूप रचना भेद विधि का अर्थ क्या है,
नए रङ्गों से रँगी है हर अमरता।
अनुगमन का अर्थ कोई सच नहीं है,
सिद्धि का हर पंथ, सबका अलग अपना॥

हर नई आवाज मेरी,
हर नया संदेश मेरा।

मदनमोहन 'तरुण'

मुझे खरीदा है साँसों ने

अपने पर अधिकार नहीं है,
मुझे खरीदा है साँसों ने।

बोन कहीं की तार कहीं का
गायक कोई है मतवाला
मुखरित कर देता है कर से
वीणा के अन्तर की ज्वाला

निज स्वर पर अधिकार नहीं है,
इन्हें खरीदा है यादों ने।

निर्जन है जीवन का यह तट
ज्वार ग्रस्त है सागर का जल
बाधाओं में झंझाओं में
थकें गिरें चलते ही जाएँ

निज पद पर अधिकार नहीं है,
इन्हें खरीदा है साधों ने।

मदनमोहन 'तरल'

लहर-लहर टूट रही

नींद नहीं आती है।

सपनों के पास कहीं मुरली-सी बजती है
पलकों में गोरी-सी छाया उभरती है
जुगनू के पन्ती से गूंथ रहा मधुर कोई
अँधियारे निमिया के गात
सखी आँखें मदमाती हैं।
नींद नहीं आती है।

झिलिया की लहर-लहर टूट रही
छहर छहर घूट रही
जाम तरंग बजता है, अंग अंग सजता है
चाँदनी के धागों से गूंथ रहा पानी को
माड़ी के पार जगीदार
देह कसमसाती है।
नींद नहीं आती है।

बौराया बयरा कुछ बोल रहा
कानों में मन में कुछ घोल रहा
पद्म - मदन - सौरभ में
भौंरे की आती है चुभती सीत्कार
दूजे की थाती है, लाज बहुत आती है।
नींद नहीं आती है।

मलखानसिंह सिसौदिया

अ० स० आर्य इण्टर कालेज,
एटा (उ० प्र०)

आपकी पितृभूमि जिला एटा के अन्तर्गत ग्राम कुठिला लायकपुर है। प्रारम्भिक शिक्षा मैनपुरी जिला के एक गाँव मे हुई, तदुपरान्त फिरोजाबाद, इटावा तथा आगरा में हुई। एम० ए० की परीक्षा सफलता पूर्वक उत्तीर्ण की। सन् १९४३ से अब तक बराबर बीमारी से लोहा ले रहे हैं। पठन-पाठन, साहित्यिक एवं सामाजिक कार्यों में विशेष रुचि है। शिक्षक के अतिरिक्त जिला स्काउट कमिश्नर हैं। आप कालेज के कार्यों के अतिरिक्त कुछ संस्थाओं का कार्य संचालन भी कर रहे हैं। रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं मे समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। सन् १९४३ से ४८ तक खूब लेखनी चली, फिर कुछ वर्षों तक बन्द रही। अब स्वतन्त्र रूप से साहित्य सृजन कर रहे हैं।

मलखानसिंह सिसौदिया

दूरवर्ती गीत, दूरी से रिझाऊँगा

जा रहा हूँ सुमुखि, अब मैं रुक न पाऊँगा ।

चेतना का द्वार कोई खटखटाता है;
प्राण में सन्देश कोई फूँक जाता है।
विवश मन के पाँव अपने आप बढ़ते हैं;
तड़प अन्तर के प्रखर स्वर हूक उठते हैं।
खोलता हूँ पाश, बन्दी रह न पाऊँगा ।।

भावना व विवेक मेरा तो कहीं पर है;
सिर्फ तन ले क्या करोगी जो यहीं पर है।
खंड से क्या पूर्णता की तृप्ति पालोगी;
विन्दु में क्या सिन्धु की अनुरक्ति ढालोगी।
दूरवर्ती गीत, दूरी से रिझाऊँगा ।।

फूल दो मुसकान का मैं टांक लू मन पर;
ताजगी अम्लान दे जो मुझे पग-पग पर।
प्यार की मृदु दृष्टि दो, चिर ज्योति बन जाये;
तिमिर-अधड़ में अबुझ जो पंथ दर्शाये।
दो बिदा, पर सदा को ले याद जाऊँगा ।।

मलखानसिंह सिसौदिया

मत इतनी हँसी बिखेरो

मत इतनी हँसी बिखेरो,
मुझे बटोर लेने दो।

अनजाने में भौंहों की गाँठें खुल गयी अचानक,
कुछ अधरों, कुछ आँखों से बिखरी चांदनी कहाँ तक।
अंचल-घन से न छिपाओ,
उन्मुक्त देख लेने दो।

झरने दो बेसुध झरना तपती मन कठिन शिला पर,
तारावलियों की गल-गल बह लेने दो वसुधा पर।
मत टोको, दुर्दिन का मुख
गंगा में धो लेने दो।

इन मादक कलध्वनियों से फूलों के घट भर-भर कर,
मधु-ऊषा ढुलकायेगी शत सौरभ संकुल कर-कर।
मत बरजो, ये रागिनियाँ
चुम्बन में भर लेने दो।

शारदी-कुमद-वन वैभव मैं यों न बिखरने दूँगा,
निज प्राण-वसन में कस कर मैं उसे सहेज धरूँगा।
उन्माद समझ कर ही तुम
मणि-राशि बाँध लेने दो।

यह कोष खुले न खुले फिर कंगाल अरे क्या जाने,
यह योग मिले न मिले फिर इस जीवन में क्या जाने।
इतनी उदार बन जाओ
इस क्षण पी जी लेने दो।।

मलखानसिंह सिसौदिया

तेरा पथ सुख का नहीं सत्य का है

दो राहों के संघर्ष से न घबरा,
राही असि-धारों पर तुमको चलना ।

विपरीत दिशाओं से ये आती है, विपरीत दिशाओं में ही जाती हैं ;
समझौते के चौराहे पर न मिला, हर कदम-कदम पर ये टकराती हैं ।

असमंजस में पड़ कैसा रुका खड़ा,
राही, तू क्योंकर है उद्विग्न-मना ।

वह युग-युग से जो चलती आती है, अब टूट रही है, मिटती जाती है;
यह नयी ज्योति-धरा जो फूटी है, जड़ता-छाता पर बढ़ती जाती है।

विश्वास भरा पग आगे सहज बढ़ा,
राही, अनजाना पथ तुझको चलना ।

वह सुगम, पुरातन, निष्कंटक उस पर बादल-बिजली-तूफान न मिलते हैं;
यह नूतन, दुर्गम, कंटकपूरित है, इस पर पग-पग अंगार दहकते हैं ।

तेरा पथ सुख का नहीं सत्य का है
राही, झंझावातों से क्या डरना ।

उस पथ पर तो चलता है हर कोई, इस अग्नि पंथ पर विरले जन चलते,
प्राणों से रचते मीलों के पत्थर, शोणित से चरण-निशान अमिट धरते ।

तूने तो खतरों को ललकारा है,
राही, कदमों को साध, सँभल धरना ।

महावीरप्रसाद 'निर्देश'

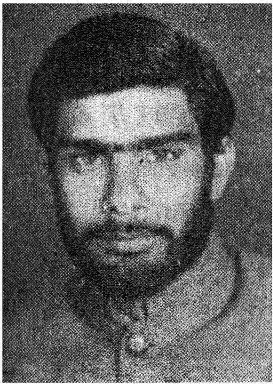

तरुण कवि श्री महावीरप्रसाद 'निर्देश' का जन्म-स्थान आगरा और जन्म-तिथि १५ नवम्बर सन् १९३७ ई० है। हाई स्कूल की परीक्षा पास कर साहित्य सृजन में जुट गए। हर प्रकार की सुविधाएँ होते हुए भी आगे पढ़ने का विचार छोड़ दिया, आपके पिता श्री लाला रामनाथ जी तथा भाई अचलबहादुर आगरे के सम्पन्न लोगों में हैं।

आप मूलतः आक्रोश के कवि हैं। कविताओं के अतिरिक्त गीत निबन्ध भी लिखते हैं। आलस्यवश बहुत कम छपने के लिए पत्रों में भेज पाते हैं। और जहाँ भेजते हैं, रचना उचित स्थान पाती है।

मण्डो सईदखाँ
आगरा

महावीरप्रसाद 'निर्देश'

तुम क्या रूठे

तुम बिन साथी पल भर को भी, मुझ से अब न रहा जाता है।
बैठे-बैठे आज अचानक, आँसू पलकों पर आ छाया,
उभरी अन्तर पीर पुरानी
यौवन हिम सागर भर लाया
रोक रहा हूँ बहुत-बहुत मैं, लेकिन नीर बहा जाता है
मुझसे अब न रहा जाता है।

सावन की विह्वल घड़ियों में,
मुझे व्यथा ने घेर लिया है।
तुम क्या रूठे इस जीवन से—
जग ने मुखड़ा फेर लिया है।
बहुत-बहुत कहने की बातें, लेकिन कुछ न कहा जाता है,
मुझसे अब न रहा जाता है।

जीवन जलता मैं जलता हूँ,
जलता है कण-कण यौवन का,
असमय ही देखो दुनिया से,
साथी बिछुड़ गया बचपन का।
मीठा-मीठा दर्द हृदय का, मुझसे अब न सहा जाता है,
मुझ से अब न रहा जाता है।

महावीरप्रसाद 'निर्देश'

मधुर मधुमास लेकर आ रहा हूँ

हृदय उल्लास लेकर आ रहा हूँ।
मधुर मधुमास लेकर आ रहा हूँ॥

× × +

रुकूँगा अब नहीं पथ पर।
झुकूँगा अब नहीं पथ पर॥
अन्धेरे को मिटाऊँगा।
नया विश्वास लेकर आ रहा हूँ॥

× × ×

थमूँग अब न जीवन में।
नये अरमान हैं मन में॥
लिये नव गान कण्ठों में।
नई अभिलाष लेकर आ रहा हूँ॥

× × ×

मिटाना है अन्धेरे को।
कि लाना है सबेरे को॥
धरा पर आज मैं श्रम का।
कि लो आकाश लेकर आ रहा हूँ॥

महावीरप्रसाद 'निर्देश'

जीवन साथी कोई नहीं है

जीवन साथी कोई नहीं है।

दूर हुई मुझ से उजियारी,
चारों ओर घनी अंधियारी,
इतने दुःख दर्दों पर भी तो, आँख कभी यह रोई नहीं है।
जीवन साथी कोई नहीं है॥

ऐसा जीवन पाया मैंने,
सिर्फ दर्द ही गाया मैंने,
देख रहा मैं उर की पीड़ा, हाय जन्म से सोई नहीं है।
जीवन साथी कोई नहीं है॥

सारी उमर दर्द से खेला,
चारों ओर दुखों का मेला,
सब कुछ खोया किन्तु किसी की, याद अभी तक खोई नहीं है।
जीवन साथी कोई नहीं है॥

मालती जोशी

कविता, कहानी, निबन्ध, रेडियो शब्द चित्र लिखने में सिद्धहस्त श्रीमती मालती जोशी का जन्म ४ जून सन् १९३४ को औरंगाबाद में हुआ और शिक्षा-दीक्षा मध्यप्रदेश में हुई। १९५६ में होल्कर कॉलेज इन्दौर से एम० ए० हिन्दी में प्रथम श्रेणी में किया। ३१ मई सन् १९५९ को आपका विवाह हुआ। विवाह से पूर्व आप मालती दिए नाम से लिखा करती थीं।

रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं के अलावा रेडियो द्वारा भी प्रसारित होती रहती हैं। 'प्रभात के पंथी' तथा आधुनिक हिन्दी कवयित्रियों के प्रेम गीत' नामक संकलनों में आपकी रचनाएँ संकलित हैं।

रामायण से आप प्रभावित हैं। प्रस्तुत तीन गीत इसके स्पष्ट प्रमाण हैं।

C/o श्री एस० आर० जोशी
असिस्टेंट इंजीनियर
चम्बल कालौनी
जौरा, जि० मुरैना (म० प्र०)

मालती जोशी

दशरथ

जीवन-संध्या आ पहुँची है,
प्रिय ! अब असमय में मत रूठो
अन्धे की मत लाठी छीनो
बूढ़े की मत दौलत लूटो
टूटे बनकर वज्र हृदय पर, ऐसे वचन न बोलो रानी
ऐसे वचन न बोलो ।

कितने पुन्यों का फल बनकर
खेल रहे बालक आँगन में
तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है
मेरे प्राण बसे हैं इनमें
विश्वासों के पलड़ों पर मत, मेरी ममता तोलो रानी
ऐसे वचन न बोलो ।

चाह तुम्हें यदि अधिकारों की
व्यर्थ हुआ यह मान तुम्हारा
राम रहें या भरत रहें नृप
अक्षय माँ का स्थान तुम्हारा
अपने ही भ्रम में मत भूलो, रस में विष मत घोलो रानी
ऐसे वचन न बोलो ।

एक नयन में पीड़ा हो यदि
दूजा अपने आप दुखेगा
राम न हों तो यहाँ अवध में
क्या क्षण भी भरत रुकेगा ?
बंधुभाव की इस गंगा में, मन भट की कटुता धोलो रानी
ऐसे वचन न बोलो ।

सीता

बिन तुम्हारे प्राण मुझको
भवन भी वनबास होगा
मन जहाँ रममाण होता
स्मृति वहीं पर खेलती है
सुमन खिलता है वहीं तो
गन्ध उसकी फैलती है
प्रिय ! नयन की छाँह में ही
दृष्टि का आवास होगा ॥१॥

रश्मियाँ होंगी कहाँ पर
उदय होगा जो न दिनकर
ज्योत्स्ना का चिन्ह ही क्या
चाँद के बिन इस धरा पर
कूकती कोयल वहीं पर
प्रिय ! जहाँ मधुमास होगा ॥२॥

दीप के बिन वर्तिका का
शून्य है अस्तित्व सारा
विमुख हो यदि सिंधु तो फिर
कौनसी ले राह धारा
बिछुड़ कर स्वर से उठे यदि
गान का उपहास होगा ॥३॥

मैं कहूँ अपने लिये कुछ
जानकर अनजान हो तुम
है यही अन्याय भारी
है यही दुर्भाग्य क्या कम
देह की गति दैव जाने
मन तुम्हारे पास होगा ॥४॥

मालती जोशी

शबरी

मैं आतप की झुलसी धरती
तुम करुणा के पावन सावन
मैं जीवन की सूनी संध्या
तुम मन के चिरवांछित पाहुन

मैं सहमी-सी लोक-भीति हूँ
तुम दानी हो अचल क्षेम के
मैं उपहासिन भक्ति-भावना
तुम आलिङ्गन विमल प्रेम के
तुमको पाकर धन्य हो गई, अपमानित घड़ियाँ अतीत की
मैं विपदा की दुखद याद हूँ
तुम सुख का सन्देश सुहावन ॥१॥

मैं नयनों की विफल प्रतीक्षा
तुम दर्शन का लाभ सुमङ्गल
मैं स्वागत की अधीर बेला
तुम कुटिया के भाग्य समुज्वल
मन की डाली में सँचित हैं, कड़ुबे मीठे फल अनुभव के
मैं सकुचाई सी पूजा हूँ
भावों के भूखे रघुनन्दन ॥२॥

मैं आडम्बरहीन दीनता
इस दासी का मान तुम्हीं हो
मैं नारी की सहज अज्ञता
मेरे हित का ज्ञान तुम्हीं हो
इन चरणों में आकर अब मैं, क्या माँगू कुछ समझ न पाऊँ
मैं शिशु की अनगढ़ भाषा हूँ
तुम अन्तर्यामी नारायण ॥३॥

मुकुटबिहारी सरोज

नई पीढ़ी के गीतकारों में आप अपनी विशिष्ट स्पष्ट अभिव्यक्ति तथा मौलिकता के कारण एक सुदृढ़-साधक गीतकार हैं। आपकी जन्म-तिथि २६ जौलाई सन् १९२६ ई० और जन्म-स्थान गाँव कोटा, हाथरस (अलीगढ) है। जीवन अति संघर्ष-मय रहा है। आजकल ग्वालियर में अध्यापन कार्य कर रहे हैं।

सन् १९५९ ई० में 'किनारे के पेड़' नाम से आपका गीत-संग्रह प्रकाशित हो चुका है। 'भूमिका' गीत-संग्रह शीघ्र प्रकाशित होने को है। रचनाएँ देश के अनेक प्रतिष्ठित पत्रों में छपती हैं। आकाशवाणी से बहुधा गीतों का प्रसारण होता रहता है।

खासगी
लश्कर (म० प्र०)

मुकुटबिहारी सरोज

भाग्यवानों के निकटतम रह नहीं पाता

बात जो भी सोचता हूँ कह नहीं पाता
इस विवशता का मगर उपहास मत करना

स्याह काली रात ने आकर दबाली हैं निगाहें
भाग जाती हैं चरण से दूर अपने-आप राहें
तुम न पाओगे समझ ऐसे दुखारी की कहानी
सौंप दी हो शूल को जिसने स्वयं अपनी जवानी
दाह अपनी ही तपन का सह नहीं पाता
इस विवशता का मगर उपहास मत करना

एक सूरज-सा अंगारा जल रहा है मूक तन में
घाव इतने है कि तारे भी नहीं जितने गगन में
साँस की दुश्मन बना दी हैं किसी ने सब दिशाएँ
दिन सुखाता है अगर तो तर बना देती निशाएँ
गीत मेरे आँसुओं-सा बह नहीं पाता
इस विवशता का मगर उपहास मत करना

देह मरघट की गुलामी में लगादी है किसी ने
क्या बताऊँ प्यास क्या कैसी जगा दी है किसी ने
रह गया है मौत से लड़ना अकेले काम मेरा
अब न शायद आ सकेगा लौट कर आराम मेरा
भाग्यवानों के निकटतम रह नहीं पाता
इस विवशता का मगर उपहास मत करना

तुमको क्या मालूम

तुमको क्या मालूम कि कितना समझाया है मन
फिर भी बार-बार करता है भूल, क्या करूँ

बीसों बार कहा खुल कर मत बोल बावरे
कानों से कच्चे हैं लोग जमाने भरके
और कहीं भूले भटके सच बोल दिया तो—
गली - गली मारेंगे लोग निशाने करके
लेकिन जिद्दी मन को, कोई क्या समझाए
खुद मुझसे ही रहता है प्रतिकूल, क्या करूँ

मना किया हर बार कि ऐसी गैल न चल तू
जिसमें अरमानों की बदनामी का डर हो
ऐसा साथ तलाश कि जो खाता-पीता हो
जिसके पास उमर अपनी हो, अपना घर हो
लेकिन जाने कैसा पाया है स्वभाव जो—
लगती हर मतलब की बात फिजूल, क्या करूँ

समझाया बहुतेरा देख न कर नादानी
ओस और आँसू का भाई चारा कैसा
ओस चाँद की बेटी तू आवारा पानी
आवारा पानी का मीत, किनारा कैसा
आँधी ने सौ बार दिए हैं धोखे अब तक
मिले भले मत मिले जनम भर कूल, क्या करूँ

मुकुटबिहारी सरोज

कौन किसका साथ देता है जमाने में

कौन किसका साथ देता है जमाने में

दीप ने सोचा कि आई चाँदनी
अब जलन में कुछ कमी आ जायगी
और बाती के बुढ़ापे की कमर—
रात भर का आसरा पा जायगी
स्वप्न चकनाचूर लेकिन इस तरह से हो गया
चाँद को आया मजा आँखें चुराने में

आँसुओं से कीमती है क्या भला ?
मेघ ने लेकिन लुटाये रात-दिन
और पूजे पाँव हर अंगार के—
जल न जाएं फूल पातों के बदन
साधना खंडित मगर ऐसी हुई घनश्याम की
गोपियों को व्यस्त है पतझर रुलाने में

साँस के विश्वास पर माटी उठी
और छू आई गगन के भाल को
मंजिलों का मौन पानी कर दिया
वन्दना करनी पड़ी भूचाल को
स्नेह में लेकिन दरारें डाल दीं ऐसी समय ने
आग मरघट को न आ पाई बुझाने में

मुरलीधर श्रीवास्तव 'निर्झर'

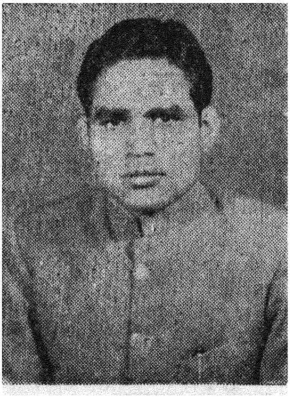

आपका जन्म ज्येष्ठ सुदी १५ सं० १९९३ में एक सभ्रान्त कायस्थ परिवार में हुआ। जन्म-स्थान ग्राम—मड़िया तहसील निवारी जिला टीकमगढ़ है। तीन भाइयों में आप सबसे छोटे हैं। वर्तमान में शिक्षा बी० ए० है। एम० ए० में अध्ययन कर रहे हैं। साहित्य से रुचि बचपन से ही थी। इधर काव्य की विशेष प्रेरणा रामायण से प्राप्त कर रहे हैं। पिता, भाभी और चाचा, चाचियों की असामयिक मृत्यु से आप आध्यात्मिकता की ओर भी मुड़े हैं। रचनाएँ अनेकानेक पत्रों में बहुधा प्रकाशित होती रहती है। कहानियाँ, निबन्ध भी लिखते हैं। 'निर्झरणी', 'मुक्तावली', 'गुलाब और काँटे' आपकी अप्रकाशित काव्य कृतियाँ हैं।

पी० जी० बी० टी०
महाविद्यालय
छतरपुर (म० प्र०)

मुरलीधर श्रीवास्तव 'निर्झर'

पावस गीत

झिर लागी, आषाड़ी झिर लागी······झिर लागी
हल धर की किस्मत फिर जागी······झिर लागी

चूनरी हरी, अँगिया पीली
अलकें सहमी, पलकें गीली
माटी की भाँवर पड़न लागी······झिर लागी

यह झूक मिलन, भीगी चितवन
साँवरिया संग, नाची दुलहन
मेंड़ों पर रास रचन लागी······झिर लागी

कारी बदरी, ले रस गगरी
नभ-डगर चली, कुछ छलक परी
कंचन को भूमि उठन लागी······झिर लागी

त्रिभुवन-पालक, जन प्रेम पगे
जीवन-दायक, घर जाग उठे
अमृत की धार चुवन लागी······झिर लागी
झिर लागी, आषाड़ी झिर लागी······झिर लागी

मुरलीधर श्रीवास्तव 'निर्झर'

जिन्दगी की मोड़ पर

जिन्दगी की मोड़ पर, चढ़ाव है उतार है

एक फूल रो रहा है, डाल पर खिला हुआ
एक फूल हँस रहा है, धूल में मिला हुआ
एक फूल पल रहा है, देव के सिंगार में
एक फूल जल रहा है, भूख के अंगार में
जिन्दगी के बाग में, बसंत झूमता, कभी
इसीलिए चमन लुटा, लुटी हुई बहार है

स्नेह डोर से बँधी, कि जिन्दगी में प्राण है
स्नेह डोर से छुटी, कि जिन्दगी, श्मशान है
स्नेह-नाव जो चढ़ा तो धार पार हो गया
स्नेह नाव से गिरा कि बीच धार खो गया
स्नेह-कूल से मनुष्य दूर-दूर जा रहा
आदमी इसीलिए गिरा हुआ कगार है

एक गीत गा रहा, कि दूसरा सिसक उठा
एक घाव पुर गया, कि दूसरा कसक उठा
एक ओर साँझ है, तो एक ओर प्रात है
अर्थियाँ उतर रहीं, सँवर रही बरात है
वासना की धूप में, सुलग रही 'जवानियाँ'
इसलिए ही प्यार की, दिबार में दरार है

शब्द-सूत से, मनुष्य, माल को बना रहा
जान में, अजान में, मनुष्यता फँसा रहा
प्यास बेचने लगी, सिन्दूर को गली गली
मजार खोजने लगी, अधखिली कली-कली
बिक रहा है आज रूप स्वर्ण के बजार में
उम्र का इसीलिए सिसक रहा सितार है

मुरलीधर श्रीवास्तव 'निर्झर'

तुम्हारा प्यार तुमको सौंपता हूँ

ले सको तो लो, तुम्हारा प्यार तुमको सौंपता हूँ
जिन्दगी के राज का, आधार तुमको सौंपता हूँ
मूल्य क्या उस भक्त का होगा बताओ
भ्रष्ट जिसको देवता ने खुद किया हो
और वह, उन्मत्त पूजा है अधूरी,
भावना की चाँदनी को हर लिया हो
कामनाओं के वकीलों की जिरह से मात खाकर
जिन्दगी के स्वप्न का, संसार तुमको सौंपता हूँ

प्रेम क्या है, दो दिलों का एक होकर
भेद की गहराइयों को चाह देना
या छुपा विश्वास में हँसते सदन को
पीर में मुस्कान को भी बाँट लेना
वस्तुओं के मोल पर, विश्वास ही बिकने लगा तो
जिन्दगी की हाट का, व्यापार तुमको सौंपता हूँ

सूखती है साध जब प्यासी लता-सी
प्यार-तरु को सींचना तब व्यर्थ ही है
रूठकर जब जा चुका साथी सफर का
यूँ बिलख कर रीझना तब व्यर्थ ही है
लो सँभालो आज से इस जिन्दगी की एक जर्जर
डगमगाती नाव की पतवार तुमको सौंपता हूँ—

योगेन्द्र त्यागी 'हिमकर'

आपकी जन्म-तिथि ११ मार्च सन् १९३७ ई० तथा जन्म-स्थान—सिसौना, जिला बिजनौर (उ०प्र०) है। १९५६ में लखनऊ विश्वविद्यालय से बी०ए० किया है। उसी समय से जिला नियोजन कार्यालय बिजनौर में राज कर्मचारी हैं तथा यहीं से प्रकाशित मासिक 'प्रगति' के दो वर्षों तक प्रकाशन अधीक्षक रहे। वर्तमान में भारत सेवक समाज बिजनौर की जिला सूचना समित के सांस्कृतिक सचिव है। रचनाएँ 'रानी' 'प्रवाह', 'चिनगारी' इत्यादि पत्र-पत्रिकायों के अलावा' स्थानीय पत्रों में छपती रहती हैं। साहित्यिक प्रतियोगिताओं पर पुरस्कार भी प्राप्त किए हैं। आकाशवाणी लखनऊ के 'स्वर वेला' और 'मजदूर मण्डल' कार्यक्रमों में भी अनेक रचनाएँ समय-समय पर प्रसारित हुई है।

जिला नियोजन कार्यालय
बिजनौर (उ० प्र०)

योगेन्द्र त्यागी 'हिमकर'

तुम्हारा प्यार तुमको सौंपता हूँ

तुम जग के कोलाहल से ऊब गए
मैं मन के कोलाहल में जीता हूँ
जिनके कंठों से कालकूट झरता
उनके सिर पर गंगा लहराती है
मुझको ऐसा गुण दिया विधाता ने
सारी दुनियाँ दोषी ठहराती है
जिस दिन से शाप मिला निर्वासन का
अलका से अभिशापों की बस्ती में
औरों को स्वर-सीकर से नहला कर
खुद जीवन का हलाहल पीता हूँ।
खिल रहा अधर पर हिमजल हास कहीं
गल रही कहीं पर रेखा काजल की
मधुवन के प्यासे प्राण सिसकते हैं
मरुथल पर अनुकम्पा है बादल की
परिचय न हुआ जिसका अंगारों से
हो गया तृप्त वह रिक्त कलश लेकिन
जिसमें कोई रस-बूँद नहीं बरसी
मैं पनघट का ऐसा घट रीता हूँ
मासूम लहर भी क्या कर देती है
जाकर पूछो सरिता के कूलों से
ऐसे प्राणों की पीर चिरन्तन है
जो आहत हो जाते हैं फूलों से
घायल तन के उपचार बहुत लेकिन
मन को केवल गीतों का मरहम है
इस कारण जो अन्तर तक सीमित हैं
उन घावों को भावों से सीता हूँ

योगेन्द्र त्यागी 'हिमकर'

रुला रही बहार है

चाँद से नरम-नरम निखार ले, सूर्य से गरम-गरम अँगार ले
एक बार खिल रही बहार है, एक बार जल रही बहार है
बार-बार कर रही सिंगार है
रात, प्रात ज्योति का प्रसार है
बार-बार चाँदनी बिखेर कर
ढल रहा लो चाँद का उभार है
इसलिए ही धर शरीर कुंज में, तरु-लता-वितान पत्र-पुंज में
एक बार पल रही बहार है, एक बहार ढल रही बहार है
पल रहीं परम्परा की रख हैं
छल रहे नियम-विधान लेख हैं
भावना समान हो भले मगर
रूप एक भक्त तो अनेक हैं
इसलिए प्रकृति के निदेश पर, पा सुहाग-वर सुमन-सुवेश पर
इक चमन खिला रही बहार है, इक चमन रुला रही बहार है
हास इसलिए कि अश्रु भी रहा
रूप को निशा के प्रात पी रहा
दुख हजार, इसलिए कि एक सुख
स्वप्न मिट रहे कि सत्य जी रहा
इसलिए ही डाल के हिन्डोल पर, धूल में सुमन को डोल-डोल कर
एक क्षण झुला रही बहार है, एक क्षण सुला रही बहार है
मृत्यु चूमने को साँस चल रहीं
धूल रोज रूप-रंग बदल रही
बूँद यद्यपि लिए अँगार है—
प्यास तृप्ति के लिए मचल रही
इसलिए ही भौंर की गुहार पर, इसलिए ही प्राण की पुकार पर
एक बार आ रही बहार है, एक बार जा रही बहार है

योगेन्द्र त्यागी 'हिमकर'

फसल गीत

बोई हुई रेत में, सोई हुई खेत में
आज सजग हो गई आस खलिहान की
मेघ-मलहार से झरती मलार से
धुल गई, निखर गई भावना किसान की।

पावस पुकार पर शिखी पर खोलते
राग-रस घोलते कजरो के बोल थे
लहरे हिंडोल थे तृप्त पुरवाई थी
सरस रसाल थे मुदित अमराई थी

लय की उठान में नहीं कुछ थकान थी
ओज भरा स्वर था उमङ्ग भरी तान थी
कृषक सजीव था सजीव सब गान थे

साधना में जोर था साध उभर आ गई
सुखद हरीतिमा का भूमि वर पा गई
लगन से चाव से स्वर के प्रभाव से
अंकुरों में ढल गई कल्पना किसान की

कजरी को तान से, बदरी के दान से
आज सजल हो गई याचना किसान की
सूर्य-योग था प्रबल कि किरण-पाश भी सबल
अपूर्ण क्यों रहे फसल प्रकृति का नियम अटल

धीरे धीरे गोद की दरिद्रता बिछल गई
खेत की हरीतिमा—स्वर्ण में बदल गई
अन्न था तो प्राण था ठोस श्रम-विधान था
एक-एक स्वेद-कन हुआ मूर्तिमान था

मन्द-मन्द झूमती लहलहाते धान की
बालियों में फल गई साधना किसान की
कजरी की तान से, बदरी के दान से
आज सबल हो गई कामना किसान की।

रमेश 'करुण'

आपका सन् १९५६ से कविता की ओर झुकाव हुआ है। प्रथम कविता 'जय चम्बल' जागरण पत्र में प्रकाशित हुई। तदुपरान्त कई पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन हुआ। आपकी कविताओं को अधिक स्थान 'भारत ज्योति' और 'महिला सन्देश' मासिक पत्रिका में मिला है। आपके दो नाटक 'सेवा' और 'अन्तर्ध्वनि' प्रेस में हैं।

चाँदसी अस्पताल
गुना (म०प्र०)

रमेश 'करुण'

मधुमास कहाँ से लायें

तम हँसता है शूल सफल है, जब विपरीत समय है,
तो मन की बगिया में अलि मधुमास कहाँ से लायें।

अहंकार की मंजिल जब झूठे वैभव को पाना,
तो ऊँच नीच की कुटिल भावना बुनती ताना बाना।
नहीं चाहते सद् संचालन पास परस्पर आना,
तो दिल की धड़कने, किस तरह गाएँ मिलकर गाना।

जब अधिकार हमें डसते हैं पग सीमा से बढ़कर,
तो साहस संतुलन सुदृढ़ मधुमास कहाँ से लायें।

भले चांद चाँदनी बिखेरे अन्धकार पलता है,
किसे प्यार की बात सुहाती द्वेष दीप जलता है;
दम्भ डाह का अनाचार जब जीवन को खलता है,
चुपके चुपके प्यार हमारा जीवन में जलता है।

ऐसे में विकसित संसार फला फूल सा,
किसी साधना से पीड़ित उच्छ्वास कहाँ से लायें।

आयेगा मधुमास

अरे! जरूरी है जीवन में हारना,
और हार कर जीत स्वयं मिल जाती है।

कदम बढ़ाओ कुछ ऐसे ही राग में,
आयेगा मधुमास शीघ्र ही बाग में।
पड़ना है रे व्यर्थ कि माया मोह में—
मिलता है आनन्द सदा ही त्याग में।

ठुकरा देती है दुनिया रुकने वालों को,
चलने वालों को किन्तु सदा अपनाती है।
अरे! जरूरी है जोवन में हारना,
और हार कर जीत स्वयं मिल जाती है।

रमेश 'करुण'

मुझे याद कर मत रोना

तुम जाओ लो तुम्हें गाँव तक, विदा दे रहा हूँ साथी,
मेरी तुम्हें कसम है, लेकिन मुझे याद कर मत रोना।

तुमको याद बहुत आयेगी नदी किनारे की अनकहनी,
और सिंदूरी कन्दीलों को तट के पत्थर बहलायेंगे।
आँखें भर भर आयेगीं, औ, सारा बचपन नाच उठेगा,
सावन के वे मेघ तुम्हारे, घूँघट पर मंडरायेंगे।

तुम जाओ मैं तुम्हें प्रेम से, विदा दे रहा हूँ साथी,
मेरी तुम्हें कसम है, लेकिन मुझे याद कर मत रोना।

मुझे याद है वे शामें जब तुमने चित्र बनाये मेरे,
तुमने मेरे इन केशों की गुत्थी सारी सुलझाई थी।
मुझे याद है वो अमला भी, जहाँ तुम्हारी गुड़िया रानी,
तुमने मेरे उस पुतले के साथ-साथ बहलाई थी।

तुम जाओ मैं तुम्हें खेत तक विदा दे रहा हूँ साथी,
मेरी तुम्हें कसम है लेकिन मुझे याद कर मत रोना।

गाँव-गाँव बदनाम हुए हम ऐसी नाबालिग बातें हैं,
जिनके बहलाने से दाता दर-दर के बन गए भिखारी।
दुनिया भर के सपने माँगे कहीं न भर पाई ये झोली,
जैसे द्वार-द्वार जाकर भा कोई खाली जाय भिखारी।

तुम जाओ मैं तुम्हें लक्ष्य तक विदा दे रहा हूँ साथी,
मेरी तुम्हें कसम है लेकिन मुझे याद कर मत रोना।

रमेश गुप्त

लखनऊ विश्वविद्यालय से बी०ए० तक शिक्षा प्राप्त श्री रमेश गुप्त का जन्म सन् १६२८ ई० में उन्नाव में हुआ। १६५४ से आप साहित्य क्षेत्र में काव्य-सृजन कर रहे हैं। रचनाएँ प्रायः पत्र-पत्रिकाओं मे प्रकाशित होती रहती हैं। कविता के साथ-साथ आप कहानियाँ, निबन्ध भी लिखते हैं। स्वतन्त्र फोटोग्राफी क व्यावसाय है। छाया चित्रों का प्रकाशन बहुधा पत्रों में होत रहता है।

हिन्द स्टूडियो,
अमीनुद्दौला पार्क, लखनऊ

रमेश गुप्त

इनकी प्यास बुझा देना तुम

पीड़ा की इस भरी हाट से, कुछ ये गीत बचा लाया हूँ,
एक बार ही केवल गाकर, इनका मूल्य चुका देना तुम।

यूँ तो बहुतेरे सौदागर इनकी ओर निहार रहे हैं,
गूँज उठे उनका भी आँगन, इनको बहुत दुलार रहे हैं।
पर यह तो नादान हठीले, बात नहीं कुछ उनकी सुनते,
पास तुम्हारे उड़ आने को, व्याकुल पंख पसार रहे हैं।

दसों दिशायें नाप परों से, जब यह पहुँचे गाँव तुम्हारे,
स्वागत में केवल मुस्काकर, इनकी थकन मिटा देना तुम।

रोम-रोम में ज्वाल भरे पर, चन्दन वन से तपन मिटाते,
परछाईं को बाँह गहे यह, एकाकी ही उड़ते जाते।
इनको रोक न पाते जग के, स्वर्णिम तीली वाले पिंजरे,
स्मृति की सूनी शाखों पर, बार-बार जाकर मड़राते।

एक बार भी अगर तुम्हारे, आँगन में यह उतर पड़ें तो,
अपने अलक जाल बिखरा कर, बन्दी इन्हें बना लेना तुम।

जाने कैसे यह प्यासे हैं, हर पनघट प्यासा हो जाता,
सबकी तृषा मिटाने वाले, इनकी तृष्णा कौन बुझाता।
इनकी स्वर लहरी को सुनकर, अनगिन मधुघट छलक उठे हैं,
पर यह तो शिशु से भोले हैं, इनको पीना ही कब आता ?

अगर तुम्हारे हृदय-गगन पर, सजल मेघ बनकर यह छायें,
अपने तृषित अधर से छूकर, इनकी प्यास बुझा देना तुम।

मधु से डूबा तन-मन मेरा

नीर भरे मेघों सा यह मन, विवश बहुत है,बरस न पाता।

सुधि के बादल उमड़-घुमड़ कर, नयनों में आकर छा जाते,
देख बरसते सजल श्याम घन, चू पड़ने को वे अकुलाते।
किन्तु हिमानी साँसें मेरी, पानी भी पाहन कर देतीं,
आँसू जम कर भार बन गये, मोती बन कर बरस न पाते।

सुरभि भरे फूलों सा यह तन, विवश बहुत है, सरस न पाता।

कोयल की हूकों के संग-संग, याद तुम्हारी आ जाती है,
सीली सी पुरवा बयार यह, विरहानल धधका जाती है।
बिजली बन मुस्कान तुम्हारा, अम्बर के इस श्याम पटल पर,
अँगारों से क्या लिखती है, पीड़ा दुगनी हो जाती है।

पीर भरा प्राणों का पंछी, विवश बहुत है, दरस न पाता।

कल की गूँगी ताल-तलैय्या, रात, रात भर राग जगाती,
जुगनू के मणि दीप सजायें, बँसवारी बाँसुरी बजाती।
मेंहदी की खुशबू को पीकर, बहक रहा हैं मस्त हवायें,
दिशा-दिशा मधुशाला खोले, तितली मधुबाला इठलाती।

मधु से डूबा तन मन मेरा, विवश बहुत है, विहँस नपाता,
नीर भरे मेघों सा यह मन, विवश बहुत है, बरस न पाता।

रमेश गुप्त

हम आँखों से घूट रहे हैं

मेरी व्यथा कौन समझेगा, जब अपने ही रूठ रहे हैं,
हृदय-गगन के सभी सितारे, एक-एक कर टूट रहे हैं।

जिस पत्थर को मैंने पूजा, वरदानी भगवान बन गया,
हृदय दे दिया जिसको अपना, लाखों में धनवान बन गया।
पर मेरी किस्मत की खूबी, एक किरन तक पास न आई,
अन्धकार की लम्बी बाँहों से, मेरी हो गई सगाई।

आज सँग चलने वाले भी सदियों पीछे छूट रहे हैं,
हृदय-गगन के सभी सितारे, एक-एक कर टूट रहे हैं।

मैंने एक स्वप्न देखा था, आँख खुली भ्रम दूर हो गया,
खेल-खेल में मेरे मन का, दर्पण चकनाचूर हो गया।
अब मुझको मेरी ही सूरत, मुँह बिचकानी सी लगती है,
हर दर्पण उल्टा कर देना, अब मेरा दस्तूर हो गया।

जिन शाखों पर सुमन हँसे थे, उन पर काँटे फ़ूट रहे हैं,
हृदय-गगन के सभी सितारे, एक-एक कर टूट रहे हैं।

आज हमारे और तुम्हारे, बीच खिंची शीशे की चादर,
सदा रहेंगे सम्मुख हम तुम, किन्तु मूक होंगे मन के स्वर।
लाख निकट होने पर भी तो, यह अदृश्य दूरी इतनी है,
जिसे कभी क्या नाप सकेंगे, मेरी बेवस चाहों के पर।

दुनिया अधरों से पीती है, हम आँखों से घूट रहे है,
हृदय-गगन के सभी सितारे, एक-एक कर टूट रहे है।

रमेशचन्द्र गुप्त 'चन्द्रेश'

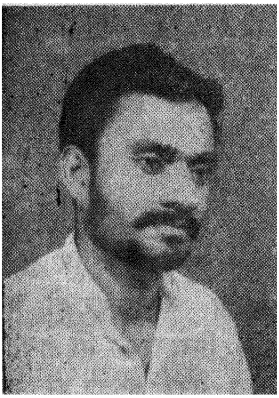

आपका जन्म सन् १९३८ ई० में कानपुर शहर में हुआ। शिक्षण कार्य के साथ वैश्य इण्टर कालेज में अध्ययन कार्य भी कर रहे हैं। आपको साहित्य संगीत, चित्रकारी और रंग-मंच से विशेष रुचि है। आप जीवन के प्रति गहरी आस्था और विश्वास रखते हैं। प्रारंभ मे ही संघर्ष आपके पीछे पड़े हुए हैं। आप उस नैया के समान हैं, जिसे लहरें हर समय अपनी बाँहों में लिए हुए हैं। इन्हीं से जूझने में आप आनन्द का अनुभव करते हैं। अपनी एक अधूरी कविता की यह दो पंक्तियाँ आपको बहुत प्रिय हैं—

उम्र तो बेनाम साथी हो गई है।
जिन्दगी बदनाम साथी हो गई है॥

६९/?७०, दानाखोरी
कानपुर

रमेशचन्द्र गुप्त 'चन्द्रेश'

बरसे चांदनियाँ

प्रिय चन्दा मुस्काये।
बरसे चांदनियाँ—झिर···झिर···झिर···!

हुई श्वेत वसना,
प्रकृति आज सगरी;
हर किरण हिम-स्नात
स्वप्न सी मनोहरी;
तंद्रिल मन ठहर जाये—घिर···घिर···घिर···।

पवन की सनन-सन,
सिहर उठे तन-मन;
रस सुगन्ध सिक्त श्वांस-
कसमस घेर पाश;
रहस्यावृति हो जाये—फिर···फिर···फिर···।

कितना आकुल तन,
कितना व्याकुल मन;
होगया अवश पन-
खिलक लो झरे सुमन;
अंखियन को पाँख जाए—तिर···तिर···तिर···।

प्रिय चन्दा मुस्काये।
बरसे चांदनियाँ—झिर···झिर···झिर··· ॥

रमेशचन्द्र गुप्त 'चन्द्रेश'

बैठे सिर्फ एक पल

साँसों की अमराई में बैठ सिर्फ एक पल ।
प्राण कुछ तुम कहलो प्राण कुछ मैं कहलूँ ।।

पलकों की बगिया में,
पलभर को मैं आया;
रागमय फुहारों में,
मधुमय रस बिखराया;

हो ही जायेगी इन सीमाओं में हलचल ।
प्राण कुछ तुम हँसलो प्राण कुछ मैं हँसलूँ ।।

महर-महर महक उठी,
मधुवन तक गमक उठा;
रसगन्धी श्वास तिरी,
संस्पर्शण ठुमक उठा;

मुस्काये मेरा प्रिय भटका यह अन्तराल ।
हास कुछ तुम सहलो हास कुछ मैं सहलूँ ।।

अनगढ़ जो सपने थे,
अनजाने जाग गये;
अलसित से यौवन में;
मन भाये राग नये;

जनम-जनम की साधना हो जाये सफल ।
प्राण कुछ तुम थमलो प्राण कुछ मैं थमलूँ ।।

रमेशचन्द्र गुप्त 'चन्द्रेश'

कैसी नादानी कर बैठे

सपनों को बदनाम कर दिया।
कैसी नादानी कर बैठे॥

लुटा चुका था सब कुछ अपना कभी तुम्हारी बाहों में,
मिला अपरिमित सुख था मुझको जब आँचल की छाहों में;
पर तुमने चन्दन से पावन मन को—

क्यों कर यह अन्जाम दे दिया?
कैसी नादानी कर बैठे॥

तुमने ही तो वचन दिया था साथ उमर भर देने को,
मैंने समझा मिला सहारा मुझे उमर भर जीने को;
पर ऐसी पीड़ा प्राणों में दी—

मरने का सरजाम कर दिया।
कैसी नादानी कर बैठे॥

सच कहता हूँ जीवनभर भटकोगी प्रिय तुम मेरे बिन,
जब-जब मेरी सुधि आयेगी दृग रोयेंगे तब पल-छिन;
खुद ही मृग तृष्णा में पड़ कर तुमने—

अपने को नीलाम कर दिया।
कैसी नादानी कर बैठे॥

रमेश भार्गव 'उद्गम'

आपका जन्म ११ दिसम्बर १९३६ ई० में गुना (म०प्र०) में हुआ। शिक्षा एवं अध्ययन का केन्द्र भी गुना ही रहा है। वर्तमान में आप एम०ए०प्री० के विद्यार्थी हैं।

सन् १९५८ में सर्व प्रथम चार मुक्तक लिखे जो 'नव प्रभात' में प्रकाशित हुए। इसी वर्ष 'पैसे की झाँकी' और 'दीप से कहदो' रचनाएँ कालेज पत्रिका में प्रकाशित हुईं। कविताओं के अतिरिक्त आप कहानी, नाटक भी लिखते हैं।

पो० ऑ० रोड,
गुना (म० प्र०)

रमेश भार्गव 'उद्गम'

तप्त मन की बादरी है

कंठ में है प्यास पनघट पर खड़ा हूँ,
और जाने नीर कितना पी चुका हूँ;
किन्तु फिर भी रिक्त मेरी गागरी है।

आप अपनी आग में अब जल रहा हूँ,
बात है संसार की जो लिख रहा हूँ,
आँख में खटका सदा शैतान की हो—
आदमी को आदमी मैं दिख रहा हूँ।
गीत अधरों पर मचलते स्वर सजे है!
और जाने गीत कितने गा चुका हूँ;
किन्तु फिर भी बेसुरी-सी बाँसुरी है।

क्या बताऊँ आज मैंने क्या किया है,
स्वयं से संन्यास मैंने ले लिया है,
किन्तु तृष्णा मिट सकी कब हाय मन को—
तुम चले तो साथ मैंने भी दिया है।
हर तरह से आज तुमको पा चुका हूँ।
किन्तु फिर भी प्रीत मेरी बावरी है।

कर्ज जो लेकर चला था धन वहाँ से,
रूप के बाज़ार में सब खो रहा हूँ।
मूल तो क्या सूद भी ना दे सका मैं,
भार जीवन का मरण का ढो रहा हूँ।
लग रहा है मैं तुम्हें कुछ भा चुका हूँ
किन्तु फिर भी तप्त मन की बादरी है।

नदिया के पार

क्या तट है, और क्या मझधार ?
मैं तो चला नदिया के पार।

भँवरें अब करती हैं नर्तन,
लहरों की डोली के आगे।
तट गुञ्जाते हैं शहनाई,
मलयानिल-दुल्हन-सी लागे।
कैसा रूप, कैसा शृंगार ?
मैं तो चला नदिया के पार।

चादर-सा शैवाल बिछा है,
कमल-पखुरियाँ बिखराई हैं।
गहराई को छोड़ मछलियाँ—
स्वागत को ऊपर आई हैं।
कैसा समय, कैसा त्यौहार,
मैं तो चला नदिया के पार।

घण्टियाँ घाट के मन्दिर की,
मुझको आवाज लगाती हैं।
सपनों की हाटें सजी हुई—
चरणों में शीश झुकाती हैं।
क्या जग है, और कैसा प्यार,
मैं तो चला नदिया के पार।

चंचल-माया की धार धीर,
मैं अनजाने उस पार चला।
जीवन की होगी शाम वहीं,
जहाँ सुख दुख को विश्राम मिला।
क्या आँधी, और क्या है ज्वार ?
मैं तो चला नदिया के पार।

रमेश भार्गव 'उद्गम'

लाख-लाख तेरा अभिनन्दन

ओ मेरे जीवन के दाता, लाख-लाख तेरा अभिनन्दन,
संघर्षों को उमर सौंपदी, जीने को दे डाले बन्धन।

उपवन-सा संसार दिया पर—
मरम-भरम से क्यारी भर दी।
सीमित उमर बना फूलों की—
धरम करम की ख्वारी करदी।

ओ मेरे मधुवन के सृष्टा, प्राण-भ्रमर करता है गुन्जन,
आशाओं के पंछी उड़ते, विश्वासों के अम्बर-आँगन।

मन-डाली पर करती नर्तन,
चिन्ताओं की तितली काली।
शबनम-से आँसू पीती है—
गालों की उजड़ी हरयाली।

ओ मेरी सांसों के पवना, धड़कन करती तेरा पूजन;
तूने मुझे बताया इतना, आनन्दों का दाता क्रन्दन।

विपदाओं की आँधी चलती,
जीवन नैया तूफानों में।
लेकिन नहीं डूबने देता—
चाह सबल है, अरमानों में।

दुख-भँवरों में तेरा दर्शन धन्यवाद मेरे शुभ-चिन्तक,
समझाया दो बाहें देकर, कर्मों का प्रतिफल है, जीवन।

राजकुमारी तिवारी 'रश्मि'

विदुषी, बौम्बे आर्ट तक शिक्षा प्राप्त कवयित्री राजकुमारी तिवारी 'रश्मि' का जन्म-स्थान पुराना शहर कटरा चाँद खाँ, बरेली है। आपके पिता श्री हरप्रसाद जी हैं। कविताएँ लिखने से अभिरुचि बचपन से ही है। रचनाएँ, पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। कविताओं के साथ कहानियाँ लिखने में भी विशेष रुचि है। एक कहानी संकलन प्रकाशन के पथ पर है।

१२३, कूचा डालचन्द
बिहारीपुर, बरेली

राजकुमारी तिवारी 'रश्मि'

मत ऐसी बात करो

मैं गहन तिमिर में चलती हूँ तो चलने दो—
मत व्यर्थ बुलाओ तुम किरणों की राहों में।

संकल्प विकल्पों को अपनी सीमाएँ हैं
जिनके बन्धन में इच्छाएँ दम तोड़ रहीं
मैंने छाया है नीड़ शून्य की रेखा पर
मरुथल सी प्यासी सुधियाँ पंख मरोड़ रहीं
मैं दीप शिखा-सी जलती हूँ तो जलने दो
मत व्यर्थ बहाओ तुम लहरों की बाहों में।

हर अश्रु नयन में भोले शिशु-सा मचल रहा
अब श्वास-श्वास पर विश्वासों का पहरा है
जो वह तुमको उथला-उथला सा लगता है
वह धरती की छाती तक जाकर ठहरा है
यह मन हिमकण-सा गलता है तो गलने दो
मत दर्द बसाओ अपनी भरी निगाहों में

मत नेह बढ़ाओ तुम ऐसी प्रतिमाओं से
जो वरदानों को भी शापों के संग धरें,
मत ऐसी बात करो पथ के अनजानों से
जो घाव पुर गये फिर से आज वही उभरें
सपनों की छाया छलती है तो छलने दो
मत व्यर्थ भुलाओ भूली बिसरी चाहों में

वरदान शाप बन जाते हैं

मैं फूलों से मनुहार नहीं कर पाऊँगी।
इन शूलों से शृङ्गार नहीं कर पाऊँगी॥

सौगात मिली लेकिन मुँह माँगी नहीं मिली,
इच्छाओं की डोली द्वारे पर खड़ी रही।
अनजाने सपनों की अनदेखी गलियों में,
कल्पित रेखाओं के जीवन-सी अड़ी रही।
सहने को तो सह सकती हूँ विपदाओं को,
पर निष्ठुरता से प्यार नहीं कर पाऊँगी।

मुझको छूकर वरदान शाप बन जाते हैं,
फिर इच्छाओं की बात भला कैसे कह दूँ।
होनी अनहोनी, घटनाओं ने जीवन की,
अविरल गति में है साथ दिया, कैसे कह दूँ।
जग वाले यदि कुछ कहते है तो कहा करें,
मैं निज को अपनी साधों से दुलराऊँगी।

दीपक के जीवन को अंधियारा निगल रहा
हर साँस उखड़ती सी रुक-रुक चलती है।
हर चाह डगर पर भटके हुये बटोही सी,
छलनाओं के संग झुकती और मचलती है।
कहने को तो कह सकती बाती सुधियों से,
पर हँस कर मैं सत्कार नहीं कर पाऊँगी।

छूकर के मेरे इन गहरे विश्वासों से
पुरवाई का भीगा आंचल भी डोल गया
कोई मुस्काती इन कचनारी कलियों के
अन्तर में जैसे दावानल सा घोल गया
बहने को तो बह सकती हूँ मझधारों में
पर लहरों से व्यापार नहीं कर पाऊँगी।

राजकुमारी तिवारी 'रश्मि'

आज मैं किसका साथ गहूँ

जाने क्या बात हुई नीर भरे नयनों में;
डूब गया मन मेरा डूब गये प्रान रे।

कौन अभी पूनम की आरती उतार गया
हौले से सुधियों की अलकें सँवार गया
जूही की गन्ध उड़ी ऐसी गलियारे में
भीज गया मन मेरा भीज गये प्रान रे।

अधरों का गीत कोई चुपके से लूट गया
कड़कन ले हृदय आज डाला सा टूट गया
सूरज से उगे कहीं, संध्या से डूब गये
निदयारी पलकों में सपने अजान रे!

वंशी की गूँज उठी मछुए को तान-सी
बेसुध सी रजनी है बेला विहान-सी
जादू सा डार दिया किसने इन गीतों में
बाँध दिया स्वर मेरा बाँध दिये गान रे।

राजेन्द्र प्रसाद सिंह

[illegible]

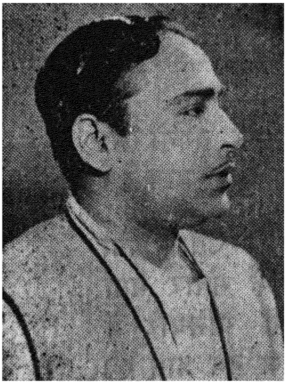

आपका जन्म सन् १९३० ई० में स्थान—बेरई (मुजफ्फरपुर, बिहार) में हुआ। परिवार, मध्यवित्त, जीविका कृषि शिक्षा, बी०ए० (पटना वि०वि०) एम०ए० (बिहार वि०वि०) पी०एच० डी० के लिए (काशी वि०वि०) से शोध कार्य में संलग्न हैं। प्रकाशित कृतियों में 'भूमिका', 'दिग्वधू' काव्य 'अमावस और जुगनू' (उपन्यास) प्रमुख हैं। स्फुट कहानियाँ, आलोचना, एकांकी, रेडियो-रूपक, डायरी के पृष्ठ, आदि अलग कृतियाँ हैं। कई साहित्यिक-पत्रों के भूतपूर्व सम्पादक हैं। वर्तमान में 'दृष्टि' 'सर्जना' 'अपरम्परा' मासिक पत्रों का सम्पादन कार्य कर रहे हैं। 'गीतांगिनी' (प्रमुख आधुनिक गीतकारों की रचनाओं) के सम्पादक हैं। 'मानसर की दिशाएँ' 'आओ खुली ब्यार' 'संजीवन कहाँ', 'नई कविता : प्रयोग और प्रक्रिया', 'कला व्यक्तित्व और साहित्य' 'गाँधी यज्ञ' 'दिवायर पुलर' आदि आपकी आगामी कृतियाँ हैं।

मधुरिमा, हरिसभा,
मुजफ्फरपुर (बिहार)

राजेन्द्र प्रसाद सिंह

दूज के चाँद की दो किरन

दूज के चाँद की दो किरन
छू गई,.........छू गई—
ये नयन, वे नयन !

अजी, थकी तो नहीं आ रहा
कि फिर अछूता सपन छा रहा,
पर समय के तिमिर से घिरा
मर्म का दीप मुसका रहा !
लालसा के सितारे वही....
उग रहे,....जग रहे—
ले जलन, दे जलन।

अब गगन बन गया आइना
हम खुदी का करे सामना,
एक के बिम्ब हों दूसरे,
तो नजर को करें क्यों मना ?
प्यार के ये इशारे नहीं....
और ही,........और ही
यह लगन, है लगन !

हो भले दो घड़ी चाँदनी,
वंचना मधुमयी यामिनी,
जिन्दगी : एक प्यासी घटा—
रंग में गन्ध की दामिनी,
अश्रु का सिन्धु भी सूख कर....
चाहता ,........माँगना—
एक कण,....एक कण।

राजेन्द्र प्रसाद सिंह

आरोही का गीत

ऊँचे-ऊँचे इन हरे पहाड़ों में, कोई दूरागत हँसी गूँजती है!

यह हँसी जगह से नहीं, समय से उठती
आसङ्ग-भरी अनदेख घटाओं-सी,
जो बार-बार गूँजती रही जीवन में
अज्ञान घाटियों की वर्षाओं सी

मैं जब-जब इतनी दूर चला आता
अपने जीवन का मर्म लिये दृग में;
तब-तब अनजाने तरु की ओट लिये,
कोई परछाईं नाम पूछती है!

यह हँसी कि जिसकी रंग भरी छायाएँ
घाटी में मेघ, शिखर पर धूप बनी,
मेरी साँसों के साथ दौड़ती चलती
वह पवन-पंखिनी प्रिया अरूप बनी!

मैं जिधर-जिधर डालता एक चितवन,
समतल के सपने लिये प्ररोहों पर—
हाँ, उधर-उधर फूलों के झरनों में,
कोई सुधि की दीवार सूझती है!

पथ के साथी तो पथ पर ही छूटेंगे;
दो दिन की मंजिल मिली राह में ही,
बिजली मासूम पसीना बन आएगी
जीवन के मुख पर रोज, दाह में ही!

मैं जहाँ-जहाँ ढालों पर रुक जाता
थक कर पल भर सौरभ पी लेने को,
बस, वहीं-वहीं पहचाने दामन से
मेरा मुख मन्द. बयार पोंछती है!

राजेन्द्र प्रसाद सिंह

कपूरी दिये

तुम जहाँ भी रहो, ये कपूरी दिये
आरती में सभी ठाँव जलते रहें!

हाँ, विगत हो गया—एक यमुना-पुलिन,
नीम-तरु पर अमरबेल छाती रही,
और आगत हुआ एक बंजर जहाँ
नागफेनी बदन गुदगुदाती रही!

अब अनागत अगर हो सके मानसर,
गोमुखी बन खुलेंगे तुम्हारे अधर,
पग जहाँ भी धरो राह की धूल पर,
अँगुरियों में भरे फूल खिलते रहें!

अब न पूछो कहाँ दो दिशाएँ मिलीं,
दृष्टियों को मिला जब सहारा नहीं,
जो न अपना-पराया हुआ आज तक,
आइने ने किसी को पुकारा नहीं!

काँच फूटा करे, बिम्ब को मोह क्या?
बाँध पाये नहीं छवि किसी रूप की,
दर्पणीया बनो, तुम जहाँ झाँक लो,
वे सरोवर, समन्दर उगलते रहें!

रंग ने रेख को दे दिया प्राण-मन,
रेख से रंग को एक सीमा मिली,
क्या शहद ने दिया फूल के मर्म को?
फूल से तो शहद को मधुरिमा मिली!

आदमी मोल आँके, मगर किस लिए,—
जब समय रेत को स्वर्ण में ढालता;
तुम जिसे भी मिलो,—बस, उसे घेर कर
मेघ मकरन्द के ही मचलते रहें!

राजेन्द्र मिलन

कहानी, कविता, गीत, रिपोर्ताज, रेडियो रूपक के अतिरिक्त उपन्यासों के सृष्टा श्री राजेन्द्र मिलन का जन्म १६ नवम्बर सन् १६३५ ई० में हुआ। आपकी शिक्षा इण्टरमीजिएट, साहित्य-रत्न है। 'नवीन' हिन्दी मासिक-पत्रिका के अतिरिक्त 'बयार एक हल्की सी' तथा 'हिम शिखर बलिदान माँगता है', काव्य संकलन का सम्पादन किया है। वर्तमान में 'संतुलन', का सम्पादन कर रहे है। कई साहित्य संकलनों में भी आपकी रचनाओं को स्थान मिला है। प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में भी समय-समय पर आपकी रचनाएँ छपती रहती हैं। आजकल आपका उपन्यास 'नागफनी और धुआँ' धारावाहिक रूप से 'साहित्यालोक' मासिक में प्रकाशित हो रहा है।

२१७२, माईथान,
आगरा

राजेन्द्र मिलन

इन्द्रधनुषी याद

दीप - सी जलती किसी की याद
टीस - सी उठती हृदय में आज—
वर्षों बाद।

साधना का दिल न टूटे आज मैं मजबूर
स्वेत पंखी उड़ गए अब जिन्दगी से दूर
लहर-सी उठ-गिर मचलती याद।

प्यार का मौसम नयन से दूर मन के मीत
रास्ते इतने मुड़े कि भ्रम गई है प्रीत
विद्ध पंखी - सी सिसकती याद।

आस्था की आरती कितनी जलेगी और
प्रिय-प्रतीक्षा का चलेगा देर कितनी दौर
गीत - सी विह्वल लजीली याद।
पूर्णिमा - सी, इन्द्रधनुषी याद!
ओ! किसी की याद।

राजेन्द्र मिलन

मोम दीप सा गलता तन मन

वीराने के पंछी-सा मन सूना गगन तका करता है।
मन की चरखी पर सांसों का जीवन-सूत कता करता है।

मैं हूँ एक अबोध शिकारी मृगी चतुर है मेरी
बंधन से बचने को देती फिरती है चकफेरी
मेरे मन को कीला करती चीलें चक्कर खाकर
नागफनी जंगल उग आया चन्दन-सी काया पर
अनजाने ही पारस पत्थर मुझसे टकराया करता है।

ठण्डी आहों में घुल-मिल कर मैंने सुख दुख काटे
गीतों की वेदी पर मैंने मन के आँसू बाँटे
कजरारी आँखों मे मेरी अविरल एक व्यथा है
भटक गया हूँ मैं खुद ही से मेरी यही कथा है
मैं तो युग-युग का एकाकी मन में धूम्र घुटा करता है।

मुझको चाह नहीं जीवन की स्वागत मरण तुम्हारा
तूफानी झपटों में कैसे सम्भव मिलन हमारा
बोया परती-धरती पर ये मैंने साँसों का धन
मोम दीप-सा गलता तन मन, महज़ पिघलता यौवन
दीवाने से पंथी-सा मन सिर को विकल धुना करता है।
आवारा पगला प्रेमी मन शोलों पर दौड़ा करता है।

राजेन्द्र मिलन

लछमन-बन्धन स्वीकार नहीं होगा

मेरी साँसें सप्तस्वरों की संगम सलिला हैं
मुझको कोई एक गीत स्वीकार नहीं होगा।
नयन-तृषा कस्तूरी - कुन्दन - कञ्चन अपनाती
किसी एक मुक्ता से सम्भव प्यार नहीं होगा।

तन-तृष्णा के सम्मोहन की कथा पुरानी है
नहीं बुझी प्यासी मरुथल की अभी जवानी है
भले लांछना मिले प्रणय मुझको सम्मान न दे
मेरी तरुणाई की चाहत मृग सैलानी है
सोनजुही गुलमेंहदी केसर सबसे प्यार मुझे
बाँहों को लछमन - बंधन स्वीकार नहीं होगा।

गंगा-महिमा की सुनता आया हूँ लोक कथा
पापों को धोकर हर लेती ये सम्पूर्ण व्यथा
चिंता नहीं पतित भी होगी यदि मेरी क्षमता
त्रिवेणी के आँचल पर मुझको अन्तर-श्रद्धा
मेरी चाहें लहरों-सी उठ-गिर छूनीं जल-थल
एक अधर का चुम्बन मुझे स्वीकार नहीं होगा।

किसी एक पनिहारिन से पनघट का प्यार नहीं
किसी एक चरवाहिन से वन का व्यवहार नहीं
मेरे दर्शन की पुस्तक का खुला पृष्ठ कहता—
किसी एक ही घन से सागर का व्यापार नहीं
नहीं बदलती नियति आचरण उस दम तक अपना
मेरी महफिल को मंदिर स्वीकार नहीं होगा।

रामगोपाल परदेसी

कविता की दुनिया में, हिन्दी और उर्दू के संयुक्त खेतों की उपज परदेसी सचमुच परदेसी है। उसने किसी गाँव को अपना ठाँव स्वीकार नहीं किया, और इसीलिए द्विवेदी कालीन कवि 'चातक' के शब्दों में—'विश्व ने बड़ी मजबूरी से उसे परदेसी बनाया है, उसके यौवन का पहला स्वर शायद गीत ही है। गीत भी ऐसा कि हिमालय की पाषाणी सृष्टि में भी कुसुमो के दर्शन करादे, निसन्देह उसके पांव में एक अटूट गति है। दर्द उसके जीवन में है, जिसकी चिलक से वह मजबूर है कि उसका मन कही रम नहीं पाता साथ ही उसका दर्द भी उससे मजबूर है कि इस सदाचल के सीने पर गहरी जड़े जमाने के लिए अनचल धरती नहीं खोज पाता। इन दोनो की कशमकश ने परदेसी को नये स्वरो का गायक बनाया है। साधे पक्के राग उसकी वाणी में मुखरित है। और उसी का प्रतिबिम्ब, अपने व्यावहारिक जीवन में मस्ती और मिठास लिये वह आगे बढ़ रहा है, अपने अनजाने, अनछुए देश की ओर—उस देश की ओर जो मानव की बहुरंगी पीड़ा के गायक हर कवि का देश होता है।

कैलास (आगरा) —रावी

३५८, मण्डी सईदखाँ,
आगरा

रामगोपाल परदेसी

दुख की उमर बहुत थोड़ी है

भाई गये, गईं सब बहनें, असमय ही चल दिये पिताजी,
दुनियावालो तुम्हें बतादूँ, यह भी खबर बहुत थोड़ी है।

संगिन गई, गया वह शिशु भी
जो मेरी गोदी में खेला
यौवन में आते ही देखो
सात-पाँच के बीच अकेला

इतना दर्द, घुटन है इतनी, यह कब कहा मगर ईश्वर की,
दुनियावालो तुम्हें बतादूँ, मुझ पर नजर बहुत थोड़ी है।

मेरा सुख मर गया उसी दिन
जिस दिन पास जवानी आई
तरुणावस्था में ही मेरी
पीड़ा से होगई सगाई

लेकिन खुश हूँ सोच यही मैं अब कुन्दन-सा निखर रहा हूँ,
दुनियावालो तुम्हें बतादूँ, मुझमें कसर बहुत थोड़ी है।

कुछ भी सही कसम से मुझको
मज़ा बहुत आया खोने में
तुमने सुख पाया हँसने में
मैंने सुख पाया रोने में

जीवन की ज्वाला में जल कर मैं जिस निश्चय पर पहुँचा हूँ,
दुनियावालो तुम्हें बतादूँ, दुख की उमर बहुत थोड़ी है।

रामगोपाल परदेसी

कल ढलेगा रूप-धन

मैं सितारों के निकट पहुँचा
कि सहसा लौट आया।
ध्यान आया जब मुझे, कुछ लोग हैं जग में दुखी
इतने दुखी वे रात दिन जो बन रहे ज्वालामुखी
मैं बहारों के निकट पहुँचा
कि सहसा लौट आया।

ध्यान आया जब मुझे मँझधार मंजिल की निशानी
आँधियों से जो न खेले वह भला कैसी जवानी
मै किनारों के निकट पहुँचा
कि सहसा लौट आया।

ध्यान आया जब मुझे साहस सभी से है बड़ा
आदमी वह क्या, कठिनता से न जो हँसकर लड़ा
मैं सहारों के निकट पहुँचा
कि सहसा लौट आया।

ध्यान आया जब मुझे अनमोल है मन का रत्न
तन का रत्न तो है दिखावा कल ढलेगा रूप-धन
में नज़ारों के निकट पहुँचा
कि सहसा लौट आया।

ध्यान आया जब मुझे संसार कब किसका हुआ है
ध्यान आया मृत्यु पर अधिकार कब किसका हुआ है
मैं हजारों के निकट पहुँचा
कि सहसा लौट आया।

रामगोपाल परदेसी

तब होगा सन्तोष…

सब का यही विचार हो, सब की यही पुकार हो
नहीं किसी को खुशी यहाँ पर नहीं किसी का क्लेश हो
तब होगा संतोष मुझे जब ऐसा मेरा देश हो

सबकी मंजिल एक यहाँ पर सबका एक मुकाम हो
हर देहरी हो राधा रानी हर आँगन घनश्याम हो
पूरब से लेकर पश्चिम तक उत्तर से लेकर दक्खिन तक
हर कुटिया हो मथुरा काशी, वृन्दाबन हर ग्राम हो

सब को सब से प्यार हो, ऐसा यह संसार हो
खत्म न हो यह प्रेम कहानी दिन-दिन दूनी शेष हो
तब होगा सन्तोष मुझे जब ऐसा मेरा देश हो

नहीं किसी की हार यहाँ हो नहीं किसी की जीत हो
एक सभी हों भाई-भाई एक सभी का गीत हो
ऐसा कुछ परिवर्तन आए नगर डगर हर गाँव में
प्रेम धर्म हो यहाँ सभी का, सबसे अपनी प्रीति हो

हर बगिया गुलजार हो, नहीं कहीं पतझार हो
जाति-पाँति का भेद न सबकी इच्छा पूर्ण विशेष हो
तब होगा संतोष मुझे जब ऐसा मेरा देश हो

नये जागरण की बेला में नया-नया निर्माण हो
कहीं न हो वीरान यहाँ पर खंडहर, महल मकान हो
श्रम के हाथों नई जवानी घर-घर में फूले-फले
हर दिल में अरमान सभी के हर मुश्किल आसान हो

ऐसा देश स्वतन्त्र हो, अधर-अधर पर मन्त्र हो
हर घर राजकुमार यहाँ पर हर घर एक नरेश हो
तब होगा सन्तोष मुझे जब ऐसा मेरा देश हो

रामसेवक शर्मा

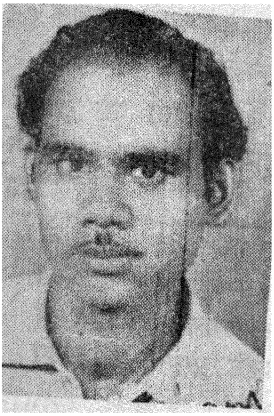

हिन्दी के सरल भोले-भाले तरुण कवि श्री रामसेवक शर्मा का जन्म १ अगस्त १९४० को ग्राम-बेरछा दतिया (म०प्र०) में हुआ। काव्य की ओर बचपन से ही रुचि रही। कविताएँ अनेक पत्रिकाओं मे बहुधा प्रकाशित होती रहती हैं। इधर आप निर्माण गीत काफी लिख रहे हैं। जिन्हें शासकीय पत्रों में विशेष स्थान मिला है।

रामसेवक को जीवन पथ पर संघर्ष बहुत मिले, जिनकी छाप गीतों में स्पष्ट है।

आज कल आप ग्वालियर के जियाजीराम कॉटन मिल्स में जीवकोपार्जन कर रहे हैं।

रानीपुरा
ग्वालियर (म० प्र०)

रामसेवक शर्मा

थिरक रही है फसल खेत में

श्रम हो अपलक खड़ा मेंड से देख रहा है झूम के।
थिरक रही है फसल खेत में पहिने धानी चूनरी ॥

लहराते यौवन को लेकर फसल खेत में डोलती।
साजन श्रम से कहने को कुछ रह-रह मुँह को खोलती ॥
चांदी की जब रजनी आके लोक धुनों को छेड़ती।
तब ले श्रम की फसल खेत में आँख मिचौनी खेलती ॥

लुका-छिपी के खेल-खेल में श्रम जब बाहें थामता।
चन्द्र-किरण तब आ छिगुरी में पहिना देती मूंदरी ॥

चंचल हवा पाँव में आकर पहिना देती पैजनी।
अलसी अपने फूलों से रंग देती अँगिया बैंजनी ॥
चाँद-सितारे दमकाते हैं आकर बेंदी भाल पर।
ओस कणों ने दिखलाया मुँह दौड़ी लाली गाल पर ॥

देख-देख कोयलिया काली कसती ताना डाल से।
साजन श्रम लेने आया है पहिने मैली गूदरी ॥

पीहर खेत छोड़ के आई अब पी के खलियान में।
बचपन की सखियों की यादें उठ-उठ आईं ध्यान में ॥
नई-नई सखियों से मिल जब थोड़ा सा आधार मिला।
नए चरण से नई डगर पर नए सृजन का पुष्प खिला ॥

लाखों जन के जीवन में भर कर नव नूतन चेतना।
नाच रही अब श्रम को लेकर साधों वाली गूजरी ॥

रामसेवक शर्मा

मेरा कवि अब गीत लिखेगा

जो गिरते की बाँह थामले किसी दुखी का दरद बाँट ले।
सच मानो मेरा कवि उस पर सांझ सकारे गीत लिखेगा ॥
मेरा कवि अब गीत लिखेगा।

हर घर के देहरी द्वारे पर स्वारथ करता है दरबानी।
एक नहीं अब अनगिन इसकी लिखी हुई हैं यहाँ कहानी ॥
सुख यदि भूले भी आता तो लाखों जन आकर बटवाते।
और कहीं जो दुःख आता तो वहीं देख सब आँख चुराते ॥
अपना सुख औरों हित दे दे, लाख मुसीबत हो हंस झेले।
हो उसकी यदि लाख हार पर मेरा कवि तो जीत कहेगा।
मेरा कवि अब गीत लिखेगा।

जिधर नजर जाती है मेरी भूख खड़ी है मुँह को खोले।
इसी समस्या को लेकर के प्राणों में पड रहे फफोले ॥
कैसे आने वाली पीढ़ी अपने दिन को काट सकेगी।
हृदय-हृदय की खाई कैसे चल करके ये पाट सकेगी ॥
जो पाहुन की शिला हटा दे, औ चलने को राह बना दे।
खुद राह भ्रष्ट हो जाये फिर भी मेरा कवि तो मीत कहेगा।
मेरा कवि अब गीत लिखेगा।

अपने विकसित तन को लेकर सिसक रही धरती की बेटी।
नहीं किसी को दोष दे रही विध से पाई किस्मत हेटी ॥
अपनी तृप्ति शांति करने को अब देवत्व बढ़ा आता है।
लेकिन जीवन भर का कोई निभा नहीं सकता नाता है ॥
जीवन भर का साथ निभा दे, जो विधना के अक्षर पढ़ ले।
ऐसे उद्धारक से हरदम मेरा कवि अब प्रीत करेगा ॥
मेरा कवि अब गीत लिखेगा।

रामसेवक शर्मा

उधर सजाये सेज !

उधर सजाये सेज किसी की बैठी हो।
इधर दरद बैठा है मेरे सिरहाने ॥

कितना पागल मन था अब ये जान सका
समझ रहा था केवल तुमको अपना ही।
किन्तु खुली जब आँख आज तो देखा ये
देख रहा था अब तक सारा सपना ही ॥
बैठ दरद ने सारी रात जगाया है।
मन का दरद उमर अधरों पर आया है ॥
उधर सभी को तुम तो अपनी लगती हो।
इधर नहीं अब कोई मुझको पहिचाने ॥

जीवन है सासों का मेला क्या जाने
सुबह लगा है और शाम को उठ जाये।
समय बंधनों के पिंजरे में पड़ करके
उड़ने वाला पंछी घुट-घुट मर जाये ॥
शहनाई धुन अब तो आज कसकती है।
मरघट जैसी मन में आग धधकती है ॥
उधर बैठ गाती हो तुम मंगल गाने।
इधर आज बैठा हूँ दुनिया लुटवाने ॥

प्राण ! प्राण के जीने का आधार गया
तुम बिन मेरा प्यार भरा संसार गया।
सूनापन मन में अब तो घर कर बैठा
प्राण ! तुम्हारे बिना मिलन त्यौहार गया ॥
शुष्क हुआ जाता अब मन का आंगन है।
बिन बरसे ही बीता जाता सावन है ॥
उधर चलीं तुम डोली चढ़के रंग-महल।
इधर चला मैं अर्थी अपनी सजवाने ॥

लक्ष्मीनारायण गोयल 'निराश'

स्वभाव से नितान्त सरल और भावुक कवि श्री 'निराश' की जन्म-तिथि १७ अक्टूबर १९३७ और जन्म-स्थान कराची (पाकिस्तान) है। शिक्षा बी० ए० तक है। १९५४ से ६० तक भूदान आन्दोलन व सर्वोदय आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया है तथा अनेक पद यात्राओं में सम्मिलित हुए हैं। परिवार में व्यापार का व्यवसाय होने के कारण, बम्बई, कलकत्ता, कानपुर आदि भारत के अनेक प्रमुख नगरों को देखने का अवसर मिला है। अवकाश न मिलने से हिन्दी में एम० ए० करने की इच्छा अपूर्ण ही है।

काव्य से रुचि प्रारम्भ से ही थी। गीत और कविताएँ सन् १९५४ से लिख रहे हैं। लेख भी यदा-कदा लिखते हैं। रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर छपती रहती हैं।

९५ ई, कांशी भवन
कमला नगर,
दिल्ली-६

लक्ष्मीनारायण गोयल 'निराश'

फिर मैं तेरे साथ चलूंगा

कितने गीत लिखे हैं लेकिन, सबको जगने भुला दिया है।
एक गीत बस अमर बना दूँ, फिर मैं तेरे साथ चलूँगा॥

कितनी बार वरा आँसू ने, मन की पीड़ा रही कुँआरी।
ऐसे है उदास हर आशा, जैसे हारा हुआ जुआरी॥

कितने आँसू लुटा चुका हूँ, कितना यौवन मिटा चुका हूँ।
एक स्वप्न साकार बना दूँ, फिर मैं तेरे साथ चलूँगा॥

करके जो सोलह सिङ्गार भी, सात भांवरें ले न सकी है।
जिसके हाथों की मेंहदी, रचने से पहले मुरझ गई है॥

नयन कि जो ना सूख सकेंगे, अधर कि जो मुसका न सकेंगे।
उनको जरा प्यार दिलवा दूँ, फिर मैं तेरे साथ चलूँगा॥

जो कि जन्म से मरा हुआ है, औ वैभव से डरा हुआ है।
सुख से है पहचान न जिसकी, सिर्फ दर्द में पला हुआ है॥

बचपन जो ममता से बंचित, यौवन जो सबने ठुकराया।
उसके आँसू को पुजवा दूँ, फिर मैं तेरे साथ चलूँगा॥

जो कि बेचकर अपने श्रम को, भूख पेट को मिटा न पाया।
सिर्फ अभावों के कारण ही, सूख गई कंचन की काया॥

फटा वसन भी मिला न जिसको, और ठिठुरता सर्दी से तन।
उसको वैभव संग ब्याह दूँ, फिर मैं तेरे साथ चलूँगा॥

सब की आँखों में हों खुशियाँ, सब के सब सुख दुख बट जाएं।
कोई भी मन रहे न भारी, सब आपस में हिल-मिल गाएं॥

सारा तम पूनम बन जाए, हर नव-सुबह झूमती आए।
जरा धरा को स्वर्ग बना दूँ, फिर मैं तेरे साथ चलूँगा॥

तुम हँसी उड़ा ना दो

मैं तुमको अपने दिल का दर्द सुना तो दूँ,
डर लगता है तुम इसकी हँसी उड़ा ना दो।
डर लगता है तुम इसकी हँसी उड़ा ना दो॥

मालूम मुझे, मन का मीत न मिल सकता,
प्रीत यहाँ रोए दस्तूर पुराना है;
लेकिन मन की पीड़ा की इस गीता को,
हर नव-पीढ़ी को फिर से दुहराना है;

मैं तुमको अपने दिल की लगी बता तो दूँ,
डर लगता है तुम इसकी हँसी उड़ा ना दो।
डर लगता है तुम इसकी हँसी उड़ा ना दो॥

लद जाती फूलों से जब डाली डाली,
आता है पतझार समझ यह जाता उपवन;
बौराए आमों पर जब कूके कोकिल,
याद किसी को कर व्याकुल हो जाता मन;

मैं तुमको अपने गीतों में अपना तो लूँ,
डर लगता है तुम इनको कहीं रुला ना दो।
डर लगता है तुम इनकी हँसी उड़ा ना दो॥

कितनी श्रद्धा से मन ने पूजा पत्थर;
कितने गाए गीत अर्चना के स्वर में;
कितने पुष्प चढ़ाए प्रतिमा के आगे,
कितने दीप जलाए जाकर मन्दिर में;

मैं तुमको अपने मन का सुमन चढ़ा तो दूँ,
डर लगता है तुम इसको कहीं ठुकरा ना दो।
डर लगता है तुम इसकी हँसी उड़ा ना दो॥

लक्ष्मीनारायण गोयल 'निराश'

तुमने अपनी माँग सजाली

सपने बेच दिये थे उस दिन, जब तुमने काजल आँजा था;
आज उमर मेरी गिरवो रख, तुमने अपनी माँग सजाली।
यह कैसी रिमझिम रिमझिम है
तन की आग दहकती जाती,
यह कैसा मधुमय मौसम है
मन की चाह बहकती जाती,
कल तक बनी हुई थी शोभा, कलिका जो सारे उपवन की,
विधवा कर डाली को तुमने, अपने जूड़े में गुँधवाली।
आँखों के सावन के आगे
विधि का सावन भी सकुचाता,
अन्तर की पीड़ा निहार कर
सूरज भी ठण्डा हो जाता,
कल तक जिस चन्दा को लखकर, अगणित लहरें थीं बलखाती,
आज ग्रहण की इस वेला में; सबने उससे आँख चुराली।
जिसने प्राण दे दिये व्रत-हित
वह चातक पागल कहलाया,
एक स्वाति पर दे न सका जो
बादल वह दानी कहलाया,
मुझे पता यह आज लगा है, तुम भी तो कितनी दानी हो,
बदनामी सब देकर मुझको, तुमने अपनी लाज बचाली।
यह तो बात नहीं नव कोई
मानव तो कब से रोता है,
ईश्वर वह ही कहलता पर
जो पाषाणी बन सोता है,
झूठे आश्वासन-दे देकर, पहले तो मन को बहकाया;
आज छोड़ एकाकी मुझको, तुमने सुखमय सेज सजा ली।

लाखनसिंह भदौरिया 'शैलेन्द्र'

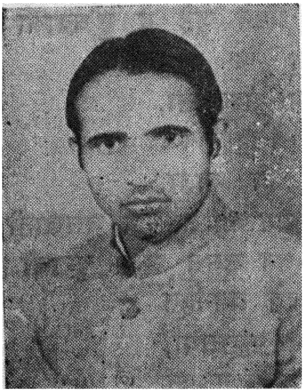

आपका जन्म ३ अगस्त सन् १९३८ को ग्राम बरौली, जिला इटावा (उ०प्र०) में हुआ। किशोरावस्था से ही जीवन डगर के अनेक संघर्षों में रहे। देखा जाय तो संघर्षों के माध्म से आपने बहुत कुछ सीखा पढ़ा है। आप सन्१९४६ से साहित्य क्षेत्र में अपनी प्रतिभा का परिचय दे रहे हैं। रचनाएँ अनेक पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती हैं। 'माटी और मुक्तक' आपका गीत-संग्रह भारती प्रकाशन मैनपुरी से प्रकाशित हुआ है। आजकल आप स्थानीय प्रेम पाठशाला में अध्यापक और क्षेत्रीय पक्षिक पत्रिका 'आस्था' के उत्साही व्यवस्थापक हैं।

भोजपुरा,
मैनपुरी (उ०प्र०)

लाखनसिंह भदौरिया 'शैलेन्द्र'

डूबता उतरा रहा है मन

रात ऐसी है, सितारे तक नहीं हैं।

ज्योति कोई और क्या देगा ?
यामिनी को भोर क्या देगा ?
पास में अपने सहारे तक नहीं हैं।
रात ऐसी है सितारे तक नहीं हैं॥

दूर तक सुनते नहीं हैं स्वन,
डूबता उतरा रहा है मन,
पास आश्वासन तुम्हारे तक नहीं हैं।
रात ऐसी है सितारे तक नहीं हैं॥

धार ऐसी में बहे हैं हम,
ले रहा जिसमें हिलोरें ग़म,
दूर तक दिखते किनारे तक नहीं हैं।
रात ऐसी है सितारे तक नहीं हैं॥

दर्द को बहला रहे फिर भी,
घाव को सहला रहे फिर भी,
पीर ने लोचन उघारे तक नहीं हैं।
रात ऐसी है सितारे तक नहीं हैं॥

लालनसिंह भदौरिया 'शैलेन्द्र'

यहाँ अकेलों का ही मेला

भरे-पुरे जग के भीतर भी, मुझे अकेलापन खलता है।

आई साँस अकेली आई, गई सांस भी गई अकेली,
आवागवन मिला राहों में, ठहरी कोई नहीं सहेली,

मेले से गलबाहें डाले, प्रतिपल सूनापन चलता है।
भरे-पुरे जग के भीतर भी मुझे अकेलापन खलता है!

सुख, दुख दोनों दिखे अकेले, मुझको कन-कन मिला अकेला,
रवि-शशि तक देखे एकाकी, यहाँ अकेलों का ही मेला,

किसको कौन मिल सका साथी, मिलने का संभ्रम छलता है?
भरे-पुरे जग के भीतर भी, मुझे अकेलापन खलता है।

आदि अभागा नहीं कह सका, कभी अन्त से अपनी गाथा,
पीड़ा सिसक-सिसक कर सोई, व्रीड़ा टेक न पायी माथा,

अन्तर में होली जलती है, आँगन में फागुन चलता है!
भरे-पुरे जग के भीतर भी मुझे अकेलापन खलता है!

कोलाहल को पिये जा रहा, इस जग का विराट सन्नाटा,
फूलों की पंखड़ी दुखी हैं, बिखर गया है काँटा-काँटा,

सागर में ज्वारों की हलचल, बन में दावानल जलता है!
भरे-पुरे जग के भीतर भी मुझे अकेलापन खलता है!

लाखनसिंह भदौरिया 'शैलेन्द्र'

दृग यमुना के तीर बन गये

पालग पीर बन गई पायल, स्वर मेरे मंजीर बन गये !

तुम आये बन कर वरदानी, मैंने की उर से अगवानी,
आकुलता अधरों पर थिरकी, मंत्र बन गई मेरी वाणी,
तुम छू कर भागे पलकों को, उघरे नयन अधीर बन गये !

उपनिषदों का मर्म छुपाये, मौन-मौन आये सकुचाये,
दिनमणि दीप्ति लिये आनन में, चितवन में दर्शन गहराये,
स्वर में हुई ऋचायें मुखरित, श्रुति-श्रोता गंभीर बन गये !

तुम ऐसे छलके आँखों से, गीत बरसने लगे सुधा के,
तुम मधुरूप नयन में उतरे, चित्र लगे फीके बसुधा के
मन के भाव मेघ से उमड़े, तुम सुर-धनु तस्वीर बन गये !

रह-रह कर पीड़ा अकुलानी, मैंने समझी मर्म कहानी,
बूँद-बूँद, मोती को संज्ञा, सहज पा गया दृग का पानी,
तुम से तनिक तरलता पाकर, दृग यमुना के तीर बन गये !
पागल पीर बन गई पायल, स्वर मेरे मंजीर बन गये !

'लाल'

✦✦✦✦✦✦✦

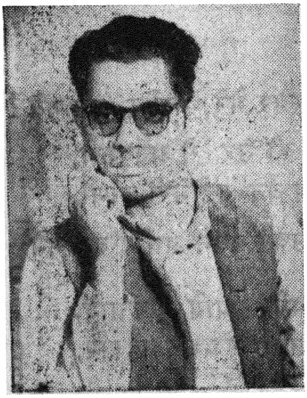

आपका पूरा नाम श्री गुलजारी लाल मिठिया गुप्त 'लाल' है। जन्म-तिथि ३ मार्च १९३० ई० तथा जन्म-स्थान आलमपुर, भिण्ड है। स्वाध्याय, सत्संग एवं भ्रमण में विशेष रुचि रखते हैं। आप विगत दस बारह वर्षों से निरंतर लिख रहे हैं। स्थानीय हिन्दी विकास समिति से मंत्री तथा अ०भा० बाल साहित्यकार संघ के सदस्य हैं। आपने बुन्देली लोक साहित्य का संकलन किया है। बुन्देली रचनाएँ आकाशवाणी केन्द्र भोपाल से समय-समय पर प्रसारित होती रहती हैं। राम जन्म (खण्ड-काव्य) तथा 'गोरी हारै जावै' (बुन्देली गीत-संग्रह) शीघ्र प्रकाश में आ रहे है।

मिठिया सदन
आलमपुर (म० प्र०)
वाया—झाँसी

'लाल'

ये स्मृतियां क्यों आती हैं

ऐ स्मृतियाँ क्यों आती हैं।

मैं इनको सदा भुलाता हूँ
पर आ यह लहरों सी चंचल
मन-शाँति-सिन्धु में क्षण भर को
कर जातीं भीषण सी हलचल
मैं जाता इनसे दूर किन्तु
यह क्यों समीप आ जाती हैं।

मैं इसे मानता सदा मधुरता
इनमें बहुत समानी है
बचपन क्रीणाओं की इनमें
मृदु सुखमय छिपी कहानी है
पर इससे क्या जो बीत चुकीं
वे मुझे न किंचित भाती हैं।

सच ही तो है यदि पा न सकूँ
वह सुख तो फिर कैसे भायें
अदृश्य बिन्दु में आज कही
हँसती मेरी असफलतायें
तो फिर क्यों व्यथित हृदय को वह
आकर पीड़ा पहुँचाती हैं।

इस आहत व्यथित हृदय में क्या
मृदु स्मृतियाँ पल सकती है
अमृत-सिंचित मधुवन-कलि क्या
कंटक वन में खिल सकती हैं
युग बदल गया यह बात अरे क्या
नहीं जान वह पाती हैं।

अरमान रहे मन के मन में

अरमान रहे मन के मन में

कितने ही चित्र बनाये थे
अभिलाषा की दीवारों पर
न्योछावर लेकिन सभी
निराश पावस की बौछारों पर

बन स्वप्न गईं वह आशायें
खोई थी जो अपने मन में
अरमान रहे मनके मनमें

थी वरदानो की चाह किन्तु
अभिशाप सदा आगे आया
युग-युग से सुख की साध रही
लेकिन सर्वत्र तिमिर पाया

प्रमाद कल्पना के विनिष्ट
हो चुके समय परिवर्तन में
अरमान रहे मनके मनमें

थी चाह निशापति किरणों की
पर रवि किरणो से हूँ तापित
उन सौरभमय मृदु पुष्पों के
उपवन की आशा करता नित

पर नियति नटी के नियम विवश
भटका करता कंटक-वन में
अरमान रहे मनके मनमें

देखता है राह किसकी

देखता है राह किसकी।

क्यों खड़ा गतिहीन होकर
दूर राही राह तेरी
चाहता साथी अगर तो
व्यर्थ है यह चाह तेरी

मात्र केवल कल्पना है
तू लगाये आश जिसकी।
देखता है राह किसकी॥

तीव्र गीति से तू बढ़ा जा
क्यों समय बहु मूल्य खोना
स्वप्न वत् आकांक्षाओं
के लिये क्यों व्यर्थ रोता

तू सुधा जिसको समझता
मीत वह है धार विष की।
देखता है राह किसकी॥

लौटता बढ़ता ठिठकता
और क्यों रुकता कभी है
शृङ्खलायें क्या विचारों
की अरे बाकी अभी है

ठहरता जिस प्रेरणा से
सच बना है चाह किसकी।
देखता है राह किसकी॥

अरमान रहे मन के मन में

अरमान रहे मन के मन में

कितने ही चित्र बनाये थे
अभिलाषा की दीवारों पर
न्यौछावर लेकिन सभी
निराश पावस की बौछारों पर

बन स्वप्न गईं वह आशायें
खोई थी जो अपने मन में
अरमान रहे मनके मनमें

थी वरदानों की चाह किन्तु
अभिशाप सदा आगे आया
युग-युग से सुख की साध रही
लेकिन सर्वत्र तिमिर पाया

प्रसाद कल्पना के विनिष्ट
हो चुके समय परिवर्तन में
अरमान रहे मनके मनमें

थी [illegible] किरणों की
पर रवि किरणों से हूँ तापित
उन सौरभमय मृदु पुष्पों के
उपवन की आशा करता नित

पर नियति नटी के नियम विवश
भटका करता कंटक-वन में
अरमान रहे मनके मनमें

लीलाधर पाण्डेय

आपका जन्म १ जौलाई सन् १९३८ को गोण्डा जिले के सरदारगढ़ नामक ग्राम मे एक साधरण कृषक परिवार में हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा गाँव में उत्तीर्ण कर, बलरामपुर से इण्टरमीडियेट की परिक्षा उत्तीर्ण की, किन्तु आगे आर्थिक कठनाइयों ने मार्ग अवरुद्ध कर दिया।

लिखने की प्रेरणा विद्यार्थी जीवन से प्राप्त हुई। प्रारम्भ में एक निबंध 'कल्याण' में प्रकाशित हुआ। तभी से लिखने की ओर विशेश झुकाव है। आपके द्वारा सम्पादित बालोपयोगी कविताओं का संकलन 'युगवाणी' से प्रकाशित हो चुका है।

डो० ए० वी० इण्टर कालेज,
बलरामपुर,
गोण्डा (उ०प्र०)

लीलाधर पाण्डेय

जीवन-पथ पर बढ़ते जाना

मेरु-ज्योति से आलोकित नभ अंक लगाते व्यवधानों को ।
सतत् प्रयास करो बढ़ने का लेकर टूटे अरमानों को ।।
कथनी करनी में क्या अन्तर भेद समझ कर इसे मिटाओ ।
आशामय जीवन-बगिया को श्रम-सीकर उत्फुल्ल बनाओ ।।
युग निर्माता स्वयं भाग्य बन युग-दृश्य को गढ़ते जाना !
जीवन-पथ पर बढ़ते जाना !!

पथ में कितने फूल मिलेंगे किन्तु शूल से बैर न करना ।
वरदानों की मृगतृष्णा में अभिशापों को गैर न करना ।।
चाँद तुम्हारा तब तक साथी जब तक अपने साथ पूर्णिमा ।
देता तभ हो साथ अमा में आती काम न प्रात अरुणिमा ।।
सुख-दुख दोनों में हँस-हँसकर संघर्षों से लड़ते जाना !
जीवन-पथ पर बढ़ते जाना !!

कहने वाले लोग बहुत हैं पर करने वाले विरले हैं ।
होती कर्मठता की क्षमता उनमें जो दुख बीच पले हैं ।।
कहीं नहीं पग नीचे रखना बढ़ने की हो चाह निरंतर ।
कहो न किंचित कर दिखलाओ सदा रहे यह मंत्र कंठ पर ।।
लेकर संबल आत्मशक्ति का लक्ष्य शिखर पर चढ़ते जाना !
जीवन-पथ पर बढ़ते जाना !!

लीलाधर पाण्डेय

मन पर अधिकार न होगा

तन को बाँध भले लो मेरे पर मन पर अधिकार न होगा !

मैं अपनी राहों का प्रेमी, उससे विवश नहीं चल सकता,
व्यवधानों में विपदाओं में, कभी न निज पथ से टल सकता।

मेरी काया कंचन जैसी, अपना रंग नहीं तज सकती,
जितना अधिक तपाओ इसको, उतनी ही यह रहे निखरती।

कैसे आऊँ राह तुम्हारी—सच्चा यह संसार न होगा !
तन को बाँध भले लो मेरे पर मन पर अधिकार न होगा !!

मिथ्या जगत भुलावे में पड़, कभी न मैं रुकने वाला हूँ,
गहरे सागर बीच आँधियां, में नौका खेने वाला हूँ।

मुझमें बल है, मुझमें साहस, मुझमें बढ़ने की क्षमता है,
फिर क्यों मेरी राह रोकते ? यह कैसी मनकी ममता है ?

कर दूँगा पथ भ्रष्ट इन्हें—यह स्वप्न कभी साकार न होगा !
तन को बाँध भले लो मेरे पर मन पर अधिकार न होगा !!

युग-युग का स्वच्छन्द-प्रिय कवि, अपने मन के गीत बनाता,
आँसू की लड़ियों से अपने, गीतों की हर पंक्ति सजाता।

कैसे कहूँ तुम्हारी बातें, वाणी कुंठित मन अकुलाये,
तुमको क्यों अफसोस अगर, कवि अपने दिल की बात सुनाये।

रुकने वाला बन्धन मुझको जीवन में स्वीकार न होगा !
मन को बाँध भले लो मेरे पर मन पर अधिकार न होगा !!

लीलाधर पाण्डेय

ऐसा गाओ गीत

ऐसा गाओ गीत धरा हँस पड़ गगन मुस्काये !

लगता ऐसा मानो धरती खोयी - खोयी सी,
ढूढ़ रही है निज सुषमा को सोयी - सोयी सी !
मन व्याकुल तन शिथिल निरखती जब निज आभा को,
ऐसा लगता मानो दुख से धोयी - धोयी सी ।

सुख का सुघर सलोना सूरज जगती को चमकाये,
ऐसा गाओ गीत धरा हँस पड़े गगन मुस्काये ।

खिल जायें कलियाँ मुरझाई मधुवन फिर से चमके,
शीतल बहे समीर नीड़ पर बैठी चिड़िया चहके ।
गुन-गुन गावें मधुप-वृन्द बैठे गुलाब डाली पर,
पूरब दिशि में शाँति सन्देशा लेकर दिनमणि गमके ।

अनुरंजित हो सारी वसुधा दुख रजनी मिट जाये,
ऐसा गाओ गीत धरा हँस पड़े गगन मुस्काये !

नये भाव औ नयी उमंगे नव जवान में आये,
नया जोश हो नयी तरंगे नया रक्त भर जाये ।
कर्मठता व्यापे जन-जन में लेकर बल सर्जन की,
नये रंग को नये ढंग की धरती फिर बस जाये ।

पूनम का चन्दा पृथ्वी पर शान्ति सुधा बरसाये,
ऐसा गाओ गीत धरा हँस पड़े गगन मुस्काये ।

वर्मा, उमाशंकर

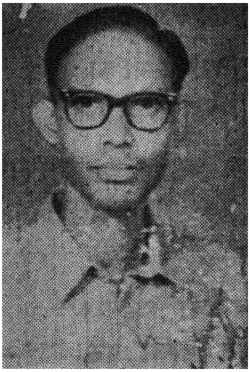

दो दर्जन से अधिक पुस्तकों के प्रणेता श्री उमाशंकर वर्मा का जन्म ५ जनवरी १९२४ को मुजफ्फरपुर बिहार में हुआ। पटना विश्वविद्यालय से हिन्दी में एम०ए० और बिहार विश्वविद्यालय से राजनीति विज्ञान में एम०ए० किया है। गद्य-पद्य लेखन, भ्रमण और पत्रकारिता की ओर आपका विशेष झुकाव है। 'आलोक' (द्वैमासिक) तथा 'विकास' (त्रैमासिक) के भूतपूर्व सम्पादक और साप्ताहिक 'आदर्श' दैनिक 'विश्व वन्धु' साप्ताहिक 'शिक्षासमाचार' के सह-सम्पादक रहे हैं। आठ कविता-संग्रह, तीन नाटक, बारह शिक्षा सम्बन्धी, चार मनोविज्ञान सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

शिक्षक प्रशिक्षण विद्यालय
पो० शिवहर, मुजफ्फरपुर
(बिहार)

साथी सब बिछुड़े

आज अकेला हूँ पथ पर मैं साथी सब बिछुड़े।

कब से मैं चल रहा किन्तु
है मंजिल दूर अभी;
नहीं जानता पहुँच सकूंगा
क्या मैं वहाँ कभी!

चलते-चलते तो पैरों में छाले हाय पड़े।

जीवन की बगिया में अब
मधुमास नहीं आता;
नहीं कल्पना-वृन्तों पर
पिक मस्ती का गाता;

मन खोया-खोया, पलकों पर मोती तरल जड़े!

चमक-चमक उठती मानस
में सुधियों की बिजली;
घिर आती नयनों के नभ
में सपनों की बदली;

प्राणों की रीती गागर को फिर से कौन भरे!

मुसकान सदा भरता हूँ

मै आँसू में मुसकान सदा भरता हूँ!

छलते हैं मेरे स्वप्न मुझे पग-पग पर,
लगता है जीवन का पथ कितना बीहड;
छाये रहते घन हैं नैराश्य-व्यथा के,
फिर भी मैं मस्ती में डूबा रहता हूँ!

आतीं कितनी आँधियाँ, कड़कती बिजली,
गर्जन करती अविराम तृषा की बदली;
मधुऋतु न कभी आती मेरे उपवन में,
मैं पतझर से ही खेल लिया करता हूँ!

डगमग डोला करती आस्था की तरणी,
कांपा करती निष्ठा की कोमल धरणी;
तूफान सदा चलते विश्वास-उदधि में,
लेकिन मैं कब पथ में किञ्चित् रुकता हूँ!

जलता रहता निशिदिन भीषण ज्वालानल,
दहता रहता निःस्वन प्राणों का शतदल;
पर झुकता है कब शीश दम्भ के सम्मुख,
काँटों पर हँस-हँस कर अविरत चलता हूँ।

प्रीत की प्यास से है तड़पती धरा !

कह रही कौन-सी आज गोपन-कथा
चाँद के कान में चाँदनी बावरी,
शुभ्रता की सुमोहक विभा देखकर
हो रही है प्रफुल्लित निशा-नागरी;
व्याप्त माया अलौकिक, मगर, है यहाँ,
धूप है रे कहीं और छाया कहीं,
काश ! बादल समझता विरह की जलन,
सद्य होता हृदय चातकी का हरा !
रीति कैसी अनोखी कुटिल विश्व की,
मिल न पाते यहाँ हैं कभी दो हृदय;
मुक्त निर्द्वन्द्व हो वासना खेलती,
पा रहा यन्त्रणा शुद्ध सात्विक प्रणय;
स्वच्छ जल की कहीं झर रही निर्झरी,
जा रहा कण्ठ सूखा पथिक का कहीं,
सिन्धु लहरा रहा नित्य होकर मगन,
कूल का घाव लेकिन कभी क्या भरा !
नृत्य करतीं कहीं बिजलियाँ अनगिनत,
झोंपड़ी में विलखता अकेला दिया;
हैं किसी के नयन झर रहे अनवरत,
तो किसी का खुशी से विकल है हिया;
है कहीं पर छिड़ी हर्ष की रागिनी,
तो कहीं पर व्यथा की घटा व्याप्त है;
रो रही है कली, हँस रहा है चमन
स्नेह पर स्वार्थ का आवरण है पड़ा !

बिमलेन्द्रकुमार 'शलभ'

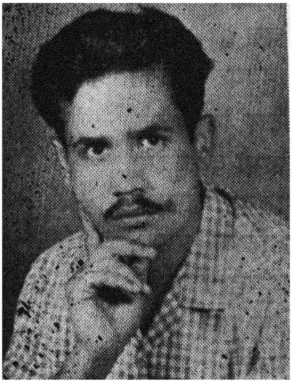

आपकी जन्म-तिथि २९ दिसम्बर १९३९ ई० और जन्म-स्थान ग्राम—तुरकहिया, जनपद, बस्ती (उ०प्र०) है। गीत—सृजन आप लगभग पाँच वर्षों से कर रहे हैं। लोकगीतों में विशेष रुचि है। गीत अनेक पत्र-पत्रिकाओं में छपते हैं। साहित्य-सृजन की प्रेरणा कानपुर नगर से प्राप्त हुई। प्रकाश में लाने का श्रेय कानपुर नगर के लोकप्रिय कवि श्री देवीप्रसाद 'राही' को है।

आजकल आप वरहज बाजार जनपद देवरिया में सहायक जूट विकास निरीक्षक के पद पर राजकीय सेवा का कार्य कर रहे हैं।

जूट इन्सपैक्टर,
बरहज बाजार,
देवरिया (उ०प्र०)

फरि हैं मटिया में सोनवाँ विहान

फुलरन बीचे घुँघुरू बाजैं बैलन के गल हो,
नाचै आज मगन मन खेतवा किसान हो रामा।

शीत उँजेरिया पिछले पहरा मातलि बहै बयरिया,
में ही हरियर चारा परसै नाँदै नाँद गुजरिया—

भावै दाना खरी अइस जेस पहिती नोनवाँ हो—
लागै जाड़ गुलाबी बरषा वोरन हो रामा॥

जुट-जुट कहि चुमकारि किसनँउ साजैं खेत गोसइयाँ—
हाथ डोरि काँधे हर, दुबियन मोती चूमे पइयाँ—
हरसै धरती हर लखि देवता केसर बरसै हो—
वो, हौ, नौ, ललकारैं भुइयाँ भगवान हो रामा॥

हरवा लिखै करम मन इन कै, पन्ना पलटै पाटा,
जेस करनी, वोस भरनी लागै बिन करनी सब घाटा

इक-इक बूँन पसीना बनि-बनि जाय नगीना हो—
फरि हैं मटिया में सोनवाँ बिहान हो रामा॥

गोरिया चिखुरैं खेत कगनऊ कनवन में रस परसैं,
घुरउ कै दिन बहुरा वोन्हउ गरगज मन पारस बरसैं

सरग चिरइया सात सुरन में मंगल गावैं हो—
फूले जियरा में फुनगी फुलान हो रामा॥

बिमलेन्द्रकुमार 'शलभ'

मेरी अमरइया पर बौराए बौर नहीं

मैं क्यों दुलराऊँ तेरे आँचल को,
जिसमें मेरे आँसू के खातिर तिल भर ठौर नहीं।
मैं क्यों बिसरा दूँ माटी की मधु ममता को
जिसके खातिर मेरे आँसू सा कोई और नहीं॥

मैंने सीखा है प्रति पल जल-जल कर जीना
हर प्यार जिन्दगी से जबरन मैंने छीना
मेरे नाले जड़ को भी जीवन देते हैं
मेरे छाले अनमोल रतन धन देते हैं
मेरे घर पीड़ाएँ पहुनाई करती हैं
मेरी साँसों से रोज सगाई करती हैं

फिर तेरे संग मैं कैसे गठबन्धन कर लूँ,
जब मेरे क्वारेपन का कोई तौर नहीं।
मैं क्यों दुलराऊँ तेरे आँचल को,
जिसमें मेरे आँसू के खातिर तिल भर ठौर नहीं॥

अनगिन घट फूटे नित नैनों के पनघट पर
विश्वास जले ठगिनी आशा के मरघट पर
धुँधली रेखाओं में धूएँ की चादर पर
अरमानों की नंगी लाशों को देखा है
एक प्रणय फूल की आशा में कितनों को ही
रेती के ऊपर खेती करते देखा है

मैं क्यों दो पल के मधु वैभव पर,
मदिर बनूँ मेरी अमरइया पर बौराये बौर नहीं।
मैं क्यों दुलराऊँ तेरे आँचल को
जिसमें मेरे आँसू के खातिर तिल भर ठौर नहीं॥

विमलेन्द्रकुमार 'शलभ'

डग मग डग पुरवइया

लहरि लहरि लहरिन कै धारि मन की केवरिया को खोलि रही-
डग मग डग पुरवइया डोलि रही ।।

छप-छप-छप छपकि छपकि लपकै मछरिया,
नदिया लुटावै मोती भरि भरि अँजुरिया,

तीरे तीरे थिरकै बहार अनबोली सी बोलिया बोलि रही-
नसि नसि में मधु मद रस घोल रही ।।

चीनियाँ की थरिया मैं भरिके मखनियाँ,
चकमक सी चमकि चमकि चमकै चँदनियाँ,

तरइन कै चुनरी पसारि माटी की बिटिया से खेलि रही-
माखन में मधु मद मिसिरी घोल रही ।।

पल-पल में गल गल ह्वै रेतिया कै छतिया,
झँझरी चुनरिया में सगरी बिसतिया,

निरखै नजरिया पसार-पसार उजेरी उँजेरिया उड़ेलि रही-
अनमोलिया को मोलिया मोलि रही ।।

निहुरि-निहुरि नाचि नदिया पे नैया,
दै, दै के ताल झूमैं बाँका खेवइया,

गावै मछेरिन मल्हार, निरही नजरिया टटोलि रही-
पीपल की पतिया सी डोलि रही ।
डग मग डग पुरवइया डोलि रही ।।

विश्वदेव शर्मा

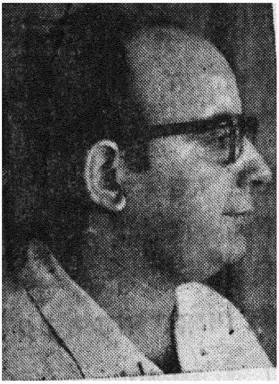

आपका जन्म २१ अक्टूबर सन् १६३१ ई० को इलाहाबाद में हुआ। मूल निवास उत्तर प्रदेश के जिला बिजनौर का एक गाँव छीबरी है। पिता श्री शिवकुमार जी राजस्थान में डिस्ट्रिक्ट व सेशंन जज रहे हैं। आरंभिक शिक्षा राजस्थान में और बाद में उत्तर प्रदेश और दिल्ली में हुई। हिन्दी और अंग्रेजी में एम०ए०, और एल०एल० बी० किया है तथा हिन्दी और पत्र-कारिता की अनेक परीक्षाएँ पास की है। रूसी भाषा का भी ज्ञान है। कहानी, कविता, लेख, रेडियो-साहित्य आदि सभी लिखते हैं, जिनमें से कुछ का देश की अन्य भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है। अनेक पुस्तकें और संग्रह प्रकाशित हुए हैं। आजकल भारत सरकार के परिवहन एवं संचार मंत्रालय में हिन्दी अफसर हैं।

४, आफिसर्स फ्लैटस,
गणेशलाइन, किशनगंज,
दिल्ली–६

विश्वदेव शर्मा

पीड़ा का मरहम मिल जाए

तुम मेरे गीतों को अपने स्वर का आंचल दे दो तो,
घायल सपनों को अपनी पीड़ा का मरहम मिल जाये।

मन का बनजारा जा विरमा
दूर रूप के गाँव में,
पीड़ा की बंध गयीं पायलें
किन्तु प्रीत के पाँव में!

बिना तुम्हारे जीवन-रजनी काली मावस बन बैठी,
अगर मिलो तो जनम-जनम को खोयी पूनम मिल जाये!

छलकी उमर गगरिया ऐसे
पनघट पर ही रीत ली,
और रोशनी से हर बाजी
अंधियारों ने जीत ली।

डगमग चलते हुए पथिक की अगर बाँह तुम थामो तो,
साधों की क्वारी मांगों को सेंदुर कुंकुम मिल जाये!

आँसू और मुस्कुराहट का
ताना - बाना पूरा कर,
बुनी किसी ने चादर झीनी
जिसको कहते हैं उमर।

तन के ओढ़े मैली होती, मिले मगर अनुराग तो,
इन्द्रधनुषिया रंगों वाली चूनर जैसी खिल जाये!

अमर ज्योति का गीत

ओ मेरी अनजान व्यथाओ !
ओ मेरी अन कही कथाओ ।
मेरे अधर द्वार पर बैठी—
करती रहो मौन रखवाली !

यह मेरी अन-ब्याही भाषा स्वर के गले न डाले माला !
यह गीतों का पागल साकी अपनी लुटा न दे मधुशाला !
यह प्राणों की घुटी वेदना, जो न कभी भी मुखर देखना,
मन का मंगल-घट पीड़ा के आसव से हो जाय न खाली !

ओ मेरी अनजान व्यथाओ !

मेरे अन्तर का कोलाहल, बाहर का उल्लास न सुन ले,
मेरे मन की व्यथा हँसी पर अपना झिलमिल जाल न बुन ले !
मैंने जगमग दीप तिराये, अंधियारे में जो मुसकाये,
नयनों की गंगा का जल लो ! डुबा न दे यह लौ मतवाली !

ओ मेरी अनजान व्यथाओ !

तन का यह माटी का दीपक ढालो ! अमर वेदना ढालो !
यह प्राणों की बाती लेकर जीवन की ज्वाला से बालो !
अंधियारे का आंचल दे दो ! जलते चलने का बल दे दो !
जिससे हर तम के आंगन में जगर मगर बिखरे उजियाली !

ओ मेरी अनजान व्यथाओ !
ओ मेरी अन कहो कथाओ !
मेरे अधर द्वार पर बैठो—
करती रहो मौन-रखवाली !

विश्वदेव शर्मा

कला के दीपक

हम समय की धार पर छोड़ दिये हैं बह रहे हैं डगमगाते, गोत खाते !

जल रहे हैं स्नेह जितना मिल चुका है,
चल रहे हैं वर्तिका जितनी मिली है,
हर लहर पलना झुलाती है अजाने—
हर झकोरे में मदिर लौ कुछ हिली है।

हम समय की धार पर छोड़ दिये हैं, बह रहे हैं डगमगाते, गोत खाते !

हम धरोहर तारकों की हैं धरा पर,
ज्योति के कुछ वंश-धर हम जी रहे हैं,
हम अमा के नील-पट में मृदु किरण से
कुछ चमकते से सितारे सी रहे हैं।

हम सुबह के स्वप्न आँखों में लिये हैं, हम मचलते चल रहे हैं गुनगुनाते !

सात रंगों में हमारी ही विभा है,
सात स्वर में व्यक्त झंकृति है हमारी,
सत्य को दी कल्पना की ज्योति हमने
मृत्तिका में मूर्तियाँ हमने उभारीं।

हम दिशा-कुसुमावली के क्षीण धागे, हम धरा को दूर अम्बर से मिलाते !

आदि के पहले कहीं से हम चले हैं,
अन्त के आगे हमारा लक्ष्य झिलमिल !
पंथ में ही मंजिलें हमको मिली हैं—
हर लहर में पा चुके हम एक साहिल !

हम दिशा देते-अंधेरों में सदा ही, हर निशा का प्रात से परिणय कराते !
हम समय की धार पर छोड़े दिये हैं, बह रहे हैं डग-मगाते गोत खाते !

विष्णुकुमार त्रिपाठी 'राकेश'

आपका जन्म १ जौलाई सन् १९३४ ई० को लखनऊ में हुआ। १९५४ में लखनऊ विश्व-विद्यालय से बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और तदुपरान्त अंग्रेजी साहित्य लेकर एम० ए० किया और फिर एल-एल० बी० की परीक्षा उत्तीर्ण की। पिताजी की इच्छा है कि आप वकालात करें, पर आपकी उसमें रुचि ही नहीं; अतः गत पाँच वर्षों से विद्यांत डिग्री कालेज के अंग्रेजी विभाग में प्राध्यापन कर रहे हैं। आपको साहित्यिक अभि-रुचि घर के बौद्धिक वातावरण से प्राप्त हुई। रचनाएँ देश के अनेक प्रमुख पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। गीत कविताओं के साथ आप निबन्ध कहानियाँ लिखते हैं। आकाशवाणी से भी आपकी रचनाएँ तथा संगीत रूपक प्रसारित होते रहते हैं।

८८, ऐशबाग
लखनऊ (उ० प्र०)

विष्णुकुमार त्रिपाठी 'राकेश'

चाँदी के देश में

सतरंगे सरगम पर रंग भरा गीत है !

झूम रही बसुधा पर किरणों की रागिनी,
चाँद लिये गोदी में थिरक रही यामिनी;
दिग्भ्रम-सा होता है चाँदी के देश में,
फसलों का कंचनगिरि सोने से वेश में;
फागुन के पाहुन की अजब नई रीत है !
सतरंगे सरगम पर रंगभरा गीत है !!

पूरब का बंजारा नयनों को खोलता,
कलियों की वंशी में सौरभ-स्वर घोलता;
आग लगी सुधि-वन में या सुमन पलाश के,
झोंके पर झोंके हैं आ रहे सुवास के;
मस्ती के मौसम का मधुरिम संगीत है !
सतरंगे सरगम पर रंग भरा गीत है !!

धरती के अधरों पर बोल नये साल के,
चलते शर कोमल से प्यार के गुलाल के;
नेह के अबीर का एक नया रंग है,
नयनों के सागर में प्रीति की उमंग है;
अनबोले भावों की भोली-सी जीत है !
सतरंगे सरगम पर रंग भरा गीत है !!

विष्णुकुमार त्रिपाठी 'राकेश'

अनबोले स्वर लिखता हूँ

पढ़ भी लो प्रस्ताव हमारा, सम्भव है अनुमोदन कर दो !

भावों की कोमल पाटी पर—
मैं अनबोले स्वर लिखता हूँ,
कह न सका जो सम्मुख तुम से—
वे गूँगे आखर लिखता हूँ;

कब तक भला स्वगत रह पाती—मेरी मौन दिगम्बर चाहें ;
इच्छाओं के प्रश्न चिह्न को—यदि सम्भव सम्बोधन कर दो !

तुतलाते बोलों में गाया,
जो कुछ भी जैसा बन पाया;
अलंकरण की झंकृति में, पर—
डूब गई गीतों की काया;

शब्द-सुमन की अर्थ-सुरभि में—हमने केवल तुमको पाया;
सुन लो मेरे प्रतिनिधि स्वर को, फिर चाहे संशोधन कर दो !

एक-एक मिल कर दो होते,
हम तुम दो से एक रह गये;
पर सरिता के कूलों जैसे—
मिल कर भी हम दूर बह गये;

अंकों का यह भ्रम बिसरा कर, अब तो अपने अंक लगा लो,
समझ-बूझ लो प्रश्न हमारा, सम्भव है ऋण को धन कर दो !

विष्णुकुमार त्रिपाठी 'राकेश'

ज्योति पर्व

स्नेह सजल धवल गात, ज्योति-पर्व आज रात।

दीप का हुआ प्रहार,
काँप गया अंधकार;
किरन-किरन में अंगार,
तिमिर हुआ क्षार-क्षार;
तम असित वसन उतार,
पा गया नयी बहार;
लगता सब स्वप्न सात, दीप-दीप में प्रभात!

किरन का चन्द्रहार,
अम्बर का हर सिंगार;
धरती से मान हार,
बिखर गया तार-तार;
ममता ने हो उदार,
गोद ले, दिया उभार,
युग-युग का पुण्य प्रात, ज्योति का तरल प्रपात!

दीपों की प्रखर धार,
काट रही तम अपार;
साधों का रूप सार,
करता जीवन-प्रसार,
दीप्त नयन से निहार,
गीला आँचल सम्हार;
आयी निशि सद्यस्नात, अंग-अंग ज्योति जात!

वेदनन्दन

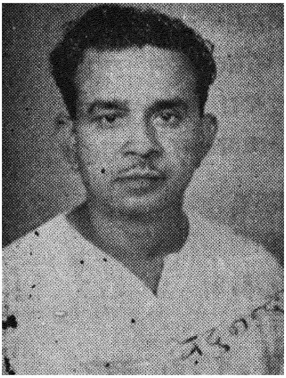

आपकी जन्म-तिथि दिसम्बर सन् १९२४ है। सन् १९३७ ई० से आप हिन्दी में गीत, गजलें और मुक्तक आदि लिख रहे हैं। यदा-कदा आप कहानियाँ और निबन्ध भी लिखते हैं रचनाएँ समय-समय पर पत्र-पत्रकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। वर्तमान में आप निराला परिषद पटना के उपाध्यक्ष हैं साथ ही बिहार सचिवालय में नदी घाटी योजना (कोशी शाखा) बिहार पटना में उच्चवर्गी-सहायक हैं तथा जिला पटना के अन्तर्गत ग्राम दतियाना के वासी हैं।

नदी घाटी योजना (कोशी-शाखा)
नया सचिवालय,
पटना—१

शेष—उत्तर

मत पूछ भावना की निर्दोष निगाहों में,
ममता के बादल घिर जायें तो क्या होगा ?
मत पूछ किसी के बेसुध हो जाने पर भी,
तेरी खुशियों की याद रहे तो क्या होगा ?

कलियों के सर्द मजारों में जब घुटन बढ़े,
मत पूछ सुरभि की काया का तब क्या होगा ?
मत पूछ हृदय के सूखे हुये कगारों को,
हौले से चूमें सरस धार तो क्या होगा ?

मत पूछ पिया के गाँव सुहागन किरणें जब,
सज चलें साँझ की डोली में तब क्या होगा ?
इन दर्दीले सुनसान दयारों में चुपके,
मत पूछ बुलाओ तुम मुझको तो क्या होगा ?

मत पूछ तुम्हारे पलकों की काजल रेखा,
मैं किरण अधर से परख सकूँ तो क्या होगा ?
मत पूछ हमारी तृष्णा के कौतुक गृह की,
माया तुझको जो भरमा दे तो क्या होगा ?

जब मौन तुम्हारा छाये स्वर के गाँवों पर,
मत पूछ गीत को आतुरता का क्या होगा ?
मत पूछ अगर तेरे मन का हारा पंछी,
मेरी करुणा की छांव गहे तो क्या होगा ?

मत पूछ अगर मिट्टी रो दे, गीले स्वर में,
तेरी बरसाती झंझा का तब क्या होगा ?
तो लौट जाय मेरे सपनों की देहली से,
मत पूछ तुम्हारी यादों का तब क्या होगा ?

अभी द्वार पर दर्द तस्कर खड़े हैं

खुली खिड़कियाँ हैं लगी ऊंघने जब,
कोई भेद कहता, कि मझरात है क्या ?
तेरी लोरियाँ हो गई पारदर्शी,
मुझे नींद आई नहीं बात है क्या ?

कपाटे खुले हैं अभी देहरी के,
न पूछो कि किसका अभी आसरा है ?
अभी द्वार पर दर्द तस्कर खडे हैं,
मुझे टेरते हैं—नयी घात है क्या ?

विपुल राजपथ से घिरी झोपड़ी सी,
ये तनहाइयाँ भी विकल हो गई हैं,
मेरे सब्र की हस्तरेखा न देखो,
तृषा संयमी है—मगर गात है क्या ?

अधर पर नये आचरण की व्यथा है,
नयन में नये इङ्गितों का गगन भी,
तेरी याद की चांदनी महमहाई,
शिरा रिस रहा–फिर मुलाकात है क्या ?

त्रिज्यायें विषम हो गई हैं व्यथा की,
शमा रो चुकी और सहमे सितारे,
मगर श्वास के वृन्त को शबनमी कर,
कोई पूछ जाता—कि जलजात है क्या ?

उमग छा गई बदलियाँ कामना की,
उफन फिर दुकूला गई याचना की,
लगी है पिकी पीर को चहचहाने,
प्रहर बह्नि चर्चित-ये बरसात है क्या ?

वैकनन्दन

मैं अकम्पित शून्य-सा निर्द्वन्द्व हूँ जब

दर्द के विष-नाग को बहला चुका हूँ,
प्रणय का सन्देश लेकर क्या करूँगा।

तार मेरी वीणा के बिखरे हुए है,
राग का अन्वेष लेकर क्या करूँगा।

मैं विजन विस्तार सा जड़ हो गया हूँ,
स्वप्न-मुकुलित देश लेकर क्या करूँगा।

कंठ पुलकन में अजन्मे शब्द गुम्फित,
विरह-रव-नव-वेष लेकर क्या करूँगा।

मैं तुम्हारे गाँव से गुजरा हुआ हूँ,
टेर का निर्देश लेकर क्या करूँगा।

जब शिरायें पी चुकीं मधु-चाँदनी को,
अधर पर यह क्लेश लेकर क्या करूँगा।

हर निमन्त्रण से अजाना बन गया हूँ,
इन्द्रधनु-उन्मेष लेकर क्या करूँगा।
मैं निशा भर, साँझ सा सुलगा रहा हूँ,
हिम किरन अवशेष लेकर क्या करूँगा।

मैं अकम्पित शून्य सा निर्द्वन्द हूँ जब,
प्रलय का परिवेश लेकर क्या करूँगा।

शकुन्तला सिरोठिया

आपका जन्म १९१५ ई० को कोटा (राजस्थान) में हुआ। सन् १९३४ में काशी विश्वविद्यालय से मैट्रिक पास किया। इसी समय आपका शुभ विवाह (म० प्र०) निवासी श्री भुवन भूषण सिरोठिया एम० ए०, एल-एल० बी, से हो गया। श्रीयुत सिरोठिया जी मजिस्ट्रेड हैं। सन् १९५४ में आपने हिन्दी में एम० ए० किया। इसके अतिरिक्त टीचर्स ट्रेनिंग का सार्टीफिकेट प्राप्त कर शिशु शिक्षण में डिप्लोमा भी लिया। कई बर्षो से आप प्रयाग में रहकर शिक्षण कार्य कर रही हैं। बड़ों से लेकर बच्चों तक के लिए अब तक आपकी १५ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।

१०९, बाई का बाग
इलाहबाद

शकुन्तला सिरोठिया

मैं तुम्हें पहिचान लूंगी

तुम छिपो चाहे जहाँ प्रिय, मैं तुम्हें पहिचान लूँगी।

कुमुदिनी के शशि बनो, अथवा
कमल के रवि बनो तुम;
तुम उषा के प्राणवल्लभ, या
निशा की छवि बनो तुम।

दिवस हो या रात्रि हो, पर मैं तुम्हें तो जान लूंगी।

तुम्हीं में अरमान मेरे,
हो तुम्हीं धन-मान मेरे,
हैं तुम्हारे ही लिए
दिन-रात क्रन्दित गान मेरे।

मैं तुम्हीं में घुल गई प्रिय, और क्या वरदान लूँगी।

शकुन्तला सिरोठिया

भू पर सुहाई वसन्ती बहार है

आमों को डार झुकी, लसियाने बौर हैं
सुमनों पर झूम रहे रस-लोभी भौंर हैं;
झूम-झूम लहर रही गंगा की धार है

धरती के आँचल में महक रहे फूल हैं,
रह-रह कर मीठी सी कसक रही भूल है,
अंतर में उमड़ रहा सुधियों का ज्वार है।

फूले हैं लाल-लाल सेमर यूँ चाव से
मन हो दुलार भरा अनुरागे भाव से,
वक्ष पर तरु के सुलतिका का भार है।

शशि पर कलंक है, ज्यों टेसू पर दाग हैं;
नारंगी रंग पर स्याही का फाग है,
हँस-हँस कर झाँक रही कलिका कचनार है।

घूँघट में मचल रहे चंचल दो नैन हैं,
चाँदी की रजनी में तारों के सैन हैं।
बिरहिन के मन पर कू, कोकिल की मार है।

शकुन्तला सिंदोठिया

रानी खेत

रानी खेत ! तुम्हारे दिन, ये रात तुम्हारी !
ये पर्वत, आकाश, मेघ, बरसात तुम्हारी !

मुझे बुलाते हाथ उठाकर देवदार हैं,
मेरे प्राण-प्राण चीड़ के प्रति साभार हैं,
खींच रहे ये नन्दा घाटी के आकर्षण,
करते अर्धरात्रि कंपित, विहगों के क्रन्दन—

मेरी शिरा-शिरा में स्पंदित,
धड़कन की आवाज तुम्हारी !
रानी खेत ! तुम्हारे दिन, ये रात तुम्हारी !!

मुझे स्मरण है जब पूनम का चन्दा चमका,
जब सुहाग का टीका तेरा दम-दम दमका,
प्रति पाषाण धरा का, रानी ! पिघल गया था
मधु कम्पन से रज का कण-कण सिहर गया था

नभ को रिझा-रिझा जाती थी
मन्द - मन्द मुस्कान तुम्हारी !
रानी खेत ! तुम्हारे दिन ये रात तुम्हारी !!

स्नेह निमन्त्रण पाकर उस दिन जाग गई थी,
सब विषाद-अनुभूति मूल से भाग गयी थी,
उठकर चूमा था गुलाब के अरुणिम मुखको,
आंचल में भर लाई कलि के स्वर्णिम सुखको

आज जा रही हृदय सौंप, कल
सुधि होगी मधु स्नात तुम्हारी !
रानी खेत ! तुम्हारे दिन ये रात तुम्हारी !!

शचीन्द्र भटनागर

आपकी जन्म-तिथि २८ सितम्बर सन् १९३६ ई० और जन्म-स्थान फैजाबाद (उ० प्र०) है। शिक्षा बी० ए० बी० टी०। सर्व प्रथम रचना सन् १९४७ में प्रकाशित हुई। एक मुक्तक-काव्य पूर्ण तथा खण्डकाव्य प्रगति के पथ पर हैं। निबन्ध भी लिखे हैं। रचनाएँ आगरा जयपुर, बीकानेर, मैनपुरी, दिल्ली आदि के पत्रों पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती हैं। आजकल आप 'नव-लोक टाइम्स' साप्ताहिक में काव्य-सम्पादक के रूप में निशुल्क कार्य कर रहे हैं।

१२१७ बाग मुजफ्फरखाँ,
आगरा

सांकल खुल जायेगी

तुम मन से मन का सम्भाषण होने दो,
यह घनीभूत वेदना स्वयं गल जाएगो।

यह व्यथा आंधरी बरसातों-सी बढ़ती,
घर लौटे प्रियतम की बातों-सी बढ़ती,
जल से देखी है सुधि की चपल किशोरी,
यह व्यथा कृष्णपक्षी रातों-सी बढ़ती,
तुम किरण-किरण का गठबन्धन होने दो,
यह निशा सुनहले सागर में घुल जाएगी।

सागर के कूलों की है साध अधूरी
परवशता में पलना कितनो मजबूरी।
बैसे तो बहुत निकटता आभासों में,
पर लहर-पुलिन में सचमुच कितनी दूरी।
तुम नयन-नयन का परिरम्भण होने दो,
दूरी की सांझ समर्पण बन ढल जाएगी।

मरु में सुमनों का खिलना सुगम बहुत है,
पाषाणों का भी हिलना सुगम बहुत है,
केवल [illegible] घूंघट है बाधा,
वरना मन से मन मिलना सुगम बहुत है,
तुम भावों को बिन अवगुन्ठन होने दो,
मन के द्वारों को हर सांकल खुल जाएगी।

फुहार में

स्निग्ध रहीं मन के इस वारिज की पाँखुरियाँ,
भीग गया अंग-अंग सावनी फुहार में।

माटी पर मेघों की छांह घिरी चाकर-सी,
व्योम के चन्दोवे से बूँद झरी झालर-सी,
पावसी झरोखों से झाँक रहीं सुन्दरियाँ,
मन में कुछ उमस घुटी बिन बरसे बादर-सी,
लाख-लाख चाहा पर रंगा नहीं परवश मन,
डूब चुका सावन जब सतरंगे सिंगार में।

वारिद के बोल बहे माटी के कागद पर,
बूँदों के झूले पर पुरवाई झूल गई,
विस्मृति की मणियों की धूल धुली अनजाने,
चेतनता मरुथल का सूना पथ भूल गई,
किरणों के सलमे की चादर वह स्वप्नमयी—
गन्ध की सहेली बन बह गई बयार में।

अम्बर के मण्डप में मेघों की भीड़ जुड़ी,
मन में अनपूरी इच्छाओं की परतों-सी,
पावस का मंच भरा बूँदों की रुनझुन से,
आस खिली हासमयी कलियों की पलकों-सी,
सुधियों की अलसाई हरिणी अब जाग गई,
मन की हरियाली के अनमने निखार में।

शचीन्द्र भटनागर

शरदीली सांझ

यह शरदीली सांझ री, रंग-रंगीली सांझ री,
गोधूली में सिमट-सिमट रह जाती है, अलसाती है,
लाज-लजीली सांझ री, यह शर्मीली सांझ री।

समय-बादरी से अँधियारा झरता है,
नीड़ों के मन का अनुराग ठिठुरता है,
शरद-शिथिल हो गए पंख हारे-हारे,
भाव-पक्षियों का हर रोम सिहरता है,

भीड़ जुड़ी हर ओर है, बिखरा-बिखरा शोर है,
डाल-पात कम्पित हिल गए हिंडोले-से, हिचकोले से—
झुकी हठीली सांझ री यह गर्वीली सांझ री।

घुटी-घुटी इच्छाओं से नभ घिरा-घिरा,
मन के द्वारे लगा विवशता का पहरा,
एक चाह है काँप रही सीमाओं में,
तिमिर आंधरा छाया है गहरा-गहरा,

जैसे रजनी मावसी, जैसे बदरी पावसी,
बार-बार जम जाती निठुर हिमानी-सी, अनजानी सी,
सघन सजीली सांझ री, यह भँवरीली सांझ री।

बिन सूरज सब दिन यूं ही ढल जाता है,
अंग-अंग अनचाहे ही गल जाता है,
पर ज्यों-ज्यों घिरता हिमरंगी दिशाओं में,
अधिक अधिक यह जियरा जल-जल जाता है,

सूखी-सूखी स्वांस है, तीखी-तीखी प्यास है,
तृप्ति न मिल पाती सियरे निश्वासों में, आभासों में,
यह अनगीली सांझ री, यह अरसीली सांझ री।

शरद

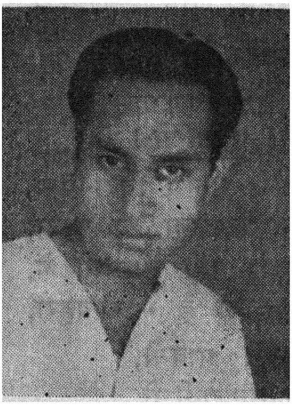

आजकल 'कला भारती झाँसी' के अध्यक्ष श्री शरद का जन्म लगभग २५ वर्ष पूर्व झाँसी के एक मध्यवर्गीय, सभ्य सुशीक्षित परिवार में हुआ। पूरा नाम शिवप्रशाद श्रीवास्तव है। शिक्षा बी० ए० तक प्राप्त की है। पिछले ८ बर्षों से निरंतर लिख रहे हैं। गीत, मुक्तक कविताएँ, कहानियाँ, लेख आदि सभी कुछ लिखा है। प्रथम काव्य-संग्रह 'तुम्हारी याद के बादल' शीघ्र प्रकाशित हो रहा है। रचनाएँ अनेक सम्मानित पत्रों में समय-समय पर छपती हैं। आकाशवाणी से भी प्रसारित होती हैं। संगीत और चित्र कला से भी प्रेम है।

३७२, गुदरो,
झाँसी (उ० प्र०)

कैसे पाऊँ द्वार तुम्हारा

नाम नहीं मालूम तुम्हारा, धाम नहीं मालूम तुम्हारा;
लम्बा सफर समय थोड़ा है, कैसे पाऊँ द्वारा तुम्हारा।

गीत लुट गए गर्द बची है
आज जिन्दगी की गठरी में,
बनजारों-सा भटक रहा हूँ
इस नगरी से उस नगरी में

पल-पल कर के उम्र ढल रही, प्राण थक रहे, देह गल रही,
सोच-सोच कर रो उठता हूँ कैसे करूँ सिगार तुम्हारा!

जाने क्या अपशकुन हुआ था
जिस दिन जन्मा था धरती पर,
कोई अपना हुआ न जग में,
रहा अकेला ही जीवन भर।

धर्म-कर्म लाखों अपनाए, लेकिन कोई काम न आए;
प्यासे रहे अधर सपनों के कभी न बरसा प्यार तुम्हारा!

केवल द्रष्टि-द्रष्टि का परिचय
बाकी सब आधार बिसारे,
किस को खोल हृदय दिखलाऊँ
चितवन के संकेत तुम्हारे।

मेरी आस लुटे-लुट जाए, मेरी सांस घुटे घुट जाए;
लेकिन मीत कभी ना टूटे मन का वन्दनवार तुम्हारा!
लम्बा सफर समय थोड़ा है, कैसे पाऊँ द्वार तुम्हारा!!

आखिर यह कैसी पूजा है

दिन पूजे, तारीखें पूजी,
पत्थर और शलाखें पूजीं;
अम्बर के तारे तक पूजे, धरती का इन्सान न पूजा।
आखिर यह कैसी पूजा है!

आंगन में अल्पना बनाई, मंगल घट से द्वार सजाए,
बाँधे वन्दनवार हजारों, भीतर बाहर दीप जलाए।
सुधि पूजो, सौगातें पूजीं,
डोली और बरातें पूजीं;
आँचल के बन्धन तो पूजे, दुल्हन का अरमान न पूजा।
आखिर यह कैसी पूजा है!

महलों की आरती उतारी, मीनारों पर चाँद उगाए,
गलियों में कुमकुम बिखराया, चौराहों पर गान लुटाए।
दर पूजे, दीवारें पूजीं,
वर्षा और बहारें पूजीं;
मरघट की मिट्टी तक पूजी, पर अपना उद्यान न पूजा।
आखिर यह कैसी पूजा है!

तह का हाहाकार न जाना, लहरों में ऐसे भरमाए,
केवल तन से रहे उलझते, मन का दर्पण देख न पाए।
पथ पूजा, सीमाएँ पूजीं,
मंजिल और दिशाएँ पूजीं,
मन्दिर की मूरत तो पूजी, खुद घर का भगवान पूजा।
आखिर यह कैसी पूजा है!
आखिर यह कैसी पूजा है!!

धीरे चलो कहार

पायल छनके, चूड़ी खनके,
घूँघट सरके, झूमर झनके;
धीरे चलो कहार! डगरिया नई-नई।

पीछे सुधियों की देहरी पर, बचपन बैठा आँख भिगोए,
आगे सपनों के आंगन में, यौवन बैठा साज संजोए।
कैसे भूलूँ खेल खिलौने,
कैसे छोड़ूँ नए बिछौने;
बन्धन बँधे हजार, उमरिया नई-नई।

छूट गए सावन के झूले, टूट गई ममता की लोरी,
परदेशी के साथ बंधाई, किस्मत ने जीवन की डोरी।
साथी साथ न आए अपने,
आँसू लाख बहाए सबने,
चली पराए द्वार, गुजरिया नई-नई।

कैसे कैसे फूल गुंथे हैं, रीति-रिवाजों के गजरे में,
कहकर व्याह बसाया जाता, इस पिंजरे से उस पिंजरे में।
नव रस भरी हृदय की गगरी,
रत्नों जड़ी उमर की चुनरी,
ठगियों की भरमार, नगरिया नई-नई।

कोई देखे धन की गठरी, कोई तन का रूप निहारे
कोई रीझे भोलेपन पर, कोई केवल दोष उघारे।
किस के मन की रीति निभाऊँ,
किह को मन की पीर दिखाऊँ,
नया-नया स्वरकार, बंसुरिया नई-नई।
धीरे चलो कहार! डगरिया नई-नई।

शरदेन्द्र शर्मा

आपका जन्म-स्थान मथुरा (उ० प्र०) है। दस वर्ष की आयु में ही पिता जी का स्वर्गवास हो जाने के कारण प्रारम्भिक जीवन संघर्षमयरहा। कि० का० मथुरा से बी० ए० तथा डी० ए० बी० कालेज कानपुर से दो बिषयों (हिन्दी तथा अंग्रेजी) में एम०-ए० किया है। प्रयाग वि० वि० में पी० एच० डी० के लिए कार्य किया। आर्थिक संकट और ग्राहस्थय जीवन की उलझनों के कारण इलाहबाद छोड़ देना पड़ा, किन्तु उस दिशा में प्रयास अभी जारी है। इस समय केन्द्रीय सचिवालय कार्यालय में हिन्दी सम्बन्धी एक विशिष्ट कार्य पर नियुक्त हैं।

कविताएँ, गीत कहानियाँ पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। आकाशवांणी से भी गीत बहुधा प्रसारित होते रहते हैं।

४८९/२०, गाँधी नगर,
दिल्ली–३१

शरदेन्द्र शर्मा

जिसके घर के दीप बुझे

जिसके घर के बुझे दीप अंधियारी हो
जिस आंगन की मुरझाई हर क्यारी हो
उस देहरी पर दीप जलाना चाहिए
उस आंगन मे प्राण जगाना चाहिए।

जिन अधरों की मुसकानों का नही पता
जिन आँखों मे मरुस्थली सा शून्यता
जिन पलकों तक सावन आया नही
जिसने जीभर गीत कभी गाया नही
उस घायल का दर्द बंटाना चाहिए
उस पर जीभर प्यार लुटाना चाहिए।

जिसके दिन पतझर रातें वीरान हैं
अम्बर दुश्मन और धरा शमशान है
सर पर बाँधे रहा कफन जो उम्र भर
जिसकी वृद्ध जिन्दगी मौत जवान है
उसकी जिन्दा मौत जगाना चाहिए
उसके मुर्दा स्वप्न बसाना चाहिए।

कहने को तो हर आदमी उदास है
अपना - अपना दर्द सभी के पास है
कौन जानता उस पतझर की पीर को
जिसकी बुझे हुए लोहे की प्यास है
गायन जिसके अधरों पर आया नहीं
उस मिट्टी में गीत उगाना चाहिए।

अरविन्दु शर्मा

मुझे मत घेरो तुम

मुझे मत घेरो तुम,
अभाव की तरह।

सांस के सागर को
मैं तैर जाऊँगा
नाव की तरह;
मुझे मत छेड़ो तुम,
वहाव की तरह।

रूप के बादल को
मैं पी जाऊँगा
शराब की तरह;
मुझे मत हेरो तुम
दुराव की तरह।

मोह के काजल को
मैं पौंछ डालूंगा
घाव की तरह;
मुझे मत टेरो तुम,
लगाव की तरह।

शरदेन्दु शर्मा

मेरा क्या इतिहास है

सुबह-सुबह ही हंसते-हंसते मिली मुझे हर साँस है
कोमल तन है, निर्मल मन है, अधरों पर मधुमास है।
मेर बचपन से डाली को अब भी कितना प्यार है।
तन पर लेकिन एक बाग के माली का अधिकार है।
साँसों की मधुगंध तितलियों के जीवन की चाह है,
रूप सलौना कभी शीश का, कभी गले का हार है।
मेरी आँखों मे जीवन के मदिरालय की प्यास है।
ऊपर साकी, नीचे प्याला, पीने पर विश्वास है।
तन काँटों का लेकिन मन तो मक्खन सा सुकुमार है।
धूप, हवा, माटी, पानी से मुझे मिला अधार है।
महाप्राण की परछाई सी नाच रही मेरी काया,
अम्बर मेरी नरम-नरम आहो का गंध गुबार है।
डर है मुझे पतझर में झुलसाने वाली मौत से,
नीचे धरती, ऊपर अम्बर, प्राणों में मधुमास है।
मुझे शीश पर चढ़ा अमरता मिलती है पाषाण को।
मुझे गले से लगा मिली है मानवता इन्सान को।
लेकिन पाँव तले यदि कुचले कोई मेरी लाश तो,
मेरी आहों से बल मिलता नवयुग के तूफान को।
जमी मौत की पपड़ी ओंठों पर काली तस्वीर सी,
लेकिन नए बीज धरती को देने की अभिलाष है।
जमी मौत रात का काजल, और जिन्दगी धाम है।
शूलों के साथी को जग ने दिया फूल सा नाम है।
मेरी आंखों में सपने सा तैर रहा संसार है,
मैं उठता तो सुबह जागती, मैं गिरता तो शाम है।
सभी यहाँ लिखने वाले, सभी यहाँ सुनने वाले,
किसे सुनाऊँ, किसे बताऊँ, मेरा क्या इतिहास है।

शान्तिस्वरूप 'कुसुम'

नई पीढ़ी के गीतकार श्री शान्ति-स्वरूप 'कुसुम' का जन्म १५ अक्टूबर सन् १९२४ ई० को मेरठ जिले के अन्तरगंत धनौरा सिलवर नगर नामक स्थान में एक उच्च मध्यमवर्गीय जैन परिवार मे हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा सहारनपुर मे ग्रहण की। साहित्य सृजन की रुचि विद्यार्थीकाल में ही उत्पन्न हो गई थी। कालीदास की अमरकृति 'रघुवंश' ने अपनी भावनाओं को एक नया मोड़ दिया। 'पग-ध्वनि' 'पग-चिन्ह' आदि कई गीत-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। रचनाएँ देश के अनेक साहित्यिक पत्रों मे समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। कवि सम्मेलनों में भी आप खूब जमते हैं। आजकल स्टेट बैंक, मुजफ्फरनगर में हैड खजांची के पद पर कार्य कर रहे हैं।

स्टेट बैंक आफ इण्डिया
किराना,
मुजफ्फरनगर

तुम्हें अपनाने को मन करता है

तुम नीलम-सी बरसात, तुम्हें अपनाने को मन करता है।
तुम आती हो पल दो पल को
मस्ती आ जाया करती है
साँसों में सिहरन होती है
आँखें शरमाया करती हैं
कैसे कहदूँ कुछ शेष नहीं इस पट परिवर्तन से पहले
तुम अरुण-अरुण जलजात, तुम्हें दुलराने को मन करता है।
है तेज कल्पनाओं की गति
प्रतिपल नूतन सा लगता है
आशाओं - अभिलाषाओं में
कुछ परिवर्तन-सा जगता है
गीतों की भाषा परिभाषा मैं क्या समझूँ मैं क्या जानूँ
तुम अस्फुट-स्वर अवदात, अधर पर लाने को मन करता है।
हरदम खुशियों का आलम-सा
बहती मधु भीगी पुरवाई
नादान प्रसूनों के मेले
कलियों की बजती शहनाई
यह बात नहीं मुसकानों से परिचय कम हो फिर भी सुन्दरि
तुम सपनों की सौगात, नयन उलझाने को मन करता है।
सुधियों की गाफिल लहरों पर
गुमराह जवानी गाती है
आगत के स्वर्णिम कूलों पर
चाहों के दीप जगाती है
यह मिलन-कहानी युग-युग को कैसे बिसरा दूँ याद करूँ
तुम सौ बातों की बात, सदा दुहराने को मन करता है।

वंशी तेरी गुञ्जन तेरा

वंशी तेरी गुँजन तेरा
स्वप्न गुनहलों का स्वामी तू श्यामा तेरी, नन्दन तेरा
वंशी तेरी गुञ्जन तेरा

यश में रत रवि चन्द्र नखत हैं
पथ मे अनत हिमालय नत हैं
तू स्वर गर्वीलों का राजा वीणा तेरी, वादन तेरा

भुज-बल तेरी अमर कहानी
रिपु ने रण में थाह न जानी
दशों दिशाओं का अधिपति तू सत्ता तेरी, शासन तेरा

व्योम विहारी घन कजरारा
गंग यमुन की निर्मल धारा
फूलों का कलियों का मालिक मधुऋतु तेरी, सावन तेरा

पूजा के मिश्रित स्वर प्यारे
घर-घर, मन्दिर, दर, गुरु द्वारे
वेद ऋचाओं का गायक तू प्रतिमा तेरी, अर्चन तेरा

गुञ्जित हैं जय गीत गगन पर
काहे आज उदासी मन पर
लक्ष्य हठीलों का नायक तू राहे तेरी, स्पन्दन तेरा
वंशी तेरी, गुञ्जन तेरा।

प्यार कम मिला

दया बहुत मिली, मगर दुलार कम मिला
दुलार कम मिला, मुझे कि प्यार कम मिला

यह नहीं कि राह में विहान कम मिले
यह नहीं कि चाह के वितान कम मिले
यह नहीं कि हो कहीं उछाह की कमी
सृजन बहुत मिले, मगर सिंगार कम मिला

यह नहीं मुझे न देखती कली कली
यह नहीं कि मौज से भरी न हर गली
यह नहीं कि हो कहीं उछाह की कमी
नयन बहुत मिले, मगर निखार कम मिला

यह नहीं कि विश्व का न मैं कभी हुआ
यह नहीं कि विश्व ने न दी मुझे दुआ
यह नहीं कि हो कहीं निभाव की कमी
सगे बहुत मिले, मगर सँवार कम मिला

यह नहीं कि दीप में छुपी जलन न हो
यह नहीं शलभ-शलभ लिये लगन न हो
यह नहीं कि हो कहीं प्रमाण की कमी
कि उर बहुत मिले मगर उभार कम मिला।

दया बहुत मिली, मगर दुलार कम मिला
दुलार कम मिला, मुझे कि प्यार कम मिला

शिवदत्त शर्मा

'ब्रजेन्द्र वैभव', 'यमुने' 'जय चम्बल आदि काव्य पुस्तकों के रचयिता श्री शिवदत्त शर्मा का जन्म ३० जनवरी सन् १६१८ ई० में भरतपुर राज्य के नगर नामक कस्बे में हुआ। पिता जी का देहान्त बालकाल में हो गया था। संवत १६६८में साहित्यरत्न, सन् १६४२ में आगरा वि०वि० से एम०ए० किया। इसके बाद एल०एल०बी० पास किया। विद्यार्थी काल में ही आप कविता सृजन करने लगे थे। ना० प्र० सभा आगरा के कार्यों में विशेष रुचि ली। अनेक बार कविता प्रतियोगिताओं में पुरस्कार प्राप्त किए। कवि होने के साथ आप अच्छे कहानीकार आलोचक भी हैं। रचनाएँ अनेक साहित्यिक पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। आजकल राजस्थान के प्रशासकीय विभाग में गंगानगर, बीकानेर मजिस्ट्रेट तथा विकास अधिकारी हैं।

जिला विकास अधिकारी,
श्रीगंगानगर

सूचना

लौटने की आज मुझको मिल रही हैं सूचनाएँ

तरु शिखा अंगुली हिलाती ओढ़ कर रक्ताभ अम्बर
आ रहे हैं मीन इङ्गित पर चले यह विहग सत्वर
जा रहा निज लोक को रवि है मनाती सब दिशाएँ
लौटने की आज मुझको मिल रही हैं सूचनाएँ

धूसरित ये धेनु जातीं छोड़ नव तृण अंकुरों को
जा रही जागृत प्रभा भी आज किन अन्तःपुरों को
आ रहा मेरा अँधेरा कौन-सी ले भावनाएँ
लौटने की आज मुझको मिल रही हैं सूचनाएँ

चीर कर सागर उदर को मैं प्रवासी यहाँ आया
एक अंगुली के इशारे रक्त का सागर बहाया
वे विरक्ता रह सकेंगी या विरक्ता उर व्यथाएँ
लौटने की आज मुझको मिल रही हैं सूचनाएँ

मजदूर

जगत के हैं जितने उल्लास, विभव के भव के हास विलास।
प्रणय के पुनरावृत प्रयास, गान गुंजित अप्सर्या वास॥
सभी से रहते हैं हम दूर, कि हम मजदूर कि हम मजदूर।
उच्च दुर्गों की दृढ़ दीवार, गगन चुम्बिनी मंजु मीनार।
ताज का गुम्बद गोलाकार, अजंता के विशाल से द्वार॥
हमारे शोणित से भरपूर, कि हम मजदूर कि हम मजदूर।
रो रहे हैं ये बच्चे दीन, हो रहे दुर्बल वपु अति क्षीण।
न खाने को रोटी हैं तीन, फटे से वस्त्र फटी कोपीन॥
कहाते हैं हम काहिल क्रूर, कि हम मजदूर कि हम मजदूर।
कहीं होते है अपच अजीर्ण, कहीं मारे भूखों के शीर्ण।
कहीं तन पर न वस्त्र है जीर्ण, कहीं द्रोपदि अम्बर अवतीर्ण॥
कहाँ का है हा यह दस्तूर, कि हम मजदूर कि हम मजदूर।
हमीं हैं वायुयान के प्राण, हमीं परित्राण हमीं कल्याण।
बनाते हम प्राणादक प्राण, हमी से हैं जीवित प्रियमान॥
हमीं जग की संजीवन मूर, कि हम मजदूर कि हम मजदूर॥
हमारे यहाँ सूखते प्राण, बनाते वे हैं अपना त्राण।
हमीं करते हैं नव निर्माण, कि वे बनते हैं ज्ञान निधान॥
विश्व के वैज्ञानिक मशहूर; कि हम मजदूर कि हम मजदूर।
वहाँ हाला के चलते जाम, बौतलों की छलछल अविराम,
रहे हम यहाँ कलेजा थाम, कि रटते हैं रोटी का नाम॥
वहाँ वे मदिरा में मदचूर, कि हम मजदूर कि हम मजदूर।
हमीं से रोशन उनका नूर, हमीं से वे हैं बने हजूर।
हमीं से उनको हुआ गरूर, हमें तो सब कुछ है मंजूर॥
हमीं हैं सभी तरह मजबूर, कि हम मजदूर कि हम मजदूर।

शिवदत्त शर्मा

कौन ?

जा रहा यह कौन ? जीर्ण वपु, परिधान जर्जर
संग साथिन चिर क्षुधा है
मिल गया जो कुछ सुधा है
पात्र भी जर्जर हृदय सा उसे कोई क्यों सके भर
जीर्ण वपु, परिधान जर्जर

रवि करों से है जगाता
तभी उसमें प्राण आता
और दे उठाता जगत को मंजुमुक्ता नयन भर-भर
जीर्ण वपु, परिधान जर्जर

कभी यह उन्नत हृदय था
है पराजय, पर विजय था
जो घिसटता आरहा इस दैन्य के द्रुत ताल लय पर
जीर्ण वपु, परिधान जर्जर

मार्ग का वासी विचारा
चार डग चल हाय हारा
घर कहाँ इसका जगत में ? है कहाँ बोलो नहीं घर ?
जीर्ण वपु, परिधान जर्जर

आज यह झोली पसारे
है खड़ा तरु के सहारे
दो इसे कुछ करे जिस पर दो क्षणों को प्राण निर्भर
जीर्ण वपु, परिधान जर्जर,

शिवहरी 'अनजान'

'इण्टर नेशनल कलचरल एसोसिएशन के उपप्रधान श्री शिवहरी 'अनजान' का जन्म १५ दिसम्बर सन् १९३८ ई० को बरेली (उ० प्र०) में हुआ। बचपन में ही आपकेपिता का स्वर्गवास हो गया। फलतः अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। साहित्य में रुचि और अध्ययन के कारण आपने कठिनाइयों की तरफ ध्यान नहीं दिया। कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में बहुधा प्रकाशित होती रहती हैं। आपके गीतों पर वेदना की छाप है

प्रारम्भ में आपने 'अन्तराष्ट्रीय' साहित्य सदन' संचालक पद पर भी कार्य किया है।

५४७, साहूकारा,
बरेली (उ०प्र०)

शिवहरी 'अनजान'

साथी छेड़-छेड़ कर तुमने

साथी छेड़-छेड़ कर तुमने, मेरे घाव हरे कर डाले ।।

सोचा समझा और न जाना,
किसको पीर कहा करते हैं।
अब तक तुम अनभिक्ष रहे हो,
कैसे दरद सहा करते हैं।
जो भी कहा उसी को माना, दरद दिये वह भी सब पाले।
साथी छेड़-छेड़ कर तुमने, मेरे घाव हरे कर डाले ।।

पल-पल राह देखते ही बस,
सारा ज.वन कट जायेगा।
चाह भटकता रह जायेगी,
किन्तु न मन धीरज पायेगा।
कितने और दिवस बाकी हैं, मन मन्दिर में मुझे बसाले।
साथी छेड़-छेड़ कर तुमने, मेरे घाव हरे कर डाले ।।

मेरे जीवन का यह साधन,
अर्पित है तेरे चरणों पर।
शीश लगा लो या ठुकरादो,
अन्तर से या पास बुला कर।
श्वांस एक या दो बाकी हैं, अन्तिम क्षण में तो अपनाले।
साथी छेड़-छेड़ कर तुमने, मेरे घाव हरे कर डाले ।।

शिवहरी 'अनजान'

मेरी आशा कलक रही है

प्राण तुम्हारी सुधि की छाया, अन्तस पट पर झलक रही है ॥

लगता है मुझको जैसे तुम,
निर्जन वन में घूम रही हो।
श्यामल कुन्तल खुले हुये हैं,
मस्त पवन सी झूम रही हो।
सारी अल्हड़ता यौवन की, अंग-अंग से छलक रही है।
प्राण तुम्हारी सुधि की छाया, अन्तस पट पर झलक रही है ॥

सारी कमसिन सुधियाँ मुझको,
बार-बार झकझोर रहीं हैं।
अन्तस की पीड़ायें मेरी,
जनम-जनम की चार रही हैं।
बंधन बँधी पोर नयनों से आँसू बन-बन ढलक रही है।
प्राण तुम्हारी सुधि की छाया, अन्तस पट पर झलक रही है ॥

पथ पर लोक लाज के काँटे,
दिन पर दिन उगते जाते हैं।
पगभर भी चलना दुर्लभ है,
अनगिन नियम और नाते हैं।
ना जाने दर्शन को कब के मेरी, आशा कलक रही है।
प्राण तुम्हारी सुधि की छाया, अन्तस पट पर झलक रही है ॥

शिवहरी 'अनजान'

बचपन को निर्जन में लूटा

लाख बार भ्रमरों ने, चुम्बन ले कलियों का,
भोला सा यौवन; इस मधुवन में लूटा है।

कितने ही वासंती आँचल उद्यानों में,
झूमें हैं प्रेयसि 'औ' प्रियतम की बाहों में।
अन व्याही प्रतिमायें, मन चाहीं साधों में,
डूबी थी यौवन की, नई-नई राहों में।

जब भी जो चाहे थे, गीत गुनगुनाये हैं,
बांहों के बंधन में क्रन्दन को लूटा है।

सावन की हरियाली, मेघों में मँडराना,
सुमनों की वृन्तों पर झुक-झुक के इठलाना।
कैसा था यौवन वह कैसी थी चंचलता,
सुधियों की चूनर का, निर्जन में लहराना।

लाख बार देखी है, जग की यह रीत-रस्म,
फिर भी इस बचपन को, निर्जन में लूटा है।

शैवाल सत्यार्थी

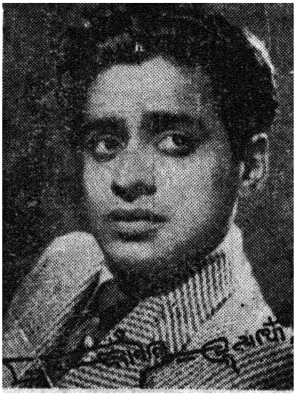

लोकप्रिय जज श्री कन्हैयालालजी के कनिष्ट पुत्र श्री शैवाल सत्यार्थी का जन्म १५ सितम्बर १९३१ को भिण्ड मध्य प्रदेश के ऐतिहासिक दुर्ग में हुआ। किशोरावस्था से ही आपकी साहित्य की ओर विशेष अभिरुचि रही और कहानी, कविता, उपन्यास निबन्ध, आलोचना तथ 'इन्टरव्यू' आदि साहित्य की विविध विधाओं के क्षेत्र में कार्य किया। आपके बहुचर्चित कथा-संग्रह 'और पहिये घूम रहे थे' पर पुरस्कार देकर आपको उत्तर प्रदेश सरकार ने सम्मानित किया है।

'सुषमांजली' (गीत और कविताएँ) 'इण्टरव्यूभारती' (हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं के' प्रमुख लेखकों से रोचक वार्ताएँ) 'एक हम' हजार गम' (लघु-उपन्यास) पुस्तकें आपकी लग-भग तैयार हैं, जो शीघ्र मार्केट में आ रही हैं।

ज्ञान मन्दिर,
पाटनकर बाजार,
लश्कर, (म०प्र०)

शैवाल सत्यार्थी

मंजिल तक

यह कदम उठे, वह कदम उठे
हर कदम बढ़ाएँ मंजिल तक!
यह पौध लगे, वह पौध बढ़े
हो जाएँ छाएँ मंजिल तक!

चट्टाने आएँ, दें धोखे
दुर्भाग्य भले राहें रोके
ताकत कदमों में चलने की
फिर क्या मौका, या बे मौके?
उम्मीद उठें, उम्मीद बढ़ें
उम्मीदें जाएँ मंजिल तक!

यह धरती, अपनी धरती है
दुख-दर्द हमारे हरती है
इसकी खिदमत से क्या न मिला?
सोना-चाँदी यह भरती है!
यह हाथ उठे, वह हाथ उठे
हम हाथ मिलाएँ मंजिल तक!

सब दुनिया दोस्त हमारी है,
हर कली कली फुलवारी है!
क्या बात बड़े या छोटे की?
हर कोई मूरत प्यारी है!
इनको सिजदा, उनको सिजदा
मेरी दरगाहें मंजिल तक!

यह कदम उठे, वह कदम उठे—
हम कदम बढ़ाएँ मंजिल तक!

डगर और विश्वास

चल-चल बीती उमर-डगरिया !
पर न मिला हमसफर संवरिया !

हर निगाह पर आँख लगाई,
हर नदिया को प्यास दिखाई,
हाथ जोड़कर सबके सम्मुख—
पहुँचा, लेकिन प्रीति न पाई !

छलक-छलक रीती गागरिया !
ढुलक-ढुलक मिट गई नजरिया !

प्यासों ने ऐसा भटकाया,
रास्ता कोई नजर न आया,
जहाँ साँस रुक जाती देखी—
मैंने उसे पड़ाव बनाया !

पल-पल बाजे मौत-बँसुरिया !
जल-जल होती राख अटरिया !

मगर अभी विश्वास अमर है,
मुझको चलना और डगर है,
शायद फिर मिलना हो जाए—
लगन सत्य है, साध प्रखर है !

चुभने दो जो चुभें कँकरिया !
पा ही लूंगा कभी संवरिया !

शैवाल सत्यार्थी

सपने

नीला-नीला आकाश है,
रंगीन सपने हैं,
तुम हो,
हम हैं—
और अमर विश्वास है!

फूला-फूला पलाश है,
सपने अपने हैं
तुम भ,
हम भी—
और अधूरी प्यास है!

भीगी-भीगी श्वास है,
सपने, सपने हैं,
तुम नहीं,
हम नहीं—
और रीता उल्लास है!

श्यामनारायण वर्मा

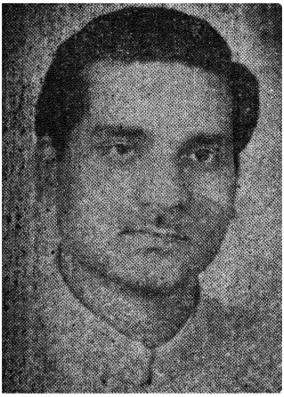

कवि, लेखक एवं पत्रकार श्री श्यामनारायण वर्मा का जन्म १० दिसम्बर सन् १९३५ ई० को ग्राम कोरियाँ, जि० कानपुर (उ०प्र०) में हुआ। शिक्षा एम० ए० है। आजकल उत्तर-प्रदेश खादी तथा ग्रामोद्योग बोर्ड कानपुर द्वारा प्रकाशित 'ग्रामोद्योग' मासिक पत्र का सम्पादन कार्य कर रहे हैं।

साहित्यिक व्यक्तित्व, साधनानिरत और स्वार्थहीन स्वभाव है। जीवन के प्रति अगाध निष्ठा से पूर्ण, मिलनसार, भद्र और स्वाभिमान से सम्पन्न हैं। गीतों में सरलता, नवीनता और मौलिकता के प्रति सतत सचेष्ट रहते हैं।

११३/८०, स्वरूप नगर,
कानपुर (उ० प्र०)

मनचले बादल

इन्द्रधनुषी पाग बांधे, गुनगुनाते आ रहे
हैं सांवले बादल।

कौन-सा पीकर नशा ये झूमते हैं।
हम हसीनों की हथेली चूमते हैं।
ये हँसी, छीटाकशी, ये कहकहे,
कौन जाने किस हवा में घूमते हैं।

किसलिए बरसात में लो, भीगते फिर भागते
हैं बावले बादल।

बड़े घर के हैं कि हिम्मत के बड़े हैं।
मुद्दतों से हाथ धो पीछे पड़े हैं।
चाँद-तारों के भरे बाजार मैं,
चाँदनी की राह को रोके खड़े हैं।

बिजलियों के अंग थर-थर कांपते जब डांटते
हैं दिलजले बादल।

आप भी कितना इन्हें धिक्कारते हैं।
ये हठीले भी भला कब हारते हैं।
देख लो बौछार पर बौछार करते,
बूँदवाली कंकड़ी भी मारते हैं।

रूपवाली रोशनी को रास्ते में छेड़ते
हैं मनचले बादल।

आए बिना बुलाए

बहुत देर मंडराये बादल बरस गए।
उमड़-उमड़ कर छाए बादल बरस गए।

तृषा-विकल अधरों का सुन क्रन्दन,
पिघल पड़ा उनका पाहन सा मन,
एक रोज अपनी निर्ममता पर,
पानी हो जाता है मानी मन।

पहले तो गरजे बिना गरज वाले,
फिर शरमाए, घबराए, बादल बरस गए।

रात-रात तारों संग जागा था,
मरुथल के पीछे भी भागा था,
एक मधुरतम प्यास मारने को,
हर विषधर से विष तक मांगा था।

विष बुझी बिजलियाँ तन-मन में बांधे,
रुके, झुके, मुस्काए बादल बरस गए।

गागर से सागर तक धाया हूँ,
ज्वालाओं में भी जी आया हूँ,
बाँझ रेत के जलते अधरों पर,
ये तपते हुए अधर धर आया हूँ।

एक रोज जब थक कर बैठ गया,
आए बिना बुलाए, बादल बरस गए।

श्यामनारायण वर्मा

अनुरोध

यदि अन्धकार में अपना दीप जला न सको,
तो कम से कम औरों के दिये बुझाओ मत।

आंधियाँ अंधेरे का जब आंचल थामे हों,
आने वाली हर हवा अदावत रखती हो।
बिजलियाँ वज्र सी गिर कर घायल करती हो,
जब तैस भरी हर लहर बगावत करती हो,

तब अपनी नैया लेकर तट तक ला न सको,
तो कम से कम औरों की नाव डुबाओ मत।

संशय के साये और अहम् के आंगन में
जब भी नफरत की नागिन फन फैलाती हैं।
उस समय न कोई भी विष से बच पाता है,
सच कहता हूँ अपने तक को खा जाती है।

यदि जग-उपवन में प्रेम-प्रसून खिला न सको,
तो कम-से कम कटुता के वृक्ष उगाओ मत।

आओ, हिल-मिल कर सब मंजिल तक साथ चलें
अन्यथा समय के हाथों सब लुट जायेंगे,
आओ, धरती का हर दीपक सूरज करदें,
अन्यथा अंधेरे बीच प्राण घुट जायेंगे।

यदि क्षितिज अंक में नया विहान उठा न सको,
तो कम से कम धरती पर तम फैलाओ मत।

श्यामबिहारीसिंह 'आलोक'

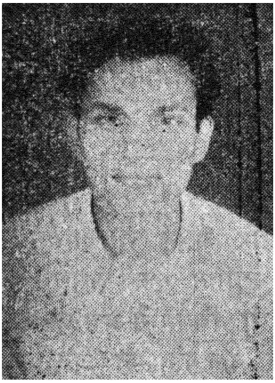

श्री श्यामबिहारीसिंह 'आलोक' का जन्म १६ अगस्त सन् १९३९ ई० को एकडंगा, सकसोहरा, पटना में हुआ। काव्य से रुचि बचपन से ही रही। आपकी प्रथम रचना 'रेखा' मासिक में जून १९५९ में प्रकाशित हुई। तदुपरान्त कई पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित हुई हैं।

सहायक शिक्षक
ए० एन० एस० विद्यालय
बाढ़, पटना

श्यामबिहारीसिंह 'आलोक'

जलन ही जीवन का है नाम

मिला जो जीवन अरे उधार !
जले जिसमें सौ वाति उजार।
मधुर है जिसका नीरव गान,
कि जिस में दो तट दो अनजान।
जलन ही जीवन का है नाम।

धरा में छिपी अमर वह प्यास;
सिन्धु में भरा अनल उच्छ्वास;
कि जितनी बही कसक की धार,
मुखरता मधुर मधुर रे गान।
जलन ही जीवन का है नाम।

दिया जो जला वाति को तान,
ज्योति उतनी ही बढ़ी वितान;
जलन में सुधा, प्राण का प्यार,
इसी में भरा अमर वरदान।
जलन ही जीवन का है नाम।

यह जीवन अरे एक पाषाण !
रगड़ से ही गाता है गान;
थपेड़ों बिन जीवन सूनसान,
अरे यह जीवन लहर समान !
जलन ही जीवन का है नाम।

जीवन की रेती पर

जीवन की रेती पर चलते
पग जाने क्यों रुक-रुक जाते ?

दूरी धुँधली अन पहचानी,
कितनी प्यास उठी भरमायी।
लहर पुंजबिछ बिछ कह जाती,
भँवरों में क्यों नाव डुबायी ?
पर गति ही जीवन का चन्दन,
इसीलिए हर साँस चुकायी !
सीमा के आरोहण तट पर
मोह-भस्म क्यों उठ-उठ आते ?

जीवन की रेती पर चलते,
पग जाने क्यों रुक-रुक जाते ?

नयनों में तस्वीर पुरानी,
भूल कहीं मधुवन से आती।
क्या अर्जन क्या किया समर्पण,
सुधि वंशी रह-रह दुहराती।
हर आँसू अन्तस् के पनघट,
इसीलिए सीपी भर आती।
पथ पर दीप जलाने के क्षण,
झंझा के क्यों गीत बुलाते ?

जीवन की रेती पर चलते,
पग जानें क्यों रुक-रुक आते ?

श्यामबिहारीसिंह 'आलोक'

किरण डार रंग डारो

चन्दा की ढर रही चाँदनी
मन के द्वार पुकारो !
तमिस भरे निर्धन आंगन में
किरण डार रंग डारो।

विहँस रहा स्वर विश्वासों का
आराधन झुक आया;
निर्जन-निस्वन जग उपवन में
गुंजन मधुमय छाया;

पावनतम इस प्रभा पुंज में
कलुष हृदय की हारो !
तमिस भरे निर्धन आंगन में,
किरण डार रंग डारो !

भावना रच रही महावर,
नन्दन गीतों का चहका;
करुणा से भीगी छाया में,
सम्वेदन स्वर बहका ?

मिलन-प्रतीक्षा की वेला में,
निश्छल प्यार सँवारो !
तमिस भरे निर्धन आंगन में
किरण डार रंग डारो !!

श्रवणकुमार अग्रवाल

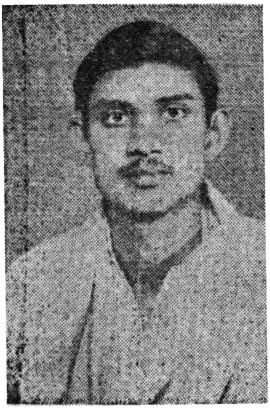

आप वैर (भरतपुर) के प्रगतिशील युवक है। आपका प्रारम्भिक जीवन अत्यन्त संघर्षों में बीता। जीवन के कटु अनुभवों ने ही ठोस और सक्रिय साहित्यकार का स्वरूप दिया। सौभाग्य से आपको स्व० डा० रांगेय राघव का सम्पर्क मिला। यही से आपका कवि हृदय विकसित हुआ। सन् १९५३ में प्रथम कविता 'शुभ्र चाँदनी मस्त गगन है' लिखी तदुपरांत काफी सृजन किया। रचनाएँ पत्र-पत्रिकाओं के अतिरिक्त कई संकलनों में प्रकाशित हुई हैं। काव्य के साथ-साथ कहानियाँ, उपन्यास आदि भी आप सतत लिख रहे हैं। आपका ग्यारह कहानियों का एक संग्रह प्रकाशनार्थ तैयार है।

डा० रांगयेराघव पुस्तकालय,
वैर, जि० भरतपुर,
(राजस्थान)

श्रवणकुमार अग्रवाल

आवाहन

आजा रे, तू रस पी जा, मेरे मधुवन का।
हुई आज प्रिय रस की वर्षा,
खेले अलि-कलि तन मन हर्षा,
अपलक निंदिया में आकर तू,
बसजा छा कर मेरे उर तू,
सुरभित होवे, श्वास-श्वास मेरे यौवन का।
आजा रे, तू रस पीजा, मेरे मधुवन का।।

मुखरित कर दे सूने पन को,
विकसित कर दे मेरे मन को,
बिखर चला मधु आज अनिस में,
बिंधे शूल मेरी मंजिल में,
दूँगी तुमको, मोल पंथ के मैं गायन का।
आजा रे, तू रस पीजा, मेरे मधुवन का।।

आतीं याद विगत वे रातें,
कब—तक सहूँ, घात पर घातें,
स्वप्नों से है सजे घरौंदे,
नित आ-आ पीड़ा ने रौंदे,
तेरा परस बने, पारस मेरे रज कण का।
आजा रे, तू रस पीजा मेरे मधुवन का।।

श्रवणकुमार अग्रवाल

ये कौन चली आती है

सूने पथ को झंकृत करती सी, ये कौन चली आती है ?
जो मेरे मनके सागर को, पल भर में ही मथ जाती है।

काल कूट सी मेरी स्मृतियाँ,
मुझको ही मूर्छित करता है।
त्राहि-त्राहि त्रिभुवन में होती,
त्रस्त-त्रस्त घड़ियाँ झरती हैं।

अरे कहाँ है तृप्ति रूप की,
वह तो यों-ही उमगाता है।
मेरे यौवन की थाती को,
मधु गीतों से सुलगाता है।

किस अतीत का गौरव मुझ में,
यौवन बन-बन कर गाता है।
है सदैव नवनीत सद्दश-यश,
और कान्त उभर आता है।

फिर भी मेरे कवि क्यों,
यह युग प्यासा रह जाता है।
जब कि हर आँसू धरती पर,
हरियाली बन उग आता है।

फिर भी मन मन्दिर में, दीप शिखा सी मुस्का जाती है ?
सूने पथ को झंकृत करती-सी ये कौन चली आती है ॥

शत-शत लो—प्रणाम हमारा

मंगलमय नव वर्ष हमारा।

नैतिकता के बनें पुजारी।
विनशै द्वेष-ईर्ष्या सारा॥
किलक-किलक कर धरती नाचे।
अम्बर गीत खुशी के बांचे॥
ऊषा मंगल कलश सजाती, किरणें चौक पूरती प्यारा।

जन-जन चेतनता मुस्काये।
कण-कण भी कंचन हो जाये॥
आँचल में अनुराग सजा कर।
सबका ही भवितव्य बना कर॥
सत्य अहिंसा का व्रत ले सब, हो अखण्ड अभिमान हमारा।

मिले स्वभाव भाव फूलों सा,
मिले किरण की सी कोमलता।
वसुधा पर रसधार बहे नित,
धुल जाये सारी कल्मशता॥
नभ से उतरे स्वर्ग धरा पर, ज्योतिर्मय हो जग सारा।

विमल वन्दना को वीणा ले,
निशिदिन गीत शारदा गाये।
श्वेत हास लख-लख जगती का,
रोम-रोम पुलकित हो जाये॥
नये वर्ष की नई खुशी में, शत-शत लो प्रणाम हमारा।

मंगलमय नव वर्ष हमारा।

श्रीप्रकाश मिश्र

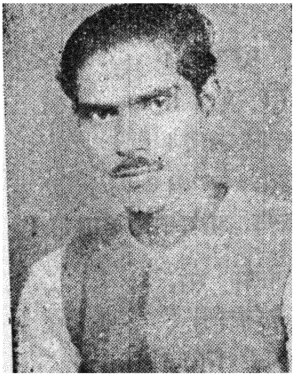

आजकल डी० सी० के० एम० उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, गंज मुरादाबाद, उन्नाव में अध्ययन और साथ ही अनुसंधान कार्य में व्यस्त श्री प्रकाश मिश्र का जन्म जौलाई सन् १९३५ ई० में हुआ। पारिवारिक वातावरण उदार विचारों तथा कलात्मक अभिरुचियों से अनुप्राणित था, उसका प्रभाव आप पर भी पड़ना स्वाभाविक था। (पिता पं० शीतल-प्रसाद मिश्र) एक सबल प्राध्यापक थे। अध्ययन की ओर उनकी सहज रुचि थी। चाचा (पं० माताप्रसाद मिश्र) भी अध्यापक थे। भक्ति-काव्य में उनकी गहरी रुचि थी।

आप गीतों का सृजन लगभग १० वर्षों से कर रहे हैं। गीतों के साथ कविता से भी आपकी रुचि है। रचनाएँ बहुधा अनेक सम्मानित पत्रों में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं।

३३५, बस्तनिया तालाब,
उन्नाव (उ०प्र०)

ओमप्रकाश मिश्र

धन केशों की छाँह से

मुझे जलाने वाले मेरे अपने अर्न्तदाह से
मुझे शिकायत है तो तेरे घन केशों की छाँह से

छाँह कि जिसमें प्रणय-निवेदन और न दूजा भाव रे
बन्द-बन्द कुछ खुले-खुले से प्रश्नों का उलझाव रे
नया नया अनुभव वह भी था, यह भी सब स्वीकार है
नम साँसों में गर्म उसाँसे, तेरा ही उपकार है
भेद न खोलूँ और किसी से, बोलूँ अपनी आह से
मुझे शिकायत है तो तेरे घन केशों की छाँह से

आह कि जिसकी लड़ी पिरोती सुधियों की शहजादियाँ
अब तो मेरे जीवन भर की साधें उनकी बादियाँ
असफलता के बीच पिघलती प्राणों की आराधना
बीते पल को फिर पाने को मन मथती है कामना
सबसे जीत गया मेरा मन, हारा तेरी चाह से
मुझे शिकायत है तो तेरे धन केशों की छाँह से

चाह कि चन्दा तेरी मेरी एक इकाई आंकता
चार नयन के बीच पनपती प्रीति-लता से भावता
साँसों का उल्लास थिरकता फिर गहरे विश्वास में
जीवन का संगीत बरसता मुरझाये मधुमास में
पाँव खोजते पंथ मिलाने वाला तेरी राह से
मुझे शिकायत है तो तेरे घन केशों की छाँह से

था तुम्हारे निकट जिस तरह

रात तुम-सी मधुर औ' अगम, हाय ! तुम-सा कठिन है दिवस
था तुम्हारे निकट जिस तरह, उस तरह तुम बिना हूँ विवश

कह न पाया कभी प्रान की बन गयी हर व्यथा जानकी
तुम रुलाते रहे सर्वदा भर गयी गागरी गान की

दूर हो तुम, न यों पास थे स्वर बिना तो सभी श्वास थे
आज की भावनायें मुखर कल तलक सिर्फ आभास थे

सुधि तुम्हारी बनी संगिनी, प्राप्ति की कामना-सी सरस
था तुम्हारे निकट जिस तरह, उस तरह तुम बिना हूँ विवश

क्या अनोखे रहे आवरन ! हाय कैसा हृदय की लगन
एक रेखा न लाँघी गयी कंठ से लौट आये बचन

एक संकोच की लीक पर चल रही थी अजानी उमर
अब न रोके रुकेगी कभी मिल गये हैं हृदय को अधर

तुम मिले तो नयन शून्य थे, तुम नहीं तो रहे हैं बरस
था तुम्हारे निकट जिस तरह, उस तरह तुम बिना हूँ विवश

चेतना बंधनों में पली कल्पना आँसुओं से ढली
व्यंजना को विकल, गूँजती रह गयी धड़कनों की गली
अब विरह वेदना से सिहर स्वप्न-सी मोहिनी से उबर
ये पराये हुये जा रहे भेद को भेद स्वाधीन स्वर

स्यात् आयें तुम्हारे नगर, पा न जायें तुम्हारा परस
था तुम्हारे निकट जिस तरह, उस तरह तुम बिना हूँ विवश

गीत का जन्म

साँस का झुरमुट, बसेरा प्रान का
अलस जीवन में नये अनुमान-सा

डूबते स्वर हो रहा प्रिय आगमन
चेतना करती निरन्तर स्तवन
बेघते ये स्वर अजाने देश के
छेड़ते सरगम नये सन्देश के

घुल रहा अमृत छिपे आदान का
झुटपुटे में आ रहे आह्वान-सा

मिल रही आहट उसी की पास में
खोज आया मन जिसे आकाश में
स्पर्श के आभास से सिहरा हिया
टीस की अनुभूति ज्यों जलता दिया

खेल यह कैसा अदृश्य विधान का
चतुर्दिक फैले हुये सुनसान-सा

वेदना की व्याप्ति में डूबा निलय
कसमसाती आह से ऊबा हृदय
लोचनों के द्वार जब थे बन्द ही
कंठ से फूटे मधुरतम छंद ही

झर रहा निर्झर अनूठे गान का
पूर्णिमा में उफनते तूफान-सा

सतीशचन्द्र 'सन्तोषी'

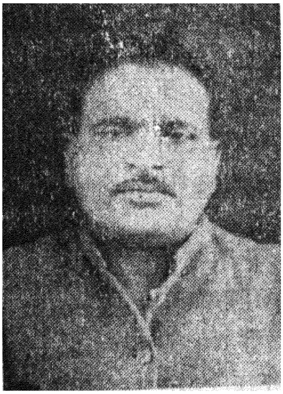

आपकी जन्म-तिथि ५ फरवरी १९२२ ई० है और जन्म-स्थान बरेली। अनेक व्यक्तिगत और पारिवारिक संघर्ष आपके साथ प्रारम्भ से ही रहे हैं। 'हिन्दी प्रभाकर' और हाईस्कूल की परीक्षाएँ पास की हैं। स्वर्गीय पं० सूरजप्रसाद जी आपके पिता और स्वर्गीय (संतोष) माँ थीं। साहित्य से रुचि बचपन से ही थी। संघर्षों ने आपकी रुचि का पालन-पोषण किया। हिन्दी में आप कविताएँ ही नहीं निबन्ध और लेख भी लिखते हैं। 'क्या सही, क्या गलत क्या अच्छा, क्या बुरा—बस लिख रहा हूँ और लिखता रहूँगा; एक ईमानदार सिपाही की तरह।'

आपने 'पतवार' 'जगत' आदि पत्रों में सम्पादन कार्य भी किया है। राजनैतिक, सामाजिक, साहित्यिक और धार्मिक संस्थाओं में आप प्रमुख रूप से भाग लेते हैं।

सिविल लाइन्स
इलैक्ट्रिक कार्यालय,
बरेली (उ० प्र०)

सतीशचन्द्र 'सन्तोषी'

पीर को छुपा लिया

एक गीत दर्द की लकीर सा
एक गीत प्यार के फकीर सा
बात तो युगों युगों से चल रही
गीत फिर नवीन किस तरह लिखूँ

खिन्न किस लिये यह आज मन हुआ
साँस को ही साँस का कफन हुआ
दो घड़ी खिली तो चाँदनी कहीं
और फिर उदास यह चमन हुआ
आग तो युगों-युगों से जल रही
गीत फिर नवीन किस तरह लिखूँ

आसुओं ने पीर को छुपा लिया
दर्द को किसी तरह सुला लिया
और जब न मन बहल सका कहीं
दीप को जला लिया बुझा लिया
चाह तो युगों युगों से चल रही
गीत फिर नवीन किस तरह लिखूँ

गाँव-गाँव में लुटी बहार है
आँख-आँख में भरा खुमार है
जिन्दगी का क्या पता कि प्यार में
होठ-होठ पर बना मजार है
प्यास तो युगों-युगों से छल रही
गीत फिर नवीन किस तरह लिखूँ

सतीशचन्द्र 'सन्तोषी'

किसी इशारे की है जरूरत

हजार गीतों में कोई राहत बिना तुम्हारे अभी अधूरी
हजार सपनों की बादशाहत बिना तुम्हारे अभी अधूरी

नई डगर है नया तराना
किसी सहारे की है जरूरत
भँवर में भी डूबने को शायद
किसी इशारे की है जरूरत

हजार सासों की और चाहत बिना तुम्हारे अभी अधूरी
हजार गीतों में कोई राहत, बिना तुम्हारे अभी अधूरी

जो चाँदनी में उदास बैठे
यह कम नसीबी नहीं तो क्या है
महक से जो फूल की न खले
भला गरीबी नहीं तो क्या है

घटाओं में डूबने की आदत, बिना तुम्हारे अभी अधूरी
हजार गीतों में कोई राहत, बिना तुम्हारे अभी अधूरी

हवा का गुमनाम एक झोंका
मुझे सुलाकर चला गया है
जहर का होठों पै एक झोंका
अभी रुलाकर चला गया है

चमन में रँगीनियों की दावत, बिना तुम्हारे अभी अधूरी
हजार गीतो में कोई राहत, बिना तुम्हारे अभी अधूरी

सतीशचन्द्र 'सन्तोषी'

एक सांस दर्द बन के पल रही

दूर दूर चाँद है निकल रहा
पास पास जिन्दगी मचल रही
एक साँस आह बनके जा रही
एक सांस दर्द बनके पल रही

चाँदनी खिली हुई मधुर-मधुर
कल्पना के पंख पर चढ़ा चढ़ा
कौन जा रहा किस की खोज में
प्यार की हवा में भी उड़ा उड़ा
व्यर्थ ही जगत की रूपमाधुरी
चाँदनी बनी सी आज छल रही

शांति के अनेक पाठ पढ़ लिये
पा सका नहीं उसे अभी मगर
क्रान्ति के अनेक खेल रच लिये
ढूँढ़ता फिरा उसे इधर उधर
मिल रहा है चैन क्यों भला मुझे
कामना की लाश आज जल रही

दूर दूर चाँद है निकल रहा
दूरियों को पंथ की जो देख कर
रुक गया तो दूर जिन्दगी हुई
आँधियों को राह की जो देखकर
डर गया तो प्राप्त क्या खुशी हुई
बढ़ रहे कदम किसी की राह में
लाख जिन्दगी की शाम ढल रही
दूर दूर चाँद है निकल रहा

समर चाहान

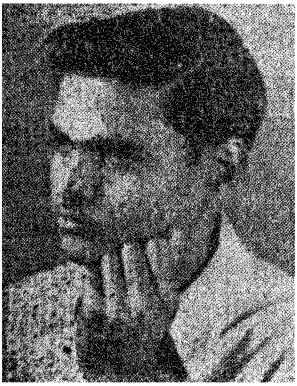

तरुण कवि श्री समर चौहान का जन्म १६ अगस्त १६३६ ई० को ग्राम वासरिसाल, पो० सैमरा जिला आगरा में हुआ। कवि जीवन को छोड़कर हर दृष्टि से सुखी सम्पन्न इस कवि को आगरा की लम्बी चौड़ी सड़कों पर मोटर साइकिल पर सवार अक्सर देखा जा सकता है।

विद्यार्थी जीवन से आप काव्य के के क्षेत्र मे हैं। कविताओं के साथ कहानी, निबन्ध भी लिखते है जो बहुधा पत्रों में प्रकाशित होते रहते हैं। आपके गीतों में वेदना और शृंगार, प्रधान विषय है।

बाबू गुलाबराय 'व्यक्तित्व और कृतित्व' विषय पर हिन्दी विश्व विद्यालय प्रयोग से प्रबन्धक लिखने में व्यस्त, 'साहित्यलेक' (मासिक) के प्रबन्ध-सम्पादक तथा सहयोगियों के साथ 'साहित्यलोक-प्रेस, का संचालन कर रहे हैं।

साहित्य लोक प्रेस,
डा० राँगेय राघव मार्ग,
आगरा

समर चौहान

आज आयेंगे सजन

फूल रहा हर सिंगार फूल रही चाँदनी
आज आयेंगे सजन महक रही यामिनी

पात पात झूम रहा, डोल उठीं डालियाँ
घूमि झूमि-झूमि झुके, झूलती हैं बालियाँ
सज रहे हैं साज औ नाच रही यामिनी
महक रही यामिनी

हर लता पै साज है, महक रही हर कली
वायु हर बहार की, नव सिंगार कर चली
देख के स्वरूप स्वंय झूम उठी कामिनी
महक रही यामिनी

नाचने लगा गगन, प्यार में बहार में
झूमने लगा सजन, रूप में शृंगार में
प्रीत मिलन को लगन लग रही सुहावनी
महक रही यामिनी

पूर्ण रूप चाँद और, मन्द मन्द गन्ध है
हर कली के प्यार में, आज भ्रमर बन्द है
जगमगाते दीप और झिलमिलाती चाँदनी
महक रही यामिनी

दूर मिलन की बात रे

प्राणों से पतझार झरे और नयनों से बरसात रे
दूर मिलन की बात सजनवा दूर मिलन की बात रे

ऊँची नीची बनी डगर सब, कैसे जाऊँ नेह नगरिया
राह रोकि सब खड़े लुटेरे, कैसे पहुँचू पीय अटरिया
घटा घिरी घनघोर सजनवा, छायी अँधेरी रात रे
दूर मिलन की बात रे

साधु सुजान सभी धरि पूछें, कहाँ बजे मनमोह मुरलिया
कहाँ बसै घनश्याम हमारे, कौन गई उस गाँव डगरिया
बीच भंवर में सहूँ सजनवा, रोज नये उत्पात रे
दूर मिलन की बात रे

अंग शिथिल मन चेतन रूठौ, राह चलत मैं बनो बबरिया
निर्मोही काटों ने मेरी, छेद दई पचरंग चुंनरिया
कैसे करूँ शृंगार सजनवा, पवन करे आघात रे
दूर मिलन को बात रे

सूरज चाँद सितारे निशदिन, माँगे मेरी रूप गठरिया
सुबह शाम नित नये जमाने, देखें मेरी नयी उमरिया
हाथ थामि ओ मेरे सजनवा, आवत झंझावात रे
प्राणों से पतझार झरे और नयनों से बरसात रे

प्यार की हर राह मरघट पर मिलेगी

गा रहा हूँ गीत मैं यह आश लेकर,
जी उठे शायद किसी दिन प्यार मेरा।

आज तो कलियाँ न मुझसे बोलती हैं
देख लो ये पुष्प भी इठला गये हैं
बहुत पहिचाने हुये इन आँचलों को
हो गया क्या, हाय ये भरमा गये हैं

शूल पर चलता रहा, विश्वास लेकर,
है यहीं पर फूल सा संसार मेरा।

हर खुशी का अन्त आँसू में लिखा है
इस अभागे भाग्य की ऐसी कथा है
प्यार को तो लूट लेतीं रीति-रस्में
कौन जाने हाय ये कैसी प्रथा है

दरबदर पहुँचा इसी विश्वास पर,
मिल उठे शायद कहीं पर द्वार तेरा।

खो गई प्रतिमा कहीं पर प्यार की तो
फूल सी आराधना मुरझा गई है
देखते ही देखते प्रिय पंथ तेरा
आज तो ये चाँदनी कुम्हला गई है

कर रहा हूँ अर्चना, आधार लेकर,
सुन उठे शायद कभी भगवान मेरा।

दीप की हर दाह मरघट पर सजेगी
जिन्दगी की चाह मरघट पर जलेगी
तुम न आओ पर मुझे तो देख लेना
प्यार की हर राह मरघट पर मिलेगी

जी रहा हूँ मैं यही बस आश लेकर,
जग उठे शायद कभी अधिकार मेरा।

सरजूप्रसाद सैनी

[illegible]

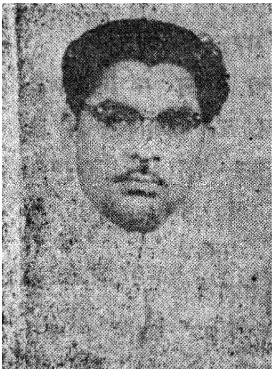

आपका जन्म १५ जोलाई सन् १९३६ ई० में बरवनापुर जिला रायबरेली (उ० प्र०) में हुआ। खंडवा, बम्बई तथा अजमेर में आपने शिक्षा प्राप्त की। रचनाएँ अनेक पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं। कविताएँ, निबन्ध, कहानियाँ सभी कुछ लिखते हैं। 'निर्झर' और 'मधुपान' आपके प्रकाशित काव्य हैं। 'आधीरात के गीत', 'दर्द के गाँव में' (गीत-संग्रह), 'उद्‌गार' (कविताएँ) 'नया घर' (कहानी-संग्रह) 'साधना' (काव्य रूपक-संग्रह) आपकी अप्रकाशित पुस्तकें हैं। 'राष्ट्रवाणी' और 'दीपावली' का आपने सम्पादन किया है। 'प्रगति की ओर' और 'सर्वोदय समुच्च्य' ग्रन्थ का सहसम्पादन किया है।

'ज्ञान भारती' मासिक
पो० बॉ० नं० १५१,
लखनऊ (उ०प्र०)

सरजूप्रसाद सैनी

मैं ही नहीं अकेला

मेघों की पलकें भी आँसू से बोझीली हैं,
मैं ही नहीं अकेला जिसका मन दुखियारा।
लेकिन तुमने इतनी बड़ी भरी महफिल में,
जाने क्योंकर मेरी ही पीड़ा दुलराई।
तुम्हें ज्ञात था मेरी तो हर साध विधुर है,
फिर भी तुमने की जीभर इनकी पहुनाई।
ज्यों-ज्यों सूची बढ़ती गई पाप की मेरे,
त्यों-त्यों श्रद्धा हुई तुम्हारी मुझमें।
दुनिया का हर द्वार गली आँगन अँधियारा है,
मैं ही नहीं अकेला जिसका घर अँधियारा।
तुमको जाने क्या लगाव था इस पापी से,
जो मेरी पीड़ा के आँगन दीप धर गये।
कलुषित भावों की उपेक्षिता वेदी पर तुम,
आकर मेरे अभिलाषों से वरण कर गये॥
मैंने जिस दिन कहा कि पूजा योग्य नहीं हूँ,
उस दिन कह भगवान हृदय-मंदिर में पूजा।
आशाओं के पनघट पर हर अधर पिपासित हैं,
मै नहीं अकेला एक तृषित पपिहारा।
लेकिन अनव्याही अभिलाषा का गंगाजल,
तुमने मेरे प्यासे अधरों को दे डाला।
और स्वयं के पुण्य-लाभ से अर्जित अमृत,
मुझे सौंपकर तुमने पिया विष भरा प्याला।
जिस दिन पतझर देख नयन बादल बन बैठे,
तुमने धरती बन अपना आँचल फैलाया।
अम्बर का हर सपना उजड़ा सूना-सूना है,
सूना नहीं अकेला इस मन का गलियारा।

चला जा रहा हूँ

किसी की मधुर कल्पना के सहारे
गगन में उड़ा ही चला जा रहा हूँ।

कहाँ आदि पथ का, कहाँ अन्त होगा?
भला कौन जग में मुझे जो बताये।
कहाँ राह मेरी, कहाँ मोड़ पथ का?
किसी ने डगर पर न दीपक जलाये।

बड़ी दूर जाने कहाँ आग है वह
कि जिसकी तपन से जला जा रहा हूँ।

रुपहली निशा को मदिर राग में जब,
पवन ने मधुर गीत प्रिय के सुनाये।
सजल हो उठे नैन सूने गगन के,
धरा का हृदय, पर द्रवित कर न पाये।

किसी की हृदय-बीन के मधु स्वरों से,
युगों से स्वयं मैं छला जा रहा हूँ।

न रोको मुझे, है बड़ी दूर मंजिल,
न जाने कहीं वेदना हेरती हो।
बनूंगा किनारा किसी स्वप्न सरिका,
कि जिसमें मिलन की तरी तैरती हो।

कहाँ स्वप्न होगा, कहाँ रात होगी,
नहीं है पता, पर चला जा रहा हूँ।

सरजूप्रसाद तंवी

घाव हृदय का होता गहरा

कौन सुनेगा मन की बातें ?
प्रतिपल जीवन मे पीड़ा है,
सुख दुख दोनों की क्रीड़ा है,
पंचम सुनने को रोकेंगी, अब मुझको किसकी सौगातें ?
कौन सुनेगा मन की बातें ?

ज्यों-ज्यों सागर का जल लहरा,
घाव हृदय का होता गहरा,
चन्द्रकिरण बन लौटा देगा, कौन मुझे वे मधुमय रातें ?
कौन सुनेगा मन की बातें ?

मैंने जिसके आश्वासन पर,
दिखलाया निज पीड़ित अन्तर,
उसने पागल कहकर मुझको, उर पर की सौ-सौ आघातें।
कौन सुनेगा मन की बातें ?

सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

आपका जन्म मथुरा जिले के एक गाँव में हुआ। जन्म-तिथि सन् १९२३ ई० है। हिन्दी में एम० ए० करके १९५१ में रघुनाथ गर्ल्स कालिज मेरठ में अध्यापन कार्य किया। तदुपरान्त १९५४ में अजमेर के सावित्री गर्ल्स कालिज की अध्यक्षा रहीं। आजकल मथुरा के किशोरी रमण गर्ल्स कालिज की प्रधानाचार्या हैं। आकाशवाणी के आयोजित 'स्वर बेला' तथा 'रसवन्ती' कार्यक्रमों में बहुधा भाग लेती हैं। रेडियो से भी गीत प्रसारित होते रहते हैं। बाल साहित्य का भी सृजन किया है। 'साधना' नाम से एक कविता-संग्रह प्रेस में जा चुका है। एक बाल-कविताओं का संग्रह भी शीघ्र प्रेस में जा रहा है।

किशोरी रमण गर्ल्स
डिग्री कालेज, मथुरा
(उ० प्र०)

सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

है सभी कुछ क्षार साथी

मैं करूँ स्वीकार कैसे, नेह का उपहार साथी।

कल्पना, सपने सभी तुम
साथ इसके दे रहे हो
मैं न जिसके योग्य वह
मनुहार-माणिक दे रहे हो
किन्तु मैं निर्लिप्त इनसे, है सभी कुछ क्षार साथी।
मैं करूँ स्वीकार कैसे, नेह का उपहार साथी॥

है हृदय भोला, मगर, इसमें
कहीं कोई बसा है
प्राण की जंजीर ने ले
रूप अपने में कसा है
विवश हूँ मैं मिल गया, चिर पीर का संसार साथी।
मैं करूँ स्वीकार कैसे, नेह का उपहार साथी॥

मैं न कोई दीप जिसकी
लौ दुबारा जल सकेगी
मैं न कोई स्रोत जिसकी
गति अबाध बिछल सकेगी
जल रहा निज को जलाने, हूँ निपट अंगार साथी।
मैं करूँ स्वीकार कैसे, नेह का उपहार साथी॥

सरोजिनी कुलश्रेष्ठ

साधना उस क्षण सफल है

पा सकूँ जिस क्षण तुम्हें मैं, साधना उस क्षण सफल है।

देखती व्याकुल चकोरी
चाँद को सुध-बुध भुलाकर
कर चुकी है यत्न कितने
पांवड़े पथ में बिछाकर
कर सकूँ दर्शन तुम्हारा, दृष्टि तो उस क्षण सफल है॥ पा सकूँ....

फूल डाली पर खिला था
हृदय का शृंगार होने
धूल में गिर कर लगा है
आज अन्तिम सांस लेने
धरणि से जिस क्षण उठा लो, भावना उस क्षण सफल है॥ पा सकूँ....

मेघ तो झरते रहे हैं
पड़ चुकी कितनी फुहारें
बढ़ रही हैं किन्तु देखो
तृषित चातक की पुकारें
बूंद जब मुख में पड़ेगी प्यास तो उस क्षण सफल है॥ पा सकूँ....

तुम दिवस हो सांझ हूँ मैं
आ गई त्यों चल दिए तुम।
दीप मैं आई जला पर
अर्चना तज चल दिए तुम॥
जल सकें जब अर्चना बन, प्राण तो उस क्षण सफल है॥ पा सकूँ....

मैं बनी हूँ दीप-साथी

प्रथम तो संघर्ष का ही
मिल गया वरदान मुझको।
आदि से ही हो गया है
सत्य निज अस्तित्व मुझको॥
नेह में डूबूँ यही दो—अँगुलियाँ मुझको बताती।

बैठकर निज गेह में ज्यों
गर्व से तनमन फुलाया।
एक क्षण में ज्वाल के
अभिशाप ने मुझको जलाया॥
जल रही तबसे निरंतर, हो रही है दग्ध छाती।

जल रही मैं देख मुझको
यह निठुर संसार हँसता।
ज्योति उसको मिल गई
मेरा मधुर संसार मिटता॥
राख ही रह जायगी क्या, शेष मेरी एक थाती।

कुछ न मुझको मूल्य मेरा
किन्तु परहित जी रही हूँ।
भटकते भूले पथिक का
पंथ ज्योतित कर रही हूँ॥
देखती निर्वाण का पथ, प्राण मैं अपने मलाती।
मै बनी हूँ दीप साथी॥

सुदर्शन बाहरी

सी० आर० ए० कालेज,
सोनीपत

सी० आर० ए० कालेज सोनीपत में हिन्दी की प्राध्यापिका श्रीमती सुदर्शन बाहरी का जन्म स्यालकोट (पश्चिमी पजाब) के सुप्रतिष्ठित एवं सुशिक्षित पुरी परिवार में श्रीकृष्ण गोपालजी के यहाँ २६ अक्टूबर १६२६ को हुआ। साहित्य के गहन अध्ययन के साथ-साथ आपने सन् १६४५ ई० में लाहौर में रहकर पंजाब यूनिवर्सिटी से प्रभाकर एवं सन् १६४८ में इलाहाबाद से हिन्दी साहित्य सम्मेलन की साहित्यरत्न एव सन् १६५१ में पंजाब यूनिवर्सिटी से उपाधि प्राप्त की। इन सबके साथ आपने कांग्रेस विमेन कान्फ्रेंस यूथ कांग्रेस, हैडक्रास, होस्पिटल वैलफैयर आदि कई संस्थाओं मे महत्वपूर्ण पदों पर कार्य किया है। पंजाब लोक सम्पर्क विभाग में पब्लिक रिलेशन ऑफिसर के पद पर नियुक्त हुई। केन्द्रीय सरकार की क्लास-टू-पोस्ट पर रहने का भी आपको सौभाग्य प्राप्त हुआ है।

सुदर्शन बाहरी

जलनदान दो तुम

नये गीत के स्वर नयी तान दो तुम,
नयी प्रीत दो तुम नये प्राण दो तुम।

हँसूं गुनगुनाऊँ खिलूँ झूम जाऊँ
धरा से गगन तक उड़ूँ लौट आऊँ
बनूँ चाँद चंचल मधुर एक तारा
नयी जीत दो तुम नया मान दो तुम,
नयी प्रीत दो तुम नये प्राण दो तुम।

पुरानी बहुत यह विरह की कहानी
दिखाओ न जग, वह जहाँ आग पानी
नयी शाम आई, शमा मुसकराई
पतंगा जलेगा, जलन दान दो तुम
नयी प्रीति दो तुम, नये प्राण दो तुम

बहुत बार तुमने पुकारा दुलारा
बही नयन पथ से अगम अश्रु धारा
नयी चेतना और अभिव्यंजना दो
नयी सी कथा कुछ नयी शान दो तुम,
नयी प्रीत दो तुम नये प्राण दो तुम।

मनुज ने हृदय को छला है कहाँ तक ?
अकेली डगर वह चला है कहाँ तक ?
न रोको लगन को न टोको जलन को
नया ध्येय प्यारा नया ध्यान दो तुम,
नयी प्रीति दो तुम नये प्राण दो तुम।

सुदर्शन बहरी

बेसुध प्रीत कहानी चलती

रात-रात भर दीप शिखा सी मन की यह नादानी जलती
नभ पर चलता चाँद धरा पर बेसुध प्रीत कहानी चलती

युग-युग के थे पहिचाने से
किन्तु न बनकर आये अपने
छवि सुषमा के रंग बिरंगे
जाग रहे पलकों में सपने

रात-रात भर विरह मिलन की चुनियाँ सौ सौ रंग बदलती
नभ पर चलता चाँद धरा पर बेसुध प्रीत कहानी चलती

पिय को कैसे देखूँ आगे—
है सुख दुख का ताना बाना
अनजानों की इस बस्ती में
कौन यहाँ जाना पहचाना ?

रात-रात भर नया रूप धर भ्रान्ति मुझे अनजानी छलती
नभ पर चलता चाँद धरा पर बेसुध प्रीत कहानी चलती

भर कर पगली आस प्रान में
रस के मधुर गीत मैं गाती
सूनेपन में खोई - खोई
काँटों को राहें अपनाती

रात-रात भर सुधि सपनों की अविरल आनाकानी चलती
नभ पर चलता चाँद धरा पर बेसुध प्रीत कहानी चलती

सुर्दशन बाहरी

अभी तो रात बाकी है

ठहरो चाँद रुक जाओ, अभी तो रात बाक़ी है
नयन से नयन उलझे हैं, हृदय की बात बाक़ी है

सुनहले स्वप्न घिर-घिर कर उठे हैं मन लुभाने को
पपीहा पी पुकारेगा, कहेगा गम भुलाने को

घटा आई घिरे बादल, अभी बरसात बाक़ी है
ठहरो चाँद रुक जाओ, अभी तो रात बाक़ी है

किसी का प्यार बैठा है, लगाये लो जवानी से
चला है बनचला कोई, खेलने आज पानी से

किसी की जीत बाकी है किसी की मौत बाक़ी है
ठहरो चाँद रुक जाओ, अभी तो रात बाक़ी है

सामने जिन्दगी फिर भी रहो मजबूर क्यों कोई
बाँध कर मन, नयन से हो चला दूर क्यों कोई

अनेकों दर्द बाकी हैं अनेकों घात बाक़ी है
ठहरो चाँद रुक जाओ अभी तो रात बाक़ी है

जलन को और इस दिल को जरा कुछ पास होने दो
प्यार में और अनभीगा तरिक आंचल भिगोने दो

नया सा मन, नया जीवन, नई सौगात बाक़ी है
ठहरो चाँद रुक जाओ, अभी तो रात बाक़ी है

सुधारानी शर्मा

आपका जन्म २ अक्टूबर सन् १९३२ मे जिला बिजनौर में हुआ। २५ नवम्बर १९४५ को कानपुर निवासी श्रीकृष्णचन्द्र शर्मा के साथ विवाह सम्पन्न हुआ। आपके पति आजकल डिप्टी सुपरिटेन्डेन्ट पुलिस पद पर हैं।

बचपन से ही संगीत की ओर आपकी अभिरुचि है। संगीत की उच्च-शिक्षा आपने काशी विश्व-विद्यालय से ग्रहण की। शास्त्रीय, ललित और लोक संगीत से निगुण है आप। आकाशवाणी से भी आपके संगीत के कार्यक्रम बहुधा प्रसारित होते रहते हैं। आपके कुछ लोक-गीत रेकार्डिग कम्पनियों द्वारा रेकार्ड भी हो चुके हैं।

संगीत से प्रेम होने के कारण आपके गीतों में संगीत तत्व की प्रधानता रहती है।

नवाबगंज,
वाराणसी (उ० प्र०)

सुधारानी शर्मा

सर्द आहें पल रही हैं

आज वह मुस्कान अधरों पर नही है ?
आज भी तो बोलते हैं नैन मेरे,
आज भी तो मृदु बने हैं बैन मेरे
आज लेकिन कंठ में वह स्वर नहीं है।

आज भी तो गर्म सासें चल रही हैं
आज भी तो सर्द आहें पल रही हैं,
था जमाने से कभी, अब डर नहीं है।

आज भी तो चहचहातीं टोलियाँ हैं,
आज भी तो, कहकहाती बोलियाँ हैं,
प्रश्न लाखों, एक भी उत्तर नहीं है ।

आज भी तो पुष्प खिलते हैं बनो में
आज भी तो भ्रमर फिरते कुंजनों में,

प्यार से करता घृणा वह नर नहीं है।
आज वह मुस्कान अधरों पर नहीं है ॥

कैसी अलग ये बात

कैसी अलग ये बात मैं बिन प्यार की लगन हूँ।

कोई अँधेरी रात का
दीपक बना हुआ।
कोई किसी की शाम का
चातक बना हुआ।

कैसी अलग ये बात मैं बिना धूप की तपन हूँ।

कोई किसी के रूप का
दर्पण बना हुआ
कोई किसी के नयन का
अंजन बना हुआ

कैसी अलग ये बात मैं हर गीत का रुदन हूँ।

कोई सलौनी साँवरी
सूरत लिए हुए
कोई अनौखी बावरी
मूरत लिए हुए

कैसी अलग ये बात मैं बिन फूल के चमन हूँ।
कैसी अलग ये बात मैं बिन प्यार की लगन हूँ।

सुधारानी शर्मा

लौट कर आये न आये

मैं तुम्हारे रूप की पहचान लेकर क्या करूँगी ।
मैं तुम्हारे प्यार के मधुगान लेकर क्या करूँगी ।

प्राण मेरे विकल हैं, उच्छ्वास में भी पीर है,
आस है टूटी हुई सी औ, नयन में नीर है,
मैं तुम्हारे हास की मुस्कान लेकर क्या करूँगी ।
मैं तुम्हारे रूप की पहचान-लेकर क्या करूँगी ।।

तुम पथिक जाने कहाँ के लौट कर आये न आये,
पायलों की यह मधुर ध्वनि कल तुम्हें भाये न भाये,
मैं तुम्हारे दान का वरदान लेकर क्या करूँगी ।
मैं तुम्हारे रूप की पहचान लेकर क्या करूँगी ।।

एक क्षण के मिलन ने, रेखा सुनहरी खींच दी है,
एक पल के कथन ने, युग-युगों की पीर दी है,
मैं तुम्हारे साथ अब सम्मान लेकर क्या करूँगी ।
मैं तुम्हारे रूप की पहचान लेकर क्या करूँगी ।।

सुन्दरलाल चतुर्वेदी 'अरुणेश'

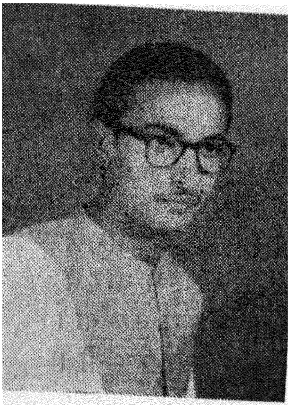

आपका जन्म उत्तर प्रदेश के गोण्डा ज़िले के मन्नीपुर नामक गाँव में ७ जनवरी सन् १९४० ई० में हुआ। पालन पोषण तथा शिक्षा बाराबंकी में हुई। १३ वर्ष की आयु में आपकी प्रथम कविता स्थानीय समाचार पत्र में छपी। तदुपरान्त धीरे-धीरे सभी पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशन होने लगा। शिशु गान नामक आपकी प्रथम पुस्तक १९६० में छप चुकी है। दूसरी प्रेस में है।

सआदत गंज,
बाराबंकी (उ०प्र०)

सुन्दरलाल चतुर्वेदी 'अरुणेश'

यदि मुझमें रहना हो

यदि मुझमें रहना हो रूपसि ! तो तुम प्राणों की पीर बनो।

मेरा संसार वहीं रहता, जा सका जहाँ संसार नहीं,
मैं उन्हें जिलाता हूँ जिनको जीने का भी अधिकार नहीं।
अपने मन के गाने उनको देता हूँ जो बेगाने हैं,
जिनके मन में झनकार नहीं, जिनको मिल पाया प्यार नहीं।

मैं उस पथ का पंथी जिस पर काँटों के अनगिन ढेर लगे,
यदि साथ निभाना हो तुम भी उस पथ की एक लकीर बनो।

मैं इतना गहरा देख जिसे सागर भी शरमा जाता है,
अँधियारा घोर गुफाओं का मुझमे ही सिमटा आता है।
मेरे अन्तर की ज्वाला ने दिनकर को जलना सिखलाया,
बस मेरा ही एकाकीपन प्रतिदिन घाटी में छाता है।

यदि मन की थाह लगानी हो तो पीड़ा बनकर आ जाओ,
तस्वीर देखनी हो मेरी सूनेपन की तस्वीर बनो।

मैं कोमल इतना फूलों को छूकर खुद ही मुरझाता हूँ,
हल्का इतना हूँ वायु बिना उड़कर अम्बर तक जाता हूँ।
सच मानो इतना नाजुक हूँ बिन मारे ही घायल होता,
बेबस इतना जीवन खोकर जिन्दा रहता पछताता हूँ।

मेरा सब कुछ पाना हो तो अपना सब कुछ खोओ रानी,
वैभव के भव से बहुत दूर होकर, अलमस्त फकीर बनो।

सुन्दरलाल चतुर्वेदी 'अरुणेश'

तुम्हीं दिखलाते हो

प्रिय ! जाते हैं जिस ओर नयन उस ओर तुम्हीं दिखलाते हो।

नभ के मेघों की मालाएँ कितनी चंचल गति पाती हैं।
झीलों की मदमाती घासें झुक-झुक जाती लहराती हैं॥

बन पवन सघन बन के मन में सिहरन भरने जब आते हो।

हरियाली धरती की, नभ की ज्वाला से जब जल जाती है।
प्राणों का घट रीता होता हर सांस व्यथा बिखराती है॥

सावन की मस्त घटा बनकर तब तुम्हीं गगन में छाते हो।

पीड़ामय कम्पित कर पड़ते जीवन वीणा के तारों पर।
फिर भी मृदु-राग उभर आता अनुराग भरी झनकारों पर॥

अंतरतम की स्वर लहरी में बनकर संगीत समाते हो।

मानस पट पर लिखने लगता कोई जब भाषा अनजानी।
जाने क्यों वह जानी जाती युग-युग की जानी पहचानी॥

उस मूक हृदय की भाषा का नयनों से अर्थ बताते हो।
प्रिय ! जाते हैं जिस ओर नयन उस ओर तुम्हीं दिखलाते हो॥

सुन्दरलाल चतुर्वेदी '[illegible]'

सपनों का संसार

सपनों का संसार न छीनो ।

उस सपनों का, जिनका मेरे मन में मधुर दुलार भरा है ।
उन सपनों का, जिनमें जीवन-साहस कर संचार भरा है ।।
उन्हें करो साकार न चाहे, जीने का आधार न छीनो ।
सपनों का संसार न छीनो ।।

इस जीवन के भीषण रण में कभी पा सका जीत नहीं मैं ।
मगर निरन्तर लड़ता आया हुआ कभी भयभीत नहीं मैं ।।
जीतूँ, लड़ना भूल न जाऊँ, इससे मेरी हार न छीनो ।
सपनों का संसार न छीनो ।।

मुझे रोकने को ही मग में बाधा का ठहराव हुआ है ।
मगर रुका मैं नहीं लगन से एक विचित्र लगाव हुआ है ।।
मैं भी मानव हूँ मंजिल तक जाने का अधिकार न छीनो ।
सपनों का संसार न छीनो ।।

उर तन्त्री के ही रागों से इस जीवन का साथ रहा है ।
धड़कन और उदासी खोने में इसका ही साथ रहा है ।
वीराना बन हृदय न ऊबे जो इसकी झनकार न छीनो ।
सपनों का संसार न छीनो ।।

सुरेश दुबे 'सरस'

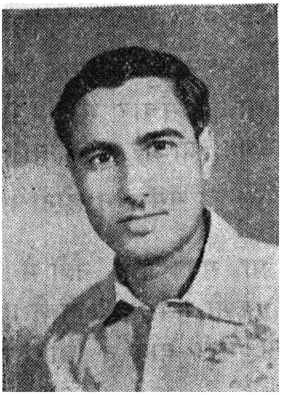

शिक्षा विभाग
नया सचिवालय,
पटना—१

'नव प्रतिभा परिषद, और 'निराला परिषद' पटना के अध्यक्ष श्री सुरेश दुबे 'सरस' का जन्म ३० जनवरी सन् १९३८ को ग्राम-बिलारी, पत्रालय-वारसलीगंज, जिला पटना में हुआ। बच्चों से लेकर बड़ों तक के लिए आपकी अब तक २० पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। कविता के अतिरिक्त कहानी, उपन्यास, संगीत रूपक, हास्य-व्यंग्य सभी लिखते है। आपकी कई कविताएँ 'टेली विजन' से प्रदर्शित एवं प्रसारित हैं तथा 'महगी' काव्य-पुस्तक के कई लोक-गीत टेप रेकार्ड भी किए जा चुके है।

'सितम्बर १९५५ ई० में से अब तक कई पुरस्कार प्राप्त किए हैं। बिहार राज्य-राष्ट्रीय-उत्सव समित में बिहार के राज्यपाल डा० जाकिर हुसैन द्वारा स्वर्ण पदक प्राप्त किया। बीमारी की अवस्था में राष्ट्र भाषा परिषद द्वारा ५०० रुपये की आर्थिक सहायता प्राप्त हुई। ११ मई १९६१ को जीवन अध्ययन मंडल पटना की ओर से भारत की उपवित्त मंत्रिणी श्रीमती तारकेश्वरी सिनहा द्वारा भी पुरस्कार प्राप्त किया है।

सुरेश दुब 'सरस'

झाँक रहा सूरज

ताड़ों की ओर से,
पहाड़ों की ओर से,
दरिया के पार आज झाँक रहा सूरज।

मधुमयी हवा वही,
खेती लहरा रही,
दूर कहीं झुरमुट से–
कोयलिया गा रही,
लालिमा छिटक गई,
कालिमा सिमट गई,
किरणों से धरती को टाँक रहा सूरज।

सरपत की झोंपड़ी,
शबनम की फुलझाड़ी,
प्राण-तरी खोल कहीं–
गायें हम दो घड़ी,
मन्द कुसुम हिल रहे,
बन्द कुमुद खिल रहे,
कण-कण के पुलकन को आँक रहा सूरज

प्राणों में सुरभि डाल,
पाटल के पुष्प लाल,
ये हुलस रहे जल में–
तैरते मगन मराल,
गुल्म-गुल्म झूमते,
धरती को चूमते,
किरणों से दुनियाँ को ढाक रहा सूरज।

वसन्त : भोर अर संध्या

१

सुख से भरा सुहावन भोर।
रेशम-सी किरणें सूरज की, उतर रही हर ओर॥

शतदल के खुलगार अधर, कण-कण में उठा हिलोर।
दुबक गए तारेगण नभ में, मचा रहे खग शोर॥
वेश सजा भूतल का नूतन, जागा हर्ष-हिलोर।
सफल हुआ है प्रातः गायन, वातायन हिलकोर॥
रस पूरित डोली बयार नद, सजो किरण की भोर।
सरस, सुखद, शीतल प्रभात, छाया समग्र इंजोर॥

२

सुख से सनी सुहानी शाम।
रेती के तट से किरणें ले रही विदा अभिराम॥

शत-शत सुमन सुरभि ले विकचे, वातावरण ललाम।
दुख का अन्त, वसन्त सुसमुदय, प्रतिपल आठों श्याम॥
वेणु किसी ने छेड़ा सरि के तट पर, ज्यों घनश्याम।
सरस, सुभीतल, सुखदायिनि-सी शाम तिरोहित घाम॥
रस-वर्षिनि बसन्त की संध्या, उतर रही हर ठाम।
सजल चाँदनी पूरित मधुमय, छवि अनन्त अविराम॥

सुरेश दुबे "सरस"

जरा प्यार से बोल दे

साधना के सुमन सूखने लग गए,
देव! अब भी नयन को जरा खोल दे।

अश्रु के फूल ले,
  मैं मनाता रहा।
    शीश पर धूल ले,
      मैं रिझाता रहा॥

पर, न तू एक पल,
  के लिए हिल सका।
    ढूंढ़ता रह गया, तू
      नहीं मिल सका॥

अर्चना के अगरु-दीप बुझाने लगे,
देव! अब भी जरा प्यार से बोल दे।

तू निठुर है, न
  विश्वास होता कभी।
    एक आशा लिए,
      जी रहा हूँ अभी॥

इसलिए होम की
  अग्नि सुलगा रहा।
    औ, मिलन-यज्ञ का
      गीत मैं गा रहा॥

वन्दना के मधुर स्वर लगे काँपने,
प्राण में देव! अब भी सुधा घोल दे।

सुश्री कुमुद

महंत दर्शनदास
महिला कालेज,
मुजफ्फरपुर (बिहार)

मुजफ्फरपुर (बिहार) के महंत दर्शनदास महिला कॉलेज में अंग्रेजी की लेक्चरर सुश्री कुमुद का जन्म सन् १६४१ ग्राम–मरबन, मुजफ्फरपुर में हुआ। आपने १६६१ में एम० ए० किया है। मई १६६२ में पटना विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के, अध्यापक श्री रामलखन शुक्ला के साथ आपका विवाह सम्पन्न हुआ। हास्यरस के सुप्रसिद्ध कवि श्री राम जीवन शर्मा 'जीवन' की आप सुपुत्री हैं। पैतृक सम्पति के रूप में कविता की प्रेरणा मिली। ८ वर्ष की आयु में प्रथम बालकविता लिखी। कहानियाँ तथा लेख भी लिखे हैं। आकाशवाणी से बहुधा रचनाएँ प्रसारित होती रहती हैं। 'फुलझड़ियाँ' बालोपयोगी कविताओं का एक संग्रह प्रकाशित भी हो चुका है। 'क्षितिज के पार', 'काँटों में फूल' (कविता संग्रह) 'कागज की नाव' (बालोपयोगी कविताएँ) 'परछाइयाँ घूमी' (नई कविताएँ) 'जीने की लत' (कहानी संग्रह) शीघ्र प्रकाशित हो रहे हैं।

सुश्री कुमुद

नींद न अब तक आई

सोच रहा क्या चाँद शिथिल हाथों पर चिबुक दिए ?
इतनी रात गए !

फैल रही चाँदनी चतुर्दिक
उर के सूनेपन सी
डोल रही पुरवैया हौले
आशंका कुल मन सी

टूट रहे जल-जल कर नभ के सपने नए-नए !
इतनी रात गए !

'पिया कहाँ' रे पागल, तेरी
बान न अब तक छूटी
बीते युग के युग, लेकिन
आशा की डोर न टूटी

टेर रहा किसको उर पर यह दुर्वह भार लिये !
इतनी रात गए !

स्नेह चुक चला, जली वर्तिका,
दीप - शिखा मुरझाई
किस परदेशी की आशा में
नींद न अब तक आई !

राह देखते किसकी अपलक शत-शत लोचन ये ?
इतनी रात गए ?

सुश्री कुमुद

देव मगर पाषाण मिला है

युग-युग से तप रहा पुजारी, देव मगर पाषाण मिला है।
मुझको भी जीवन में सजनी, यह कैसा वरदान मिला है ?

होंगे जन वे अन्य, पहुँच
पाते हैं जो अपनी मंजिल पर
होंगे मन वे अन्य, मुखर
होते हैं जिनके सपनों के स्वर

मुझको तो चुपचाप, निरन्तर चलने का संधान मिला है
मुझको भी जीवन में सजनी यह कैसा वरदान मिला है ?

'कुहू-कुहू' कर गाती कोयल
मन कुछ तो हल्का हो जाता
'पिया कहाँ' चीखता पपीहा,
जग कुछ तो ममत्व दिखलाता

मुझको तो सागर के अन्तर का अविचल तूफान मिला है।
युग-युग से तप रहा पुजारी, देव मगर पाषाण मिला है !

झड़ते पंख, शलभ जल, गिरता
सारी व्यथा शेष हो जाती
धन्य-धन्य, यह प्रेम धन्य
यह आत्मसमर्पण दुनिया गाती

तिल-तिल गल-गलकर, जल-जलकर हँसने का अभिमान मिला है।
मुझको भी जीवन में सजनी, यह कैसा वरदान मिला है ?

सुश्री कुमुद

हूक उठी कैसी यह मन में

कूकी कोयल दूर विजन में,
हूक उठी जाने क्यों मन में !

निद्रालसा धरा का अन्तर
काँपा, बदन हुआ रोमांचित
अम्बर की आँखों से छल-छल
ढुलक पड़े आँसू के कण सित
सिसक उठे तारे मुँह ढक, छिप
चला चाँद अपने आँगन में !
कूकी कोयल दूर विजन में !

'कुहू कुहू' किस परदेशी को
याद अचानक मन में आई
'कुहू कुहू' किस भूली स्मृति में
फूल उठी मन की अमराई
किसने रे यह आग लगाई
मेरे इस निश्छल जीवन में ?
कूकी कोयल दूर विजन में।

आज अचानक प्यास जगी यह
कैसी तन-मन में अनजाने
एक अपरिचित व्यथा लगी सखि,
हृदय-क्षितिज पर चुप-चुप छाने
उड़ा विहंगम नीड़ छोड़ निज
जाने किन सपनों के वन में !
कूकी कोयल दूर विजन में !

सुश्री विनोदिनी

दर्शनदास महिला कालेज
मुजफ्फरपुर (बिहार)

बिहार के मुजफ्फरपुर जिलन्तर्गत मरबन ग्राम में सन् १९४३ में आपका जन्म हुआ। हास्य रस के सुप्रसिद्ध कवि श्री रामजीवन शर्मा 'जीवन' की आप कनिष्ठा पुत्री हैं और कवयित्री सुश्री कुमुद की छोटी बहन। परिवार का वातावरण साहित्यक होने के कारण बचपन से ही कविता, कहानी लिखने के प्रति अनुराग रहा। आलोचनात्मक साहित्य के पठन एवं लेखन के प्रति विशेष झुकाव है।

सन् १९६१ ई० में आपने हिन्दी में एम० ए० किया है।

सम्प्रति मुजफ्फरपुर के महन्त दर्शनदास महिला कालेज में हिन्दी की लेक्चरर हैं।

सुश्री विनोविनी

सूनापन मेरे आँगन में

आहों को भीतर दबा-दबा कर मैं हँसती,
फिर भी दुनिया इर्ष्या करती तो किया करे

की चेष्टा बहुत प्रसन्न रखूँ तुमको जग को
रख सकी नहीं, दूँ दोष कहो तुम ही किसको ?
अपने सारे अरमानों की बलि देकर भी
मैं दे न सकी आह्लाद तुम्हारे अन्तर को

हो मुझे मुबारक यह कड़वा हालाहल ही
दुनिया पीती है अमृत कलश तो पिया करे

फूलों का प्रमुदित हास चाहते तुम मुझमें
ऊषा का मृदुल विकास चाहते तुम मुझमें
वृक्षों की टहनी पर बैठी उन विहंगों के—
दल का मंजुल परिहास चाहते तुम मुझमें

पर सूख चुका है मेरे प्राणों का रस अब, इन
से ही जग जीना चाह रहा तो जिया करे

सावन के बादल फैले मेरे लोचन में
ढलते सूरज का मौन मुखर क्रंदन मन में
मेरी उन्मुक्त हँसी से मुखरित नील गगन
पर कैसा यह सूनापन मेरे आँगन में

आँखों में जो ये शेष बचे मोती उनको
भी चाह रहा लेना यदि जग, तो लिया करे !

सुश्री विनोदिनी

अब तक तिल-तिल जलती आई

मेरी यह हँसी मुनहले तानों से निर्मित
मेरी यह हँसी रुपहले गानों से निर्मित
मधुऋतु के पहले ही जो असमय बिखर चले
जीवन के उन कुचले अरमानों से निर्मित

यह हँसी प्रथम छिटकी थी माँ के अंचल
जब जग को विस्मित देख अचाकन अधर हिले
सूने अंतर में एक ज्योति रेखा फैली,
उस विषय वेदना में भी माँ के प्राण खिले

वह हँसी पुनः फूटी यौवन के हलचल में
जब अलसाते सपने मेरे स्मिति बन धाए
कर फिरे गगन में पर पानी बरसे जब तक
हो पवन थपेड़ों से आंदोलित, छितराए

यह हँसी कि जो मुझको भी है छलती आई
यह हँसी कि जो आहों से ही पलती आई
जो दीपशिखा सी भीषण तूफानों में भी
हँस-हँसकर ही अब तक तिल-तिल जलती आई

सुश्री विनोदिनी

मैंने कुछ रेखायें खींचीं

मैंने जो तसवीर तुम्हारी आँकी, वह रह गई अधूरी।

वह अनंत सौन्दर्य न रेखाओं की सीमा में बँध पाता
वह भावों का अतुल ज्वार रंगों के बंधन में न समाता
वह लोकोत्तर प्यार तुम्हारा, भौतिक सारे साधन मेरे
तुम असीम, सीमाएँ मेरी, कैसे तय कर लूँ यह दूरी

बड़े यत्न से सहज सजाकर मैंने कुछ रेखाएँ खींचीं
पड़ने लगीं दिखाई वे अक्षम, तेरी तुलना में फीकी
ढरक गयी स्याही सहसा, नन्हीं दुर्बल उँगलियाँ काँपी
हिली तूलिका मेरी यह लघुकृति न हाय हो पाई पूरी
मैंने जो तसवीर तुम्हारी आँकी वह रह गई अधूरी

सूर्य सक्सेना

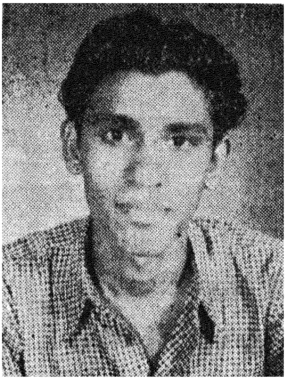

तरुण कवि श्री सूर्य सक्सेना का जन्म ५ अगस्त सन् १६३६ को उज्जैन (म० प्र० में) हुआ। शिक्षा-स्थल-मुरैना (म० प्र०) रहा। बचपन से ही काव्य एवं चित्र कला की ओर रुचि रही। सन् १६५२ से सृजन की ओर उन्मुख हुए।

'प्रभात' (साप्ताहिक) 'नव प्रभात' 'आरसी' 'वीणा' 'पंचायत' साप्ताहिक 'कृषक जगत' 'मध्यभारत संदेश' 'राजस्थान विकास' 'मध्यप्रदेश संदेश' आदि पत्रों में आपकी कविताएँ प्रकाशित हुई हैं।

सन् १६५८ से आकाशवाणी द्वारा भी कविताएँ प्रसारित होती रहती हैं।

नार्थ टी० टी० नगर,
क्वार्टर नं० ८/६
भोपाल (म० प्र०)

आँख का काजल सँभालो

आज कुछ मौसम भला है,
औ' पवन भी मनचला है,
उड़ न जाये और कस कर–
दाँत से आँचल दबा लो।

दृष्टि के सौ शर सँभाले, मस्त मदमाते नयन हैं,
हाथ की मेंहदी महकती, औ' महावर युत चरण हैं,
रूप की आभा रुपहरी,
है प्रखर जैसे दुपहरी,
धुल उड़ती पुछ न जाए, आँख का काजल सँभालो।

गाल पर बिखरी तुम्हारे भोर की ऊषा सुहानी,
औ' हिमाचल को चुनौती दे रही अल्हड़ जवानी,
हास अधरों पर बिछा है,
अलक में पावस-निशा है,
इंगितों पर झुक न जायें, रूप के बादल सँभालो।

कल्पना जैसी मधुर हो, भावना जैसी सरल हो,
लाज-सी सुन्दर सलौना, ओस के कण-सी सजल हो,
पूर्णिमा की चाँदनी हो,
हंस की अनुगामिनी हो,
पंथ में भरमा न जाये, पाँव की पायल सँभालो।

सूर्य सक्सेना

भ्रमर के मुखरतम इशारे नहीं

अभी रोशनी के न द्वारे खुले हैं—
अभी केश तम ने सँवारे नहीं है।
घिरो हैं गगन पर घनेरी घटायें,
अभी रात की ना घटी है उदासी।
किरण के अलस ऊंघते से नयन हैं,
क्षितिज पनघटा पै खड़ी भोर प्यासी।

पड़ी गोद में पल्लवों के कली है—
भ्रमर के मुखरतंम इशारे नहीं है।

अभी पायलों की न झंकार जागी,
अभी छप्परों में न चक्की चला है।
दबा दाँत से आँचलों के किनारे,
अभी कमसिनों की न टोली चली है।
कि जो सिन्धु में ज्वार सौ-सौ उठाये
चले सैन के वे दुधारे नहीं हैं।

अभी सूखते गागरों के गले को,
भरे नीर उर में न पनघट मिला है।
अभी पल्क खोली न बादेसवा ने,
अभो तो न मौसम से कुछ भी गिला है।
कि जिनके पलक खोलते भोर होतो,
किसी ने नयन वे उघारे नहीं है।

हम तुम्हारे लिए

झूमती-सी नजर आ रही है जमी
झूमता-सा नजर आ रहा है गगन।
आज की रात तो देखने दो मुझे--
लाज के भार से जो झुके है नयन।

एक युग से सहेजे हुए प्यास था,
आज तट पै रखो और प्यासा नहीं।
हर तरफ आश की है शमां जल रही,
लग रहा है कहीं भी निराशा नही।

पास आओ तनिक और मेरे प्रिये!
औ, नजर से नजर का करो आचमन।

देख लो अँजली में हजारों सुमन,
फिर न कहना चमन में बहारें नहीं।
तुम रहो दूर इतना कि ज्यों चन्द्रमा,
यह न सम्भव कि तुमको पुकारें नहीं।

सत्य के हर शिखर पर चढ़ी कल्पना
आत्मा से हुआ आत्मा का मिलन।

तुम हमारे लिये, हम तुम्हारे लिये,
अग्नि के सामने ले चुके हैं कसम।
कल तलक तो मुझे जिन्दगी भार थी,
आज लगता सफल हो गया है जन्म।

विश्व तो अनुभवों का बड़ा ग्रन्थ है–
पृष्ठ खोला करें आज मिल कर मनन।

सोमदत्त गर्ग

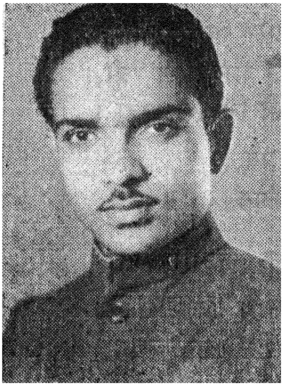

साहित्य कला सम्बन्धी पुस्तकों में विशेष रुचि रखने वाले कवि सोमदत्त गर्ग का जन्म सन् १९३९ ई० में जबलपुर में हुआ। आपके पिता श्री सुदामा प्रसाद गर्ग एडवोकेट हैं। आपने सन् १९६१ में पशुचिकित्सा विज्ञान में स्नातक की उपाधि प्राप्त की। लगभग ३ वर्ष से साहित्य सृजन कर रहे हैं। कविताओं के साथ कहानियाँ, लेख भी लिखते है। कविताएँ 'कल्पना' ज्ञानोदय 'कादम्बिनी' भारती 'वासंती वीणा' आदि मासिक पत्रों में प्रकाशित हुई हैं।

आजकल आप शासकीय सेवा कर रहे हैं।

९४/१८ १२५० क्वाटर्स,
भोपाल (म० प्र०)

मेरे गीत बहुत गीले हैं

वैसे तो हममें समानता काफी कुछ मिलती है लेकिन,
उमर तुम्हारी खरी धूप सी, मेरे गीत बहुत गीले हैं।
तुमने मौसम के मालिक की
मेहरबान नज़रें पाई हैं,
मुझपर दरबानों का पहरा
दरवाजों की परछाई हैं।
वैसे तो हैं फूल बहुत से हम दोनों की ही डलिया में,
पास तुम्हारे ताजी कलियाँ, मेरे फूल बहुत पीले हैं॥
खुशियों की तुमसे है रिश्तेदारी
मेल-जोल काफी है,
बोलचाल मेरी भी उनसे, दुख का
कर्ज मगर बाकी है।
वैसे तो हम दोनों के स्वर में आकर्षण लाजबाब है,
खिलखिलाहटें पास तुम्हारे, मेरे तो स्वर दर्दीले हैं।
तुम्हें बीहड़ों में चलने के मौके
कभी कभी आये हैं,
मेरे पावों ने पर हरदम
ऊबड़-खाबड़ ही आये हैं
वैसे तो हम दोनों ने ही सफर तय किये हैं जीवन के,
किन्तु तुम्हारी राह रेशमो, मेरे तो पथ पथरीले हैं।
तुम्हें तुम्हारे मन की, मनमानी
करने की छूट मिली है,
मगर बंद ही पाई अक्सर
मैंने मन की सपन गली है,
वैसे तो हम दोनों की ही पलकें भरी-भरी रहती हैं,
किन्तु तुम्हारी पलक महफिलें, मेरी पलक मौन टीले हैं।

मौसम सब बीत गये

केवल पिछली यादें भेजे सौगातें मन
प्राण उन्हें व्यर्थ समझ वापस मत कर देना
जीवन के भरे भरे
क्षण सारे रीत गये,
सपनों के उन्मादक मौसम
सब बीत गये,
बीत गये मौसम के पाहुन घर आयें तो
बेमौसम मेघ समझ, वापस मत कर देना

रेशमी जुन्हाई के सपन
सभी टूट गये
चंचल शहनाई के कंपन
सब रूठ गये,
रूठी शहनाई के सपन अगर आयें तो
पलकों का भार समझ वापस मत कर देना

भोले आकर्षण के सैलानी
हँस गये,
नर्म नर्म गीतों के रूमानी
पंख गये,
सैलानी हंस गगन झील अगर आयें तो
मोती का खर्च समझ वापस मत कर देना

सोमदत्त गर्ग

अन्तर की परत जरा धीरे से खोलना

चुप्पी इस कोने में
उस कोने बोलना,
अन्तर की पर्त जरा
धीरे से खोलना।

जाने किस संशय में
हरियाली मुरझ गई,
सुरभी थी बेल मगर
जाने क्यों उरझ गई,
फूलों की डाल जरा
धीरे से डोलना।

ओटें सब लाँघ गई
दोनों तट फाँद गई,
डूबे सम्मोहन से
पोर-पोर बाँध गई,
बातों की बाग जरा
धीरे से मोड़ना।

दो जन के बीच खड़ी
निश्चय की कठिन घड़ी
हँस हँस कर ताक रही
लगन अगिनवान जड़ी,
ज्वाल जड़ी गाँठ, जरा
धीरे से जोड़ना।

चुप्पी इस कोने में
उस कोने बोलना॥

स्वामीशरण सक्सेना

बी० ए० एल-एल० बी०, धर्म विशारद, साहित्यरत्न, विज्ञानालंकार तक शिक्षा प्राप्त श्री स्वामीशरण सक्सेना का जन्म २१ अगस्त स १९३३ ई० को छतरपुर (म० प्र०) में हुआ। आप अपने बाबा श्री ब्रजलाल जी सक्सेना की छत्र-छाया में पले। माँ के ममत्व को स्पर्श करने का सौभाग्य आपको नहीं मिला। अन्याय, अत्याचार और भ्रष्टाचार के विरुद्ध संघर्ष करने के कारण आप दो बार शासकीय सेवा से मुक्त हुए। फल-स्वरूप निरंतर आर्थिक कष्ट सहने पड़े। कविताओं के अतिरिक्त लेखन की सभी विधाओं में सिद्ध-हस्त हैं। आपकी रचनाएँ समय-समय पर पत्रों में प्रकाशित होती रहती हैं। ६–७ पुस्तकों की पण्डुलिपियाँ प्रकाशनार्थ तैयार हैं।

११४३/१, राजगढ़ वार्ड,
दतिया (म० प्र०)

स्वामीशरण सक्सेना

तुम से प्यार करूँ कैसे

उस पार लौटकर तुमसे प्यार करूँ कैसे !
मरु में मृग-तृष्ण से अभिसार करूँ कैसे !!

प्यास लगी, संमुख वारिधि, फिर भी मैं प्यासा;
क्षीणदीप की धूमिल रेखा मेरी आशा ;
सत्य हुए कब क्षण को जीवन के मृदु सपने—
शून्य - गगन - वैभव से शृंगार करूँ कैसे !
उस पार लौटकर तुमसे प्यार करूँ कैसे !!

कवि हूँ, पर इसका तो अर्थ नहीं मिट जाना ;
दुखित वेदना से अंतर का मधु लुट जाना ;
नखत प्रात के निष्प्रभ बोलो कुछ तो बोलो—
ज्वालाओं का पर्व कि उपहार वरूँ कैसे !
उस पार लौटकर तुमसे प्यार करूँ कैसे !!

कल-कल करतीं लहरों के कल गीत मधुर थे ;
तट के विश्वासों के कल प्रिय मीत निठुर थे ;
उच्छ्वासें बन कर भटका स्वप्निल आलिंगन—
अब अंतर के व्रण का उपचार करूँ कैसे !
उस पार लौट कर तुमसे प्यार करूँ कैसे !!

मैं हलाहल को निरंतर

मीत—मेरी वेदना के आज भी सपने सँजीले !

मूक स्मृतियों के निलय में गूँजते रहते निरंतर
व्यंग करती है मिलन पर आज भी तो अट्टहासी,
देखता पथ दूर नभ में डबढबाया एक तारा
साँझ की जलती चिता पर रात की व्याकुल उदासी,
मैं तड़प उठता व्यथा से चौंक उठते स्वप्न-शिशु से—
प्यास लेकर चातकों की जागते उच्छ्वास गीले !
मीत—मेरी वेदना के आज भी सपने सँजीले !!

× × ×

पी सुरा मादक दुखों की भूल सारी लालसायें,
चोट औ' अपमान सहकर मुसकराती जिन्दगी है ;
खेलती अब कंटकों से फूल कुसुमों की जवानी
कर रही जल घाव शीतल अग्नि जो उर से लगी है ;
मैं हलाहल को निरंतर दे रहा अमरित अधर का—
आँसुओं की राख से मिल हो रहे तन-मन रँगीले !
मीत—मेरी वेदना के आज भी सपने सँजीले !!

× × ×

कल प्रकृति के शून्य उर में एक था कंकाल सोया,
याद कर जिसकी अनागत और आगत काल रोया ;
सींच निज को उस रुदन से शप्त जीवन के विलय में
हर्ष के शाश्वत सृजन का चिर व्यथा ने बीज बोया ;
औ' लिखी विधि ने कहानी इस क्रमिक बिछुड़न-मिलन की
कर रहे जग सिद्ध जिसको प्रेम योगी चिर हठीले !
मीत—मेरी वेदना के आज भी सपने सँजीले !!

स्वामीशरण सक्सेना

दीप आँधी में जलेगा

दीप आँधी में जलेगा !!
मोह से छलते रहे हैं आज तक विश्वास मेरे;
आंय चीवन के शिशिर में प्राण के मधुमास मेरे;
हो न पाई है अभी तक तृप्त कोई भी पिपासा
दे सके विर्वास केवल प्यार के आवास मेरे;
किंतु फिर भी यदि किसी दिन मिल सका इङ्गित तुम्हारा—
शाप हर कर पतझरों का फूल काँटों में खिलेगा !
दीप आँधी में जलेगा !!

जानता संभव नहीं अब स्वप्न को साकार करना;
और छाया में तिमिर की ज्योति का आगार भरना;
दूर उतना मैं यहाँ हूँ दूर जितनी नभ-धरा है
है कठिन अब शून्य में बस सृष्टि का आधार धरना;
किंतु फिर भी यदि किसी दिन मिल सका दर्शन तुम्हारा—
वेध युग के अंतरों को कूल धारों में पलेगा !
दीप आँधी में जलेगा !!

हो गया जल राख माना स्वप्न झूठी साधना का;
और था मारीचिका-सा सत्य हत-आराधना का;
रह गया है अब न कोई एक भी संबंध बाकी
गत प्रणय की चेतना से आज को जड़-यातना का;
किंतु फिर भी यदि किसी दिन मिल सका संबल तुम्हारा—
ताप हर कर मरुथलों का वारि प्यासों को मिलेगा !
दीप आँधी में जलेगा !!

हरिदत्त पालीवाल 'निर्भय'

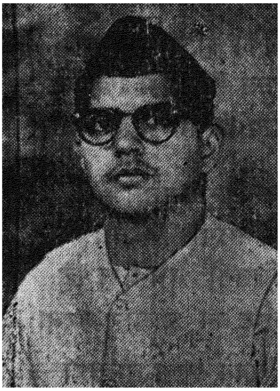

उपमन्यु भवन
कायमगंज,
फ़र्रुखाबाद (उ० प्र०)

आचार्य 'प्रज्ञाचक्षु जी ने आपके सम्बन्ध में एक जगह लिखा है कि—

कविता-सरिता में मगन,
द्विज-कुल - कमल - पतंग।
कविवर 'निर्भय' रहत है,
ज्यों हरि-जन, हर-संग।

आपकी जन्म-तिथि मार्गशीर्ष, कृष्ण ५ सं० १९७७ वि० है। पिता महामहोपाध्याय पं० मथुरा प्रसाद पालीवाल हैं। आप हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत, बंगला, अँग्रेजी भाषा के कुशल ज्ञाता हैं। ७ पुस्तकें संस्कृति की और १६ हिन्दी की अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं। काव्य-महाकाव्य, खण्डकाव्य, आलोचना, उपन्यास, कहानी, नाटक सभी विधाओं में सिद्ध हस्त हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में काफी समय से हैं। सात-आठ मासिक, पाक्षिक, साप्ताहिक पत्रों का सम्पादन किया है। वर्तमान में दो-तीन मासिक पत्रों के सम्पादक हैं।

हरिदत्त पालीवाल 'निर्भय'

नव निर्माण किया करता हूँ

अभिशापों की दुनिया में, मैं नव-निर्माण किया करता हूँ।
जहाँ मृतक तन को आँसू की
बरसातें ढाँका करती हैं,
जहाँ जीर्ण वसनों से बेवस
लज्जाएँ झाँका करती हैं;
वहीं वेदना के धागों से, उर के घाव सिया करता हूँ।
अभिशापों की दुनिया में, मैं नव-निर्माण किया करता हूँ॥

जहाँ कि चिन्ता कुल तन लख कर
चिन्ता खुद चकरा जाती है,
जहाँ मौत का दृश्य देख कर
मौत स्वयं घबरा जाती है;
वहीं हलाहल के घूँटों को, सुधा प्रदान किया करता हूँ।
अभिशापों की दुनियाँ में, मैं नव-निर्माण किया करता हूँ॥

मेरे गीतों की भाषा में
युग-युग की अभिलाषा संचित,
मेरे गीतों की भाषा में—
जीवन की परिभाषा सीमित;
अतः प्रलय की नादानी पर, मैं मुसकरा दिया करता हूँ।
अभिशापों की दुनियाँ में, मैं नव-निर्माण किया करता हूँ॥

हरिवंश पालीवाल 'निर्भय'

तुम सदा चलते चलो

है कंटीली राह काँटों को, मगर तुम दलते चलो।
पाप के परिणाम पुण्यों—
को भले ही मात कर दें;
वेदना के शूल चाहे
जीर्ण सारा गात कर दें।
मौत भी थक जाय लेकिन, तुम सदा चलते चलो।
है कंटीली राह, काँटों को, मगर तुम दलते चलो॥

आ रही हैं आँधियाँ, बुझ
जायँगे दीपक सबेरे।
दफन होंगे बादलों में
चाँद, ग्रह, सूरज घनेरे॥
प्राण का दीपक सँजोए, किन्तु तुम जलते चलो।
है कँटीली राह, काँटों को, मगर तुम दलते चलो॥

घाव पर भू के हिमालय भी,
पिघलना बन्द कर दें।
और चातक की चिता पर,
घन बरसना बन्द कर दें॥
किन्तु अपनी बीन के तुम, चार स्वर मलते चलो।
है कँटीली राह, काँटों को, मगर तुम दलते चलो॥

हरिदत्त पालीवाल 'निर्भय'

मङ्गल-गान मिला करते हैं

झंझा की वाणी में मुझको, मङ्गल-गान मिला करते हैं ॥

जिसके मन का महल कि,—बनने से पहले ही मिट जाता है,
जिसका आशा-दीपक, जलने से पहले ही बुझ जाता है।
जहाँ अभाग्य दुःखों के पल को, तिल से ताड़ किया करता है,
जिसके अरमानों से निर्मम, जग खिलवाड़ किया करता है।
उसी रङ्क की कुटिया में, मुझको भगवान मिला करते हैं।
झंझा की वाणी में मुझको, मङ्गल-गान मिला करते हैं ॥

मिट्टी में दफने दाने को, बट बनकर उठते देखा है,
झुलसे सागर की आहों को, घन बनकर घिरते देखा है।
मेरे वक्षस से टकरा कर, पत्थर भी मृदु फूल बने हैं,
मुझे बाँध कर जल के घेरे, भी सरिता के कूल बने हैं।
यों ही मुझको अभिशापों में, चिर वरदान मिला करते हैं।
झंझा की वाणी में मुझको, मङ्गल-गान मिला करते हैं ॥

ज्वाला से डर दीप-शिखा पर, सुलभ न 'निर्भय' घूम सकेगा,
अलि काँटों से डर गुलाब की, कलियाँ कभी न चूम सकेगा।
जल के भीषण तूफानों को, रोक सके कब क्षुद्र किनारे,
जन्म-मरण क्या बाँध सकेंगे, तूफानी अरमान हमारे।
काँटों में ही फूल सदा, भर-भर मुसकान खिला करते हैं।
झंझा की वाणी में मुझको, मङ्गल-गान मिला करते हैं ॥

हरि श्रीवास्तव

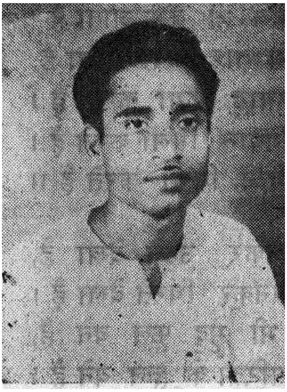

आपकी जन्म-तिथि सन् १९४१ ई० है। ग्यारह वर्ष की अवस्था में प्रथम कविता लिखी जो संयोग से 'विनोद' नामक पत्रिका में छपी। आगे लिखने की प्रेरणा यहीं से उत्पन्न हुई। तब से बराबर लिख रहे हैं।

अध्यापन और चिन्तन में पर्याप्त रुचि है। 'कल्पना', 'परिवर्तन' और 'अनुभूति के स्वर' कविता संग्रह प्रकाशनार्थ तैयार हैं। इन दिनों 'जेतवन' नामक खण्ड काव्य लिखने में व्यस्त हैं।

जगत जीत कालेज,
इकौना, जि० बहराइच (उ०प्र०)

हरि श्रीवास्तव

'आज-कल'

आजकल कहकर न दो तुम सान्त्वना !
मैं सत्य के आदर्श पर विश्वास करता हूँ।

आज को कल तुम कहोगे कल
और कल से दूर होगा कल।
आज दिन कुसमय उठेगी बात
कल कहोगे रात में फिर कल।
भ्रान्त क्रम में क्यों जगाते वासना ?
मैं प्रेम के आदर्श पर विश्वास करता हूँ।

आज जग का प्रात नव जीवन
और कल अज्ञात, तम सूचन।
आज मंगल साधना का आज
कल अप्रस्तुत अन्त का पूजन।
भाग्य पर निर्भर तुम्हारी कामना !
मैं कर्म के आदर्श पर विश्वास करता हूँ।

शून्य निर्जन में न ढूँढ़ो गीत
सुप्त तारों में सरस संगीत।
स्वप्न से माँगो न तुम वरदान
मृत्यु से तुम प्राण-तन की प्रीत।
शब्द - पुंजों से न दो प्रस्तावना !
मैं भाव के आदर्श पर विश्वास करता हूँ।

दो पटों के बीच जीवन

मैं धरा के गीत गाना चाहता हूँ
पर अधूरे गीत क्या गाऊँ!
विश्व युग का फूल बनकर खिल रहा है
प्रेम का उपहार मुझको मिल रहा है
नयन माया के परस उर ले रहे हैं
इस धरा के अश्रु बंधन दे रहे हैं
मैं क्षितिज के पार जाना चाहता हूँ
पर अपरिचित राह क्या जाऊँ।
दो पटों के बीच जीवन पल रहा है
हर निमिष इतिहास बनता चल रहा है
ज्ञात में अज्ञात का स्वर आ रहा है
सृष्टि का सिंदूर भी मुस्का रहा है
मैं सृजन का सार पाना चाहता हूँ
पर अलक्षित द्वार क्या पाऊँ।
दूर नभ के पार कोई गा रहा है
मौत का संगीत छन-छन आ रहा है
आज तम का दीप जलता जा रहा है
कौन रे! उस पार छलता जा रहा है
मैं उसी के पास जाना चाहता हूँ
पर अपरिचित रूप क्या पाऊँ।
सत्य है मानव बदलता जा रहा है
काल परिवर्तन नवलता ला रहा है
प्रगति का सौंदर्य खिलता जा रहा है
ज्ञान को उत्थान मिलता जा रहा है
मैं जगत का प्यार पाना चाहता हूँ
पर क्षणिक उन्माद क्या लाऊँ।

सुरभि सनी बहार में

वीणा के तार कौन छू गया, झंकृत हो स्वरलय में हो गये।

थिरक-थिरक उठी आज चाँदनी
पुलक-पुलक उठी आज यामिनी
प्रीति की सुरभि सनी बहार में
महक-महक उठी आज रागिनी
श्वासों के सरगम में गूंज कर
पीड़ा आकुल बंधन तोड़ चली

प्राणों को तान कौन दे गया, जीवन के गान मुखर हो गये।

स्वप्न की अदृश्य राह खुल गई
दृष्टि को समाधि आज मिल गई
चाह की कली किसी पुकार पर
मुग्ध झूम-झूम आज खिल गई
यौवन की मादक मनुहार में
भावों की चंचल गति जाग उठी

दीपों में स्नेह कौन दे गया, शत्-शत् तम ज्योतिमय हो गये।

कण-कण में दर्शन उल्लास है
क्षण-क्षण पर इंगित का भास है
सिहर भरे शतरंगी चित्रों का
सुधियों में सुन्दर इतिहास है
रेशम-सी मृदुल किरण गात की
छाया अवगुंठन से झांक रही

मेघों को हास कौन दे गया, पावस के रंग प्रखर हो गये।

हरीश

विनोद भवन
स्टेशन रोड,
उदयपुर (राज०)

आपका जन्म सन् १९३२ ई० में हुआ। बचपन राजस्थान में, शैशव मालव में और शिक्षा दीक्षा राजस्थान एवं उत्तर प्रदेश इलाहाबाद में हुई। गीत रचना सन् १९५० से कर रहे हैं धड़कनों के बोल, दर्द जिन्दगी, और 'भीलों के आंचल से' गीत-संग्रह प्रकाशनार्थ तैयार हैं।

आशा, 'प्यासा और पनघट' मुक्त संग्रह। नाटककार, आलोचक तथा शोध स्नातक। आदि काल का हिंदी साहित्य शोध के पन्ने, अनुभूति और अभिव्यक्ति, आदिकाल का हिन्दी गद्य साहित्य आदिकाल का अज्ञात हिंदी रास काव्य, प्रकाशित पुस्तकें हैं।

आप राजस्थान साहित्य अकादमी से १०००) का पुरस्कार पा चुके हैं। प्रकृति और बाल जगत के प्रेमी हैं। आकाशवाणी केन्द्र लखनऊ, इलाहाबाद तथा जयपुर से रचनाओं का समय-समय पर प्रसारण होता रहता है।

आज-कल हिंदी विभाग एम० बी० कालेज, उदयपुर में प्राध्यापक हैं।

हरीश

यह चैता की रात

यह चैता की रात और यह चाँदनी
पाहुन ! प्यार खुमारी बन कर रह गया
नीमों के बौरों में डूबे चाँद को
देख-देख यह मन बालक सा खो गया
धानी आँचल को पलाश ने रंग दिया
पके हुए गेहूँ सा यौवन हो गया
ऐसे में कोई तन को झकझोर कर
हर-सिंगार की बात कान में कह गया
कल ही तो बगिया के आँगन गूँज थी
भ्रमरों की वंशी की मादक मोहनी
और आज जैसे खुशियों की क़ब्र पर
पढ़ा गया मर्सिया रागिनी सोहनी
अँगराग सपनों सुधियों का कारवाँ
आँसू का दरिया ले सब कुछ बह गया
अब अशोक गुल मुहर और कचनार के
किसलय कुंजों में यह कैसी आग है
अब अनार के फूल न जियरा मोहते
जनम जली दुपहरियाँ राग विहाग है
हिया पक गया है कपास के फूल ज्यों
यह पियराया तन दर्दों को सह गया
पतझर फागुन में फगुवा मधुमास में
बदल गये ज्यों अस्ताचल की आँख हो
जीवन की उपमाएँ सब कुहरा गईं
चिंगारी के ऊपर जैसे राख हो
गहराए मेघों से फिर छितरा गये
सपनों का प्रसाद बना और ढह गया

हरीश

पीड़ाएँ अन्तस में गहरी

पीड़ाएँ अन्तस में गहरी पैठ गई हैं
ऊपर से मन को बहलाया करता हूँ
अधर बन्द है किसी शाप के कारण जैसे
मौन घुटन का प्रहरी बन कर बोल रहा है
साँसें टूट-टूट कर अंगारों सी जलती
लगता कोई मूक व्यथा को तौल रहा है
वाणी को क्या कहूँ हो गई गूंगी बहरी
उभरे घावों को सहलाया करता हूँ
छान-छान कर कोई स्वर को पीर पिलाता
अनगिन अभिसारों ने हो तो भेद दिया है
कैसे कहूँ तुम्हें इस आँगन में बैठोगे ?
जाने किसने मनुहारों को वेध दिया है
सभी ज्वार भूकम्प दबा कर हिया भर गया
बोझिल-बोझिल बोलों से गाया करता हूँ
आज उदासी ने भी मुझसे वचन ले लिया
उसका संग न छोड़ूं हर भीगे मौसम में
रही सही खुशियाँ सारो बदनाम हो गईं
कलम सुहागिन डूबी द्वार-द्वार के ग़म में
युगों-युगों से दरस परस का कर्ज़ चुकाने
ऊपर से केवल मुस्काया करता हूँ
अक्षर की पूजा में अर्घ्य बना कर सारे
चढ़ा दिए हैं छन्द, अधूरे सपन बचे हैं
साँझ सकारे कई चितवनों ने छल डाले
शापित दाग़िल मन से मैंने गीत रचे हैं
धूएँ ने सहसा ही घेर लिया है गति को
डरते-डरते चरण बढ़ाया करता हूँ ।

हरीश

चलने दो गीतों का बल है

रोको मत मधुमासी माँझी ! चलने दो गीतों का बल है
रोज ढला करती है मेरी सुबह शाम की यह परछांई
तृप्ति मुझे बदनाम समझ कर कहती है कमजोर कलाई
कैसे तुमको यह बतला दूँ, मुझको सुधियों का संबल है

तुम सुख को लेकर आए पर, पीड़ा मेरी पीर बँटाती,
कष्टों की गहराई मेरे रोम-रोम को है सहलाती
चंचलता का ब्याह रचा दूँ, क्वांरा आँखों का काजल है

मौन रहूँ छल करूँ सभी से, ऐसी मेरी प्यास नहीं है,
इतना सहकर चुप रहने का मुझको तो अभ्यास नहीं है
कोलाहल में घुल जाने दो, उसमें जीवन की हलचल है

कुटिया का मैं ही हूँ बेटा तेरा तो नीलम का पथ है
मैं मिट्टी का एक खिलौना तेरा तो फूलों का रथ है
भावों की आँधी मत रोको, यह नयनों का गंगाजल है

सौरभ का सतरंगी सरगम सुनकर मै कमजोर हो गया
मेरे द्वार दर्द आया है सुन कर आत्मविभोर हो गया
मृगतृष्णा में पला नहीं हूँ, मेरी शूलों की मंजिल है
रोको मत मधुमासी माँझी, चलने दो गीतों का बल है।

हरीश खुराना 'प्रेमी'

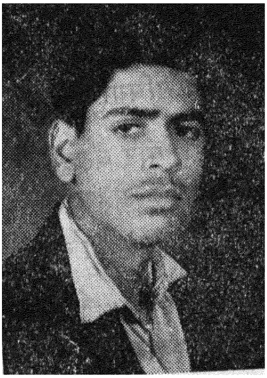

आपका जन्म १२ मार्च १९४३ ई० को सीमा प्रान्त के इतिहास प्रसिद्ध पाकिस्तान के कस्बा-गुरुचक में एक धनी खत्री परिवार में हुआ और देश के विभाजनोपरान्त आप जिला बिजनौर आकर बसे। आज-कल आप यहीं निवास कर रहे हैं।

१४ बी / ३२२, नई बस्ती स्ट्रीट,
बिजनौर (उ० प्र०)

हरीश खुराना 'प्रेमी'

उस पार कोई जा रहा

मन विपंची से उठी झंकार कोई जा रहा।
खेलने तूफान से उस पार कोई जा रहा॥

वह किरण है तम-हरण है और जीवन धार है।
इन विदाई के क्षणों के पार भी संसार है॥

नेह के बन्धन बनी दीवार कोई ढा रहा।
खेलने तूफान से उस पार कोई जा रहा॥

जानता हूँ पथिक पथिकों का बिछुड़ना भूल है।
भूलने पर भूल को फिर से जगाना शूल है॥

और बरबस आज कोई याद आता जा रहा।
खेलने तूफान से उस पार कोई जा रहा॥

मन विपंची से उठी झंकार कोई जा रहा।
खेलने तूफान से उस पार कोई जा रहा॥

हरीश खुराना 'प्रेमी'

मधुमय क्षण

ओ मीत ! तुम्हारे मधुमय क्षण !

अरुणिम जाल अरु लालवसन,
ऊषा नभ में छा जायेगी।
अमृत का कलश लिये कर में,
संध्या पगली आ जायगी ॥

अम्बर का चमक उठे कण-कण।
ओ मीत ! तुम्हारे मधुमय क्षण ॥

मैं ढूँढू कहाँ छिपे हो तुम ?
भावी जीवन की यह घड़ियाँ।
तेरे वैभव में आज छिपी,
सुख दुख की नवल कांत कड़ियाँ ॥

मैं हार चुका हूँ जीवन धन,
ओ मीत ! तुम्हारे मधुमय क्षण ॥

जो कुछ था सब दिया तुम्हीं को
कुछ भी पास नहीं है शेष
घूम रहा हूँ दूर-दूर तक
बदल-बदल कर अपना भेष।

जग कहता इसको पागलपन,
ओ मीत ! तुम्हारे मधुमय क्षण !

हरीश खुराना 'प्रेमी'

मैंने आहों से सीखा है मुस्काना

फ़ूल मेरी प्ररेणा है शूल है सुख सेज।
हो चले हैं आँधियों में पाँव मेरे तेज॥
मैंने काँटों से सीखा है बंध जाना।
मैंने आहों से सीखा है मुस्काना॥

विश्व निराशा की झोली पर आशा से दूर नहीं मैं।
यह विश्व सदा रोता है रोदन से क्रूर नहीं मैं॥
दुख की छांहों में सीखा है पल जाना।
मैंने आहों से सीखा है मुस्काना॥

जब मेघ उमड़ कर आते औ' नाव भँवर में होती।
लहरों और झंझावातों में दनिया सब कुछ खोती॥
पर मैंने लहरों से सीखा है धीरज पाना।
मैंने आहों से सीखा है मुस्काना॥

मानस की काली रातों में मेरी मंजिल खो जाती
घन अंधकार में फिर मुझको मिलता न कहीं कोई बाती॥
पर मेरा उद्देश्य यही है घन अंधकार में बढ़ जाना
मैंने आहों से सीखा है मुस्काना॥

हृषीकेश चतुर्वेदी

साहित्य के मूर्तिमान प्रकाश पुंज, पं० हृषीकेश चतुर्वेदी जी की जन्म-तिथि पौष कृष्ण ३, सं० १९६४ (दि० २२ दिसम्बर १९०७) है और जन्म-स्थान आगरा है। पिता स्व० श्री हरिशङ्कर जी चतुर्वेदी और माता स्व० श्रीमती कोकिला देवी जी थीं। चौदह वर्ष की आयु में आपकी प्रथम कविता 'चतुर्वेदी' (मासिक) में सन् १९२१ में प्रकाशित हुई। काव्य साहित्य की सभी विधाओं में आप सिद्ध-हस्त हैं। देश के अनेक सम्मानित पत्रों में प्रतिष्ठित साहित्यकारों के लेख आपके व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाशित हुए हैं। आकाशवाणी दिल्ली, लखनऊ, भोपाल से अनेक बार कविता पाठ किया है। राष्ट्र के अनेक बड़े कवि सम्मेलनों में भाग लिया है तथा सभापतित्व किया है। 'चतुर्वेदी' मासिक का साढे तीन वर्ष तक सम्पादन भी किया है। हिन्दी, संस्कृति, उर्दू तथा अंग्रेजी में आपका कृतित्व फैला हुआ है।

चौबेजी का कटरा
किनारी बाजार,
आगरा

हृषीकेश चतुर्वेदी

हटती नही हठीली आँखें

छेड़ रही हैं यह हृद-वीणा वे,
मृदु, मञ्जु, लजीली आँखें;
या, उँडेलतीं हृदय-चमन में,
निज मधु मधुर, रसीली आँखें।

खोल पलक-पट उत्सुक पल-पल,
झाँक रही है मिलन-कामना ;
जग से छिप, गुपचुप बतलातीं,
यही रहस्य रँगीली आँखें।

निर्मल हृदय-गगन, मुख-हिमकर,
झिलमिल दृग-तारों से हिलमिल ;
हिमजल-शीतल किरण-जाल को,
छिटका रहीं छबीली आँखें।

कुछ हँसती-सीं, कुछ कहती-सीं,
राग - रङ्ग - रञ्जित रहती-सीं ;
नाच रहीं मद - मोदभरी वे,
सुन्दर, सुखद, सजीली आँखें।

भोलेपन की सुदृढ़ आड़ ले,
दृष्टि लड़ाता है छल-बल से ;
प्रबल प्रणय-प्रण से तिल भर भी,
हटती नही हठीली आँखें।

ह्रषीकेश चतुर्वेदी

जिसने तुमको समझा अपना

जिसने तुमको समझा अपना,
वह प्रेम यथावत आज भी है;
'यह भूल है' भूल है; किन्तु, सखे!
यह भूल युगागत आज भी है।

लघु स्वाति की बूंद की आश किये,
चिरकाल से जीवित चातक है;
प्रिय-दृष्टि किशोर चकोरिनि की,
शशिरूप सुधारत आज भी है।

कमलों के सुकोमल कोष बसें,
अब भी निशि में भ्रमरावलियाँ;
लख दीपक-ज्योति, पतङ्ग सदा,
मिलने-हित उद्यत आज भी है।

सुनके घन-गर्जन को अब भी,
करते मन मत्त मयूर सभी;
करती कल-कोकिल कण्ठ-कला,
ऋतुराज का स्वागत आज भी है।

वर-पादप के भुज-पाश कसो,
रहतीं अब भी नव वल्लरियाँ;
सरिताधर सागर के मुख से,
सुख से सु-समागत आज है।

हृषीकेश चतुर्वेदी

क्या बताएँ

क्या बताएँ, भावनाएँ एक आएँ एक जाएँ !

सिन्धु का गम्भीर उर भी चन्द्र को लखकर मचलता ;
प्राप्ति-हित पल-पल उछलता, किन्तु, हा ! कुछ वश न चलता ।
प्रेम-प्यासे जलधि पर द्रग, क्यों न दो जल-कण गिराएँ ? क्या० ॥

भानु पूर्ण-प्रकाशमय है, पर तमोमय व्योम-पथ है ;
एक गति से नित्य चलता वह लिये निज दिव्य रथ है ।
उस अथक नभ के पथिक को, क्यों न कवि दीपक दिखाएँ ? क्या० ॥

मीन का है नीर जीवन, प्राणहर है विरह जिसका ;
किन्तु, प्रिय के साथ रहकर भूलती वह मूल्य उसका ।
बस, तभी उस मन्दमति को जाल में धीवर फँसाएँ । क्या० ॥

सुरसरित का है मधुर जल, सिन्धु का सब भाँति खारा ;
किन्तु, दोनों को बराबर समझता चातक बिचारा ।
स्वाति की दो बूँद केवल, चिरतृषा उसकी बुझाएँ । क्या० ॥

चित्र-अङ्कित-सी विरहिणी, बैठ 'प्रिय' पथ जोहती है ;
पूर्ण 'रति'-प्रतिमा बना, वह रसिक मन को मोहती है ।
कर रहीं, हा ! होड़ उससे काव्य की कल कल्पनाएँ । क्या० ॥

कृषक का कर्षण उधर है, इधर आकर्षण प्रिया का ;
श्रमिक-गण का श्रम उधर है, इधर है श्रम-कण प्रिया का ।
है उधर चिन्ता धनी को, इधर उसकी चिन्तनाएँ । क्या० ॥

जानता भावुक हृदय ही भावनाओं की महत्ता ;
समझ वैज्ञानिक न सकता यह प्रबल चैतन्य सत्ता ।
कवि सदैव सु-वर्ण आकृति इस निराकृति की बनाएँ । क्या० ॥

ज्ञानसिंह ठाकुर

आपकी जन्म-तिथि १३-४-१६३० ई० है। सरगुजा वियाबान जंगलों और पहाड़ों की सुरम्य-प्रकृति के आँचल में बचपन व्यतीत हुआ। जीवन संघर्षों से जूझते हुए आप एक लेजर कीपर के पद पर भिलाई स्टील प्रोजेक्ट में कार्य कर रहे हैं।

वयोवृद्ध साहित्यकार श्री प्यारेलाल गुप्ता के शब्दों में—'ज्ञानसिंह ठाकुर की लेखनी एक ओर जहाँ शृंगार उगलती है वहाँ दूसरी ओर आपकी सरस भावमयी कविता पाठकों को मंत्र-मुग्ध कर देती है।'

कविता के अतिरिक्त आप कहानियाँ भी लिखते हैं।

सेक्टर नं० २, सड़क नं० ४
क्वार्टर नं० ६ ए०, भिलाई,
जि० दुर्ग (म० प्र०)

ज्ञानसिंह ठाकुर

चुन-चुन आँसू कर दूँ शबनम

सौ-सौ बार जनम ले आऊँ, दे दो आंचल छाँह अगर तो।
तूफानों को बाँध चलूँ मैं, दे दो अपनी बाँह अगर तो॥
नील गगन की छहियाँ बाँधूँ, स्वर में बांधूँ अंगारों को
हंसते-हंसते पार करूँ मैं, दुख के इन पारावारों को,
चुन-चुन कांटे फूल बनाऊँ, हर आँसू से गीत सजाऊँ
बाँध चलूँ जलते अधरों पर, सौ-सौ सागर के ज्वारों को,
हँस कर प्राण गरल पी जाऊँ, कर दो माफ गुनाह अगर तो।
सौ-सौ बार जनम ले आऊँ दे दो आँचल छाँह अगर तो॥

अगर मिलन का आश्वासन दो आधी रात प्रलय भी आयें,
सौ-सौ पुष्प लुटा दूँ चाहे चाँद प्रतीक्षा में ढल जाये,
आँसू की हर नदिया बांधूँ, सात जनम दृग-निंदिया बांधूँ,
खड़ा रहूँ सागर तट प्यासा, चाहे प्यास धुआ बन जाये,
सारे सपन हवन कर डालूँ, दे दो दृग को राह अगर तो।
सौ-सौ बार जनम ले आऊँ दे दो आँचल छाँह अगर तो॥

आँसू के मैं मोल बेच दूँ, कंचन मृग की तृषणाओं को,
अगर वचन दो प्रीत तोल दूँ, बिना मोल के ज्वालाओं को,
हँसी बाँट दूँ सुधि-गुंजन को, खुशी बांट दूँ दुख-दर्पन को,
सौ जन्मों की प्यास बाँट दूँ, सपनों की इन छलनाओं को,
चुन-चुन आँसू कर दूँ शबनम, नेह करो निर्वाह अगर तो।
सौ-सौ बार जनम ले आऊँ, दे दो आँचल छाँह अगर तो॥

रिश्ता अब अंगार से

भर कर तेरा रूप कि मैने गीत में,
जोड़ लिया है रिश्ता अब अंगार से
जनम-जनम के सपने तुझको बाँटकर,
तोड़ दिया है नाता भरी बहार से ।।

जिस दिन भी तू मिली नहीं सुनसान में,
उस दिन रिश्ता तोड़ दिया हर साँस ने,
जिस दिन भी तू खिली न जलते प्राण में,
उस दिन लूट लिया मुझको विश्वास ने

छाया सी तू मेरे संग-संग घूमती,
निर्झर-केशा अधरों को तू चूमती,
लिखकर तेरा नाम कि मैंने गीत में,
छोड़ दिया है नाता घर-संसार से ।।

जिस दिन तेरी नही उतारी आरती,
उस दिन दीपक जले न मेरे द्वार के,
जिस दिन तेरी सुधि न हृदय दुलारती,
सपने सब बह जाते दृग जल धार से,

सांझ-सुबह ज्यों बँधे किरण की डोर से,
जुड़े हुए हम नदिया के दो छोर से,
करके तेरी सदा वंदना गीत में
बना लिया हर शूल फूल-सा प्यार से ।

ज्ञानसिंह ठाकुर

तुमने मुझे भुलावा देकर

तुमने मुझे भुलावा देकर चाहा था अहसान जताना।
मगर मानिनी छल से जी का, दुख भी कहीं घटा करता है॥

माना जी का दरद किसी का कोई अब तक बाँट न पाया,
जीवन का पथ यहाँ अकेले, माना कोई काट न पाया,
यह भी सच है, मैं न मिलूँगा, तुम न मिलोगी तो क्या होगा,
बिना नेह के लेकिन दुख की खाई कोई पाट न पाया,

तुमने अश्रु माँग कर मुझसे, चाहा निज उद्यान सजाना।
तुम क्या जानो, मुझे रुलाकर, जग का दर्द बटा करता है॥

प्राण तृप्ति की चाह उसे क्या, जिसने उम्र धुँआ कर डाली,
जल की कब की चाह कि जिसने प्राण-जलन में ठंडक पाली,
दुख-सुख साथ चलेंगे, माना मैं न रहूँगा, तुम न रहोगी,
जीवन की पर व्यथा कहेंगीं, रातें अँधियारी-उजियाली,

तुमने जीवन को कागज का, चाहा था जलयान बनाना।
तूफानी लहरों का पथ पर, ऐसे नहीं कटा करता है॥

इतना सरल नहीं है समझा जितना तुमने नेह निभाना,
किसी शूल को फूल बनाकर सरल न आँचल में दुलराना,
मुझ पर दोष लगाकर अपनी भूल तुम्हीं स्वीकार करोगी,
आँसू से धोकर प्राणों का सोचा तुमने दाग मिटाना

तुमने साँसों पर सपनों का चाहा था परिधान उढ़ाना।
मगर सत्य पर चढ़ा आवरण अपने आप हटा करता है

ज्ञान 'भारिल्ल'

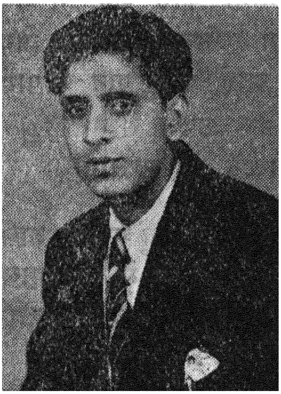

साहित्य की सभी विधाओं मे निपुण; श्री ज्ञान भारिल्ल का जन्म ३० जनवरी सन् १६२६ ई० को खैराना (म० प्र०) में हुआ, किन्तु बचपन से ही आप ब्यावर राजस्थान मे पले और बढ़े हुए। आपकी शिक्षा एम० ए० है। लेखन से रुचि बचपन से ही रही है। अब तक काफी लिखा है देश की अनेक प्रमुख पत्रों में आपकी रचनाओं को स्थान मिला है। कविताओं के साथ आप कहानियाँ, उपन्यास और निबन्ध भी लिखते हैं। 'आकाश-कुसुम', और 'ज्वार भाटा' आपके प्रकाशित 'गीत-संग्रह' हैं। प्रकाशित उपन्यास का नाम है— 'प्यासे स्वर्ण हिरण'।

राजस्थान साहित्य इकादमी के प्रारम्भ होने पर तीन वर्ष तक आप उसके सचिव पद पर रहे है। आपकी कुछ नवीन पुस्तकें शीघ्र छपने जा रही हैं।

बिचरली-मुहल्ला
ब्यावर (राज०)

ज्ञान भारिल्ल

आने दो रोशनी

अपना स्वर सब के स्वर से टकराने दो,
अपना गीत जमाने भर को गाने दो।

दम घुट जाएगा इन बन्द दिवारों में—
आने दो, रोशनी सदन तक आने दो।

सपनों की दुनिया में रह कर जी लोगे
अपने को इतना एकाकी मत मानो,
जो है दर्द तुम्हारा, वह मेरा भी है,
सबका है यह बात मर्म की पहचानो,

अपने सुख की सीमित परिभाषा को अब
जाने दो, कुछ और दूर तक जाने दो।

अंधकार घिरता आता आकाशों पर
सूरज बंदी हुआ तिमिर की बाहों में,
हर प्रकाश का पंथी ठोकर पर ठोकर
खाता भटक रहा अनजानी राहों में,

हर बुझते दीपक में ढालो स्नेहासव
दीपक-दीपक को सूरज बन जाने दो।

खोलो बन्द किवाड़ हृदय की कारा के
बाहर तुम्हें बुलाता है जग का जीवन
देखो अम्बर में खिल आए नील-कमल
देखो भू पर बिखरा है कुमकुम, कंचन;

जाने दो पतझर की सर्द हवाओं को
अब वासन्ती पवन चमन में आने दो।
आने दो रोशनी सदन तक आने दो।

दीपक तेरे द्वार का

युग-युग तक निर्बाध जले प्रिय !
दीपक तेरे द्वार का।
बाती हो तेरे मन की, पर,
सिंचन मेरे प्यार का।

मलय कहीं घूमे, पर पहले, तेरी अलकों को चूमे,
तेरे आँगन फूल खिला कर फिर बहार वन में घूमे,
तेरी साँसों की सुगन्ध से सुमनों में सौरभ जागे—
तेरा मन उपवन हो मेरे गीतों की गुंजार का।
दीपक तेरे द्वार का॥

चन्दा नील गगन में तेरे मुख की छाया बन डोले,
तेरा इङ्गित या प्रभात अलसायी आँखों को खोले,
तेरी जीवन-तरी कि सात समुद्रों पर तिरती जाए—
नैया तेरी, आश्रय मेरी बाँहों की पतवार का।
दीपक तेरे द्वार का॥

निशि प्रतिनिशि निर्मल हो तेरी दीपशिखा-सी यह काया,
कभी न मुरझाए मन तेरा, घिरे नहीं तम की छाया,
जीवन को बाँसुरी बना कर तू प्रतिक्षण मंगल गाए—
तेरा गीत, असर हो मेरे मन की मौन पुकार का।

युग-युग तक निर्बाधि जले, प्रिय !
दीपक तेरे द्वार का।
बाती हो तेरे मन की, पर,
सिंचन मेरे प्यार का।

ज्ञान भारिल्ल

स्वप्न-संदेशे

रोज रात की स्याही भर कर आँख में
लिखता स्वप्न-सँदेसे तुमको प्यार के।

तुमसे मिलना मन का बंधन हो गया,
कुछ ऐसा मिल गया कि सब कुछ खो गया,
तुमने एक पुकार प्यार की क्या दे दी—
मैंने तोड़ दिए बंधन संसार के।

तुमने प्राणों में भर दी वह रागिनी,
दिन बौराए, बेसुध है हर यामिनी,
अब मैं बाँधा करता हूँ हर गीत में
वे भटके-भटके-से क्षण अभिसार के।

बोलो, कब खोलोगे अब यह अवगुण्ठन ?
कब बरसाओगे अँधियारे पर कंचन ?
आओ, मैं इस पार बुलाता हूँ, तुमको
जनम-जनम के साथी ओ उस पार के !

रोज रात की स्याही भर कर आँख में
लिखता स्वप्न-सन्देसे तुमको प्यार के।

मुद्रक—शकुन्तला प्रिन्टिंग प्रेस, नूरी गेट, आगरा।

आकर्षक उत्कृष्ट लोकप्रिय

प्रतिनिधि पुस्तकें

पॉकेट बुक्स

१. **चाँदनी महकती है**—देवदत्त
कवि की चुनी हुई क· नीय कविताओं का भावपूर्ण संग्रह। १-००

२. **जयघोष**—श्रीमती शान्ति अग्रवाल
राष्ट्रीय एवं देशभक्ति कविताओ का ओजस्वी संकलन। १-००

३. **उलझी अलकें**—मदनमोहन 'उपेन्द्र'
कवि के मौलिक ·ीतों का संकलन १-००

[परदेसी कृत]

४. **शंखनाद**
चीन आक्रमण विरोधी राष्ट्रीय कविताएँ। १-००

५. **जरा देखतो लो**
कवि की चुनी हुई हास्य व्यंग्य कविताएँ। ०-५०

६. **चलमस्तानी चाल**
प्रारंम्भिक मदिर गीत ०-५०

७. **तु क्या रुलाओगे मुझे**
सरल सबल उत्प्रेरक चुने हुए गीतों का अनूठा संकलन। १-००

[सम्पादित]

८. **नई धरती के नये स्वर** (सजिल्द सचित्र)
२७२ पृष्ठों में ५७ कवि और कवयित्रियों के चुने हुए तीन-तीन गीतों का चर्चित संकलन। ३-५०

९. **खिलते फूल : महकती कलियाँ** (सजिल्द सचित्र)
२५ कहानीकारों की श्रेष्ठ कहानियाँ ४-००

१०. **युग-ध्वनि** (सजिल्द सचित्र)
प्रमुख गीतकारों के चित्र परिचय सहित प्रतिनिधि गीत-संग्रह। ३-००

पॉकेट बुक्स

११. **हिमशिखर बलिदान माँगता है** (देश भक्ति कविताएँ) १-००
१२. **शंख ध्वनि** ,, १-००
१३. **शंख स्वर** ,, १-००

प्रगति प्रकाशन
३५८ मण्डी सईदखाँ आगरा